TEXT FLY
WITHIN THE
BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182165
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY
H84/S56V Accession No. H2592
श्रीवास्तव, प्रताप नारायण
बेगम् समरू / 1957
Book should be returned on or before the date last marked below

विषमुखी

आत्माराम एन्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

श्री प्रताप नारायण श्रीवास्तव का उपन्यास साहित्य

(१) विदा

(२) विजय

(३) विकास

(४) बयालीस

(५) विसर्जन

(६) बकसी का मजार

(७) विषमुखी

(८) बन्दना

विषमुखी

(सामाजिक उपन्यास)

लेखक

श्री प्रताप नारायण श्रीवास्तव

प्रकाशक—

भारती-प्रतिष्ठान, कानपुर

एकाधिकारी वितरक—

ग्रन्थ-कुटीर

पी० रोड, कानपुर

आत्माराम एन्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

प्रकाशकीय वक्तव्य

हमने तीन मास पूर्व अमर कथा-शिल्पी श्री प्रताप नारायण जी श्रीवास्तव का युगान्तरकारी ऐतिहासिक उपन्यास 'बेकसी का मजार' भेंट किया था। इस उपन्यास का पाठकों और विद्वानों ने बहुत सुन्दर स्वागत किया है। केवल तीन मास में ही सम्पूर्ण संस्करण समाप्त हो गया है। कई प्रान्तीय भाषाओं में इसका अनुवाद भी प्रकाशित हो रहा है।

पाठकों से आशातीत प्रोत्साहन प्राप्त करके हमने श्रीवास्तव जी का प्रस्तुत सामाजिक उपन्यास 'विषमुखी' प्रकाशित किया है। यह उपन्यास हिन्दी-कथा-साहित्य में अद्वितीय रचना है। हम साधिकार कह सकते हैं कि 'विषमुखी' हिन्दी-कथा-साहित्य को एक नई दिशा प्रदान करेगा।

हमारे पाठकों को जानकर हर्ष होगा कि हम श्रीवास्तव जी का आगामी उपन्यास "वन्दना" शीघ्र ही प्रकाशित करने जा रहे हैं। "वन्दना" श्रीवास्तव जी के विख्यात उपन्यास "विदा" का दूसरा भाग है। "विदा" श्रीवास्तव जी ने आज से ३२ वर्ष पूर्व लिखा था। यह विश्वविद्यालयों के एम० ए० और बी० ए० की परीक्षाओं के पाठ्यक्रमों में रह चुका है। इसका रेडियो रूपान्तर हो चुका है। विदा के अनेक भाषाओं में अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी के प्रकाण्ड आलोचकों का कहना है कि "विदा" जैसी सशक्त रचना हिन्दी में अभी तक देखने को नहीं मिली है। पाठक सहज ही में अनुमान लगा सकते हैं कि "वन्दना" कितनी उच्चकोटि की होगी।

आशा है, पाठकगण श्रीवास्तव जी की अन्य रचनाओं की भाँति इसे भी अपनाएँगे।

प्रकाशक

— १ —

नील नभ के नीचे नील नीरधि की उत्तुंग तरंगों पर संतरण करते हुये 'प्रकाश रेखा' नामक जलयान के नृत्य-गृह का संगीत और नृत्य सहसा स्थगित हो गया। क्षण-भर के लिए एक भय-विह्वल स्तब्धता छा गई, वादक तथा नर्त्तक लड़खड़ाकर गिर पड़े, सब एक दूसरे की ओर भयाकुल दृष्टि से देखने लगे और उनके अस्फुट स्वर-गुंजन के ऊपर किसी भयानक तूफान का हा-हाकारी रव छा गया। उस रव में सबका अस्फुट स्वर डूब गया और उनकी पथराई-सी आँखें एक दूसरे को देखने लगीं। सबको मन-ही-मन भासित हो गया कि मृत्यु सन्निकट है। मृत्यु की विकराल छाया 'प्रकाश रेखा' को अपने अञ्चल के नीचे छिपाने के लिए आतुरता से बढ़ती चली आ रही थी। सहसा ऐसी निबिड़ कालिमा छा गई जिसमें जलयान के बिजली के दीपों का प्रकाश भी केवल टिमटिमाते हुए स्फुलिंगों के समान दृष्टिगोचर होने लगा।

क्षणिक स्तब्धता के पश्चात् आरोहियों को अपनी जीवन रक्षा की चिन्ता व्याप्त हो गई। अत्यन्त घबराहट के साथ वे अस्त-व्यस्त इधर-उधर दौड़ने का प्रयत्न करने लगे; किन्तु रक्षा का कोई उपाय नहीं देख पड़ता था। सर्वत्र अन्धकार छाया हुआ था और जलयान लहरों पर झूल रहा था; इतने वेग से कि किसी आरोही को एक स्थिति में क्षण-भर के लिए रहना असम्भव था। जैसे ही उठने का वे प्रयत्न करते, दूसरे झोंके में वे पलटकर गिर पड़ते और पुनः एक ओर से दूसरी ओर ढुलकने लगते। इसी प्रकार ढुलकते हुए दो आरोही—एक भारतीय नवयुवक और एक भारतीय नवयुवती—एक दूसरे के सन्निकट

आ गये और उनकी भीत दृष्टियों का परस्पर विनिमय होने लगा। बोलने और सुनने में असमर्थ वे सन्निकट होते हुये भी एक दूसरे से बहुत दूर प्रतीत होते थे; केवल नेत्रों के माध्यम से वे अपने मन के उद्वेग को प्रकट करने का निष्फल प्रयास कर रहे थे। अन्य आरोहियों की अपेक्षा वे भारतीय होने के कारण अपने को एक दूसरे के निकट समझ रहे थे। यद्यपि उसी दिन प्रातःकाल बम्बई से एक साथ उन्होंने जलयान पर आरोहण किया था और एक दूसरे को देखा भी था, तथापि उनमें आलाप या परिचय नहीं हुआ था; केवल एक दूसरे को देखकर उन्होंने सन्तोष किया था और अपनी-अपनी केबिन में, जो संयोगवश सटी हुई थी—प्रवेश कर गए थे। नवयुवती ने अपनी केबिन में प्रवेश करते ही द्वार बन्द कर आगे आलाप का मार्ग अवरुद्ध कर दिया था। नवयुवक भी उदासीन होकर अपनी उत्सुकता को दबाने में दत्तचित्त हो गया।

किन्तु इस आकस्मिक विपत्ति ने पुनः एक दूसरे को निकट ला दिया। दोनों की यह प्रथम समुद्र-यात्रा थी। दोनों अनुभवहीन थे। उन्होंने यात्रा के पहले इस प्रकार के संकट की कल्पना भी नहीं की थी; क्योंकि उन्हें विश्वास था कि इस वैज्ञानिक युग में यात्रा सर्वथा निरापद है। परन्तु उनका विश्वास सर्वथा मिथ्या प्रमाणित हुआ क्योंकि दोनों पल-पल में मृत्यु का मौन आह्वान सुन रहे थे। मौत की घाटी में प्रवेश करने के पहले प्रायः प्रत्येक व्यक्ति अपने मन की बात कहने के लिए आकुल होता है। ये दोनों भी अपनी-अपनी बातें कहने और सुनाने के लिए व्याकुल हो गए; किन्तु तूफान का प्रलयंकर रव उन्हें इसका अवसर ही नहीं प्रदान कर रहा था निरुपाय होकर, अत्यन्त विवशता के साथ, वे एक दूसरे का मुख देखने लगे। नवयुवती की आँखों से मानसिक विकलता आँसुओं के रूप में बहने लगी। उन आँसुओं को देखकर नवयुवक द्रवित हो गया। एक प्रकार का अद्भुत आकर्षण उसे उसकी ओर खींचने लगा। उसने उसकी ओर सरकने का यत्न किया, किन्तु वह सफल नहीं हो सका; क्योंकि जलयान को प्रचण्ड वायु के झोंके बुरी तरह झकझोर रहे थे, जिसके सम्मुख वह पराधीन और विवश था। उसने अत्यन्त करुण दृष्टि से उसकी ओर

देखा, उन्हें निश्चय हो गया कि बिना एक दूसरे से कुछ कहे-सुने उनको मृत्यु-मुख में प्रवेश करना पड़ेगा। भय-विस्फारित दृष्टि से वे पुनः एक दूसरे को देखने लगे।

उधर तूफान जोर पकड़ रहा था। लहरें बार-बार आकाश के काले बादलों को छूने का प्रयत्न कर रही थीं; किन्तु कौंधती हुई दामिनी उनका दामन छूने नहीं देती थी। जैसे ही जलयान को लेकर लहरें ऊँची उठतीं, वैसे ही दामिनी तड़पकर उनकी महत्वाकांक्षा का निवारण कर देती और उन्मत्त वायु भीषण स्वर से अट्टहास करके बादलों को भी उसकी स्पर्धा पर रोष प्रकट करने को उत्तेजित कर देता था। यद्यपि विविध यन्त्रों द्वारा आसन्न झंझावात का आगमन जलयान के अधिकारियों को सूचित हो चुका था, और उन्होंने सचेत होने वाली सूचना भी प्रकाशित कर दी थी; तथापि बहुतों ने उस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया था। ध्यान देने का कारण भी नहीं था। अगस्त के महीने में ऐसे छोटे-मोटे तूफान अरब सागर में प्रायः आया ही करते हैं और बीस हजार-टन के जहाज का वे कुछ अधिक अपकार करने में समर्थ नहीं होते। किन्तु तूफान इतना भीषण होगा, इसका अनुमान वे यात्री भी नहीं कर सके थे जिनका आवागमन प्रायः समुद्री मार्गों से हुआ करता है। वे भी भीत दृष्टि से आसन्न मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे।

जहाज का कप्तान भी कुछ कम भयाकुल नहीं था। यद्यपि यन्त्रों ने उसे सूचित कर दिया था कि तूफान का वेग भीषण और महातीव्र है, तथापि वह इतना भीषण होगा, इसका अनुमान वह स्वयं नहीं कर सका था। इसके अतिरिक्त उसे भीषण तूफानों का अनुभव भी कम ही था; क्योंकि उसकी इस पद पर नियुक्ति अभी नवीन थी और जहाज भी स्वतंत्र भारत का नवीन जल-पोत था, जो अपनी प्रथम संसार-यात्रा के लिये निकला था। कप्तान सुरेशचन्द्र का घबराना स्वाभाविक था; किन्तु वे अपनी समग्र मानसिक शक्ति बटोर कर उसका सामना कर रहे थे। अपनी संकटापन्न स्थिति की सूचना उन्होंने बे-तार के यन्त्रों से प्रसारित कर दी थी; किन्तु उत्तर उन्हें नहीं मिल रहा था। उनकी

विकलता प्रत्येक क्षण बढ़ रही थी और वे भी अपना धैर्य शनैः शनैः खोते जा रहे थे।

उत्तुंग तरंगें जलपोत को फुटबाल बनाकर खेलने में तल्लीन थीं; वे इस प्रकार इतनी उग्र और प्रचंड थी, जैसे सदैव पद-दलित रहने वाले समाज के निम्न व्यक्तियों का सम्मिलित शक्ति-समूह अपने शत्रुओं को असहाय पाकर दुर्दान्त होकर उनका अस्तित्व मिटा देने के लिये तत्पर होता है। लहरें जब पोत को उदरस्थ करने में असमर्थ होतीं तो वे पोत की कगारों से टकराकर टूट जातीं; किन्तु अनुसरण करने वाली दूसरी लहरें उन्हें अपनी गोद में लोक लेतीं और संयुक्त शक्ति से उसे डुबा देने के लिए पुनः प्रयत्न करतीं। ऊपर का मेघ-जाल अपनी अजस्र बूँदों से उनके प्रयास में इस प्रकार सहायता प्रदान करने की चेष्टा कर रहा था, जिस प्रकार विदेशी तथा शत्रु-राष्ट्र अपना द्रव्य तथा शस्त्रास्त्र मुक्त हस्त से वितरण कर विप्लवकारियों की आशा बँधाते हैं। बिजली कौंध-कौंध कर लहरों और मेघों को पञ्चमांगियों की भांति गृह-गुह्यों को प्रकाशित करने में संलग्न थी।

सहसा दिशाओं को कँपा देने वाला एक भयकर घोष हुआ और दामिनी लड़खड़ाकर पोत के सन्निकट क्रुद्ध समुद्र में आत्मघात के लिए कूद पड़ी। तूफान की वायु-तरंगों ने पोत के प्रत्येक आरोही को विनाश के लिये सन्नद्ध होने की सूचना दी। आत्म-रक्षा की जन्मजात भावना क्षण भर के लिए मूर्छित हो गई। यात्रियों के मुख श्वेत हो गए। नृत्य-गृह में अवरुद्ध व्यक्तियों के मुख से सहसा निकल पड़ा—"जहाज शायद फटकर दो टुकड़े या कई टुकड़े हो गया है।" आतंक से उनके नेत्र विस्फारित हो गए। मृत्यु से अधिक भयंकर उसकी समीपता का ज्ञान होता है। उस समय आत्म-त्राण की भावना और मृत्यु से संघर्ष मस्तिष्क के धैर्य सन्तुलन को खो देता है; और मनुष्य की विह्वलता अपनी चरम सीमा को पहुँच जाती है। युवक ने युवती की ओर देखा और युवती ने युवक की ओर। उन्होंने एक दूसरे को सान्त्वना तथा धैर्य बँधाने की चेष्टा की; किन्तु दोनों को विश्वास था कि उनका वह प्रयास कितना उपहासजनक है।

कठिन से कठिन तथा विपरीत परिस्थितियों में भी मनोयोग से किया हुआ

प्रयास प्रायः निष्फल नहीं जाता। युवक और युवती एक दूसरे के निकट से निकट आना चाहते थे। यद्यपि दोनों नितान्त अपरिचित थे; किन्तु उस आपत्काल ने उनका बन्धन तोड़ दिया था। वे दोनों भारतीय हैं; एक ही भूमि में दोनों उत्पन्न हुए, एक ही वायुमण्डल में दोनों पनपे तथा पोषित हुए, और एक ही साथ यात्रा कर रहे हैं; इतना ही ज्ञान दोनों को अधिकाधिक निकट होने तथा एक साथ मरने के लिए, उत्साहित कर रहा था। युवक और युवती उस गड़गड़ाहट के पश्चात् बिल्कुल समीप आ गए। एक दूसरे के अङ्ग स्पर्श करने लगे। युवक ने युवती का हाथ पकड़ा और दबाते हुए उसे धैर्य बँधाने का प्रयत्न किया। युवती ने भय तथा निराश दृष्टि से युवक की ओर देखने की चेष्टा की; और उसी समय पोत का विद्युत-उत्पादक-यंत्र सहसा बिगड़ गया। अन्धकार अग्रसर होकर उन टिमटिमाते हुए दीपकों को निगल लिया।

अन्धकार और भय में प्रगाढ़ मैत्री है, इतनी कि एक का आगमन अथवा उपस्थिति दूसरे को अपने संग घसीट लाता है। संभवतः दोनों ही अन्योन्याश्रित हैं। नृत्य-गृह के निविड़ अन्धकार ने उन दोनों युवक तथा युवती को मजबूर कर दिया, एक दूसरे का हाथ कस कर पकड़ने के लिये। उनके परिचय की न्यूनता भी उसकी कालिमा में लोप हो गई। स्थान. और काल के द्वारा उत्पन्न होने वाली सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियां, जिस पार्थक्य को जन्म देकर भाव-भेद के परकोटे उठाती हैं, वे ढह गये थे और मानव अपने शुद्ध सात्विक रूप में विगतकाम होकर अवस्थित हुआ। इस समय युवक और युवती दोनों चिर-परिचित दो आत्माएँ थीं, जिनमें से प्रकृति ने एक को पुरुष तथा दूसरे को नारी के भौतिक आवरण से परिवेष्ठित किया था; और अब आसन्न मृत्यु की छाया में वह पार्थक्य हो गया था। वे दोनों उस भेद को भूल गए तथा एक दूसरे के अति सन्निकट आ गए। बोलने में असमर्थ वे मौन ही एक दूसरे को पुनः धैर्य बँधाने लगे। जैसा तूफान बाहर था; उसका लघु संस्करण उन दोनों के मानस-तल में उठने लगा। दोनों को अपने गत जीवन की घटनाएँ याद पड़ने लगीं। जीवन के प्रति उनका मोह बढ़ने लगा। युवक के समक्ष उस अन्धकार के पट पर अपनी रोती हुई माँ और विधवा बहिन का

चित्र आ गया। वह उन दोनों की जीवन-नौका का पतवार था, उनका एकमात्र आधार था, उन का अवशिष्ट सम्बल था। वे दोनों उसको अपने से विलग करना नहीं चाहती थीं, देश छोड़कर विदेश जाने और समुद्र यात्रा के लिए वे अपनी अनुमति नहीं दे रही थीं। धीरे-धीरे उसे वे बातें स्मरण आने लगीं; जिनका स्वर्णिम रूप दिखाकर, आगामी जीवन की रंगीन झाँकियाँ खींचकर, उसने छल तथा कौशल से उनकी अनुमति प्राप्त कर ली थी। यद्यपि उस समय जो उसने कहा था, उसमें सत्य का अंश ही अधिक था, तथापि वर्तमान स्थिति उसे मिथ्या प्रमाणित कर रही थी। वह इधर पिंजरे में बन्द चूहे की भाँति सागर के अतल जल में डूबने जा रहा था और उधर उसकी माँ तथा बहिन जीवन व्यापी शोक के अश्रु-समुद्र में डूब जायगीं, जहाँ उनकी यातनाओं, रुदन और परिताप की अवधि उनके विस्तृत जीवन भर रहेगी; जबकि उसकी पीड़ा का अवसान कुछ ही पलों में होने जा रहा है। वह आपाद मस्तक सिहर उठा। उसके भी नयनों से जलधार उमड़ने लगी। उसके मन ने भगवान का सहारा पकड़ा; क्योंकि परिस्थितियों से पराजित मानव को कोई उससे अधिक शक्तिमान आधार तो चाहिए ही चाहे वह मुहूर्त्त भर के लिए ही क्यों न हो। उसने एक दीर्घ निःश्वास खींची और अपने को नियति के हाथों में समर्पित कर दिया।

उधर उस युवती के मन में भी लगभग इसी प्रकार के मनोभाव उठ रहे थे, जो उसके सामाजिक स्तर के अनुकूल थे। उसे भी अपनी माँ का स्मरण हो रहा था। विदाई के समय उसकी माता के हृदयोद्गार, सहेलियों की प्रार्थना तथा मार्मिक अनुरोध क्रमशः एक के पश्चात् एक प्रकट होकर उसके मस्तिष्क में वैसा ही विकराल अंधड़ उत्पन्न कर रहे थे जैसा बाहर प्रकृति उठा रही थी। उसके मन में भी वैसी ही उथल पुथल मची हुई थी, जिसके वेग में आत्म रक्षा का विचार ही लुप्त-सा हो गया था। उसे सहसा याद पड़ा कि वह कैसे-कैसे अद्भुत जीनव-सपनों को देखा करती थी और उसकी कैसी-कैसी महत्वाकांक्षाएँ थीं। उसके मन ने सहसा प्रश्न किया कि क्या सबका अवसान आ गया है? अपने जीवन में जिन पुष्पों के खिलाने का वह इतना परिश्रम कर रही थी; वे क्या मुकलित अवस्था में ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाँयगे? उसने आज के पहले कभी

ऐसा अनुमान भी नहीं किया था। उसे सहसा याद पड़ा कि उसकी माँ, जब-जब उस पर कोई आकस्मिक विपत्ति आती, तो वह उसके त्राण के लिये भगवान की शरण में आश्रय लेती थी और उससे उसको शान्ति मिलती थी। पीड़ा के हरण होने पर वह भगवान को धन्यवाद देती और उनके प्रति कृतज्ञ होती। वह उसकी पूजा-भक्ति का निरीक्षण करती; किन्तु उसे उस समय विश्वास उन बातों पर न कभी होता था, और न बाद में कभी हुआ। वह विज्ञान की विद्यार्थिनी थी। विज्ञान पर उसका शत-प्रतिशत विश्वास था और उसके समक्ष वह किसी अन्य शक्ति को न मानती थी और न उसके सम्मुख झुकने के लिए वह कभी तैयार थी। घर के पूजा-गृह की ओर वह प्रायः जाती ही न थी और यदि कभी जाती भी तो भक्ति-पूर्वक मूर्तियों के समक्ष प्रणाम न करती थी। उसके इस व्यवहार से उसकी माँ को आन्तरिक क्षोभ और कष्ट होता था; किन्तु अपने को अशिक्षित समझ कर अपनी इच्छा उस पर लादने का प्रयत्न कभी न करती थी। उसे यह भी स्पष्ट याद आया कि वह किस प्रकार अपनी सन्तान द्वारा किए गिए अपराधों के लिए उनकी क्षमा बारम्बार मांगती रहती थी और वह स्वयं घृणा, उपेक्षा से किस प्रकार हँसती रहती थी। सहसा उसके समक्ष बाहरी तथा भीतरी अन्धकार में ज्वलन्त रूप से यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि कहीं यह भीषण प्रतिशोध भगवान की प्रेरणा से ही उसके अपराधों के फलस्वरूप तो उपस्थित नहीं हुआ है। नारी की सहज भीरुता सजग हो उठी, और कातर होकर वह अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगने लगी। वह भी नवयुवक की भांति भगवान की शरण में आश्रय खोजने लगी।

एक ही आधार पाकर दोनों के मन भी अधिकाधिक निकट आ गए। उस विपत्ति से उबारने के लिए दोनों ही एक दूसरे से अज्ञात, प्रार्थना करने लगे। युवक के मन में तो चिरपोषित विश्वास था और युवती नैराश्य के कारण विश्वास उत्पन्न करने की चेष्टा कर रही थी।

अंधड़ और तूफान का वेग शिथिल नहीं हो रहा था। वायु की तरंगे चक्राकार होकर सागर के वक्ष पर नृत्य कर रही थीं; जिनके आघात-प्रतिघात

से वह जलपोत भी घूमने का उपक्रम करता हुआ प्रतीत होता था। चारों ओर केवल अनवरत मूसलाधार वर्षा, अखण्ड मेघ-गर्जन, तथा क्षण-क्षण में दामिनी का क्रुद्ध दृष्टि निक्षेप हो रहा था। पोत भी असहाय होकर अपनी उस अन्तिम घड़ी की प्रतिक्षा कर रहा था, जब उसे समुद्र के गर्भ मे अनन्त विश्राम मिलेगा। कप्तान सुरेशचन्द्र भी अब पूर्णतः निराश हो गए थे। अभी तक उन्हें किसी से सहायता का आश्वासन नहीं मिला था। इन्जिन के सभी कल पुरजे बेकार हो गए थे और उस भीषणता में जीवन-रक्षा के सभी उपाय निरर्थक प्रतीत हो रहे थे। उनके आधीन सभी कर्मचारी निराश हो चुके थे और जल-समाधि लेने के लिए अपने मन को प्रस्तुत कर रहे थे। वे बार बार यही सोच रहे थे कि 'प्रकाश रेखा' की प्रथम यात्रा का क्या ऐसा नाटकीय अवसान होगा? वे क्रुद्ध प्रकृति के समक्ष इस समय बिलकुल लाचार और बालक की भाँति क्रियाहीन हो गए थे। अब उनको केवल दैव की गति का सहारा था और वे भी सब एक मन होकर भगवान की शरण में जाकर प्रार्थना के द्वारा आश्रय ढूँढ़ने लगे।

सहसा बिजली फिर तड़पी, और दिशाओं को विकम्पित करती हुई उन्मत्त समुद्र में समा गई। प्रार्थना करते हुए युवक और युवती चौंके और पोत बड़े वेग से झूम गया। दोनों के सिर एक दूसरे से टकरा गए और एक भारी वस्तु की टक्कर उनके सिर से लगी तथा उसके आघात से वे तुरन्त अचेत हो गये।

— २ —

जब युवक और युवती के नेत्र खुले, वे अपने चारो ओर देखने और परिस्थिति को समझने का यत्न करने लगे। उनको पूर्व की घटनाएँ इस समय विस्मृत थीं और कई क्षणों तक उन्हे यह ज्ञात नहीं हुआ कि वे इस प्रकार क्यों पड़े हुए हैं। नृत्य-गृह की साज-सज्जा बिलकुल नष्ट हो चुकी थी और विविध वाद्य-यन्त्रों के साथ कुछ व्यक्ति भी अचेत तथा अर्द्ध-अचेत अवस्था में पड़े हुए थे। प्रभात की श्वेत किरणों से नृत्य-गृह प्लावित हो रहा था।

सहसा उन्हें गत रात्रि के तूफान की याद हो आई। वे दोनों विस्फारित दृष्टि से अपने चारों ओर देखने लगे। पहले उन्हें विश्वास न हुआ कि वे जीवित और सुरक्षित हैं। वह दृश्य केवल उन्हें स्वप्न-जाल-सा प्रतीत होता था। जब उनके नेत्र मिले तब उन्हें ज्ञात हुआ कि वे जीवित हैं और मृत्यु की घाटी पार करने में समर्थ हुए हैं।

युवक ने उठने की चेष्टा की; किन्तु उसके अंग-प्रत्यङ्ग में इतनी पीड़ा हो रही थी कि वह उठने में असमर्थ था। शिर में भयानक वेदना हो रही थी। लगभग युवती का वही हाल था। उनके चारों ओर अनेक वस्तुएँ पड़ी हुई थीं। उनके शिर के पास ठोस लोहे का एक बड़ा बेलन पड़ा हुआ था; जो न मालूम कैसे वहाँ आ गया था और उसी की चोटें उनके लगी थीं, जिससे वे अचेत हो गए थे। इस समय वह भी अन्य वस्तुओं की भांति स्थिर था। जहाज बिलकुल निस्पंद था, चारों ओर शान्ति की लहरों का ताण्डव-नृत्य, वायु का हा-हाकार, मेघों का गर्जन-तर्जन सभी शान्त था। प्रभात की सुखद समीर सम्भल-सम्भल कर उनमें नव स्फूर्ति और नव-चेतना संचार करती हुई प्रवेश कर रही थी।

युवक ने युवती की ओर देखकर कुछ सोचा और पूछा, "अब आपकी तबियत कैसी है?" युवती कुछ सकुचाई और बोली, "एक प्रकार से ठीक है। आपकी कैसी तबियत है?"

"अब तो ठीक हूँ, सिर में भयानक पीडा हो रही है।"

"मेरा सिर भी फटा जाता है।"

वह मौन हो गई। युवक पुनः उठने का प्रयत्न करने लगा। उसने अपनी सारी शक्ति और साहस बटोरा और वह उठकर बैठ गया। उसी की तरह कुछ यात्री भी उठकर बैठे हुए थे। उनके चेहरे भी विषाद, कष्ट और वेदना से विवर्ण हो गए थे। उस तूफान ने प्रत्येक व्यक्ति को झकझोर कर उनका बल और साहस निचोड़ दिया था। युवक के मन में यह विचार आया कि वह युवती को सहारा देकर उठावे, किन्तु उनके अपरिचित होने का ज्ञान उसे रोकने लगा। वह असहाय और करुण दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा।

युवती ने उठने की चेष्टा की, किन्तु थोड़ा-सा उठते ही वह हल्की कराह के साथ पुनः गिर पड़ी। उसके नेत्र बन्द हो गए।

युवक ने सोचा कि शायद वह पुनः अचेत हो गई है। उसने सरक कर उसके सिर को उठाकर अपनी जाँघ पर रख लिया। युवती के नेत्र खुले और युवक के झुके हुए नेत्रों में उलझ गए। न मालूम क्यों दोनों के अधरों पर एक हल्की मुस्कान खेलने लगी और उनके हृदयों की धड़कन बढ़ गई। उनके मन ने प्रश्न किया कि "क्या वे अब भी अपरिचित हैं?" युवती ने पुनः अपने नेत्र बन्द कर लिए और वह किसी प्रश्न को हल करने लगी। युवक उसके बिखरे हुए केशों को व्यवस्थित करने लगा। किन्तु उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि युवती उसकी इस अनधिकार चेष्टा से असन्तुष्ट हुई क्योंकि वह तुरन्त ही तड़प के साथ उठकर बैठ गई। युवक हत-प्रभ रह गया।

युवती ने उसकी ओर बिना देखे हुए कहा—"धन्यवाद, मैं अब ठीक हूँ।"

शायद युवती ने अनुभव किया कि उसका आचरण अभद्र है, इसलिए उसका परिमार्जन करने के उद्देश्य से कहा—"आपकी कृपा के लिए वास्तव में मैं बहुत आभारी हूँ। कल तूफान ही ऐसा आया था।" जैसे वह अपनी कमजोरी का समाधान कर रही हो।

युवक ने लकड़ी की दीवार पकड़ कर खड़े होने का प्रयत्न करते हुए कहा—"वह तूफान था या प्रलय का तांडव? आपको अधिक चोट तो नहीं आई"

युवती अपने को निर्बल प्रकट करना नहीं चाहती थी। उसने भी दीवार पकड़कर खड़े होने का प्रयत्न करते हुए कहा—"धन्यवाद, मालूम तो नहीं होता। हाथ-पैर कुछ अकड़ गए हैं, थोड़ा चलने-फिरने से ठीक हो जायगा?"

कहती-कहती युवती पुनः बैठ गई। युवक को साहस न हुआ कि वह अपना हाथ उसकी सहायता के लिए बढ़ावे। वह असहाय दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा।

फिर कुछ सोचकर पूछा—"क्या मैं आपके उठाने में सहायता कर सकता हूँ?"

युवती के अभिमान ने उसे नकारात्मक संकेत करने का आदेश दिया।

युवक निश्चेष्ट खड़ा रहा। उसे अपना हाथ सहायता के लिए आगे बढ़ाने का साहस न हुआ।

युवती के अहंकार ने उसे साहस प्रदान किया और वह अपनी शक्ति को बटोरने लगी। मन ही मन उसका सन्तुलन किया और किटकिटाकर उठ खड़ी हुई, किन्तु पैर न सधे और वह धम से गिर पड़ी। युवती अपनी लज्जा छिपाने के लिए हँसने लगी।

किन्तु युवक ने अपना हाथ आगे बढ़ाते हुए कहा—"आप अभी बहुत कमजोर हैं। कोई संकोच न कीजिए। मेरा हाथ पकड़ कर उठ आइए।"

युवती को उसका कथन रुचिकर न हुआ। वह एक अपरिचित की सहायता के भार से अपने को मुक्त रखना चाहती थी। युवक को भी पुनः कुछ कहने का साहस नहीं बढ़ा।

इसी समय पोत के कर्मचारी स्ट्रेचर आदि आहत व्यक्तियों को उठाने तथा सेवा सुश्रूषा के सामान के साथ आ गए। सबका ध्यान उधर आकृष्ट हो गया।

उनमें से एक ने आगे आकर पूछा—"आप लोगों में से किसी को चोट तो नहीं लगी ? किसी की ऐसी हालत तो नहीं हुई कि······?"

"नहीं, नहीं, हम सब लोग ठीक हैं। शायद यहाँ पर किसी को साधारण चोट भी नहीं आई है। आप दूसरों को देखिए। जहाज के दूसरे यात्रियों का क्या हाल है ? जहाज को कोई क्षति तो नहीं पहुँची ? कप्तान तथा नाविक सुरक्षित तो हैं ?" आदि प्रश्नों की झड़ी लग गई।

कर्मचारियों को विदित हो गया कि उनकी सहायता की आवश्यकता किसी को नहीं है। अतएव वे प्रसन्न चित से उनके प्रश्नों को उत्तर में केवल "सब ठीक है" कह कर चले गए।

युवक को कुछ मजाक सूझा। उसने हँसकर धीरे से युवती के कान के पास कहा—"यदि आप स्ट्रेचर पर अपने कमरे जाना पसंद करती हों, तो दौड़ कर स्ट्रेचर वाले को बुला लाऊँ ?"

युवती ने कुपित दृष्टि निक्षेप करते हुए कहा—"धन्यवाद ! आप कष्ट न कीजिए। यदि जरूरत होती तो मैं स्वयं कह सकती थी।"

और यह कहती हुई वह पुनः किटकिटाकर दीवार के सहारे उठकर खड़ी हो गई, परन्तु पैर फिर उसका भारवहन करने में कुछ असमर्थ से प्रतीत हुए और वह गिरने वाली ही थी कि युवक ने बिना किसी संकोच अथवा घबराहट के, उसको सहारा देकर गिरने नहीं दिया। युवती ने भी कोई आपत्ति इस बार नहीं की और वह उसका हाथ पकड़े हुए अवश पैरों को अपना बोझ सँभालने के लिए तैयार करने लगी।

युवक जब उसको सीधा खड़ा करने में सफल हुआ तो उसने कहा—"जरा एक-आध बार पैरों को जोर से पटकिए तो रक्त का संचालन पैर की नाड़ियों में वेग से होने लगेगा, और इस तरह आपकी लुप्त शक्ति प्रकट हो जायगी। मैं आप पर कोई विशेष उपकार नहीं कर रहा हूँ; न इसको मेरा कोई एहसान ही मानें। साधारण रूप से जो मानव-धर्म निबाहने का तरीका होता है, वही मैं भी कर रहा हूँ। मेरी प्रार्थना है कि आप मुझको अपना कर्त्तव्य-पालन करने से वञ्चित न करें।"

युवक यह नहीं जान सका कि युवती के ऊपर उसके कथन का क्या प्रभाव पड़ा है; किन्तु उसने अपना हाथ खींचा नहीं; इतना ही उसके लिए पर्याप्त था। युवती ने एक-दो बार पैर पटके और कुछ देर तक स्थिर खड़े रहने के पश्चात् उसने आगे चलने के लिए अपना पैर उठाया। युवक उसको सहारा देता हुआ आगे बढ़ा। ऊपर जाने के लिए जब वे सीढ़ियों के पास आए तो युवती ने कहा—"धन्यवाद! अब मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ। अब आप कष्ट न करिये।"

युवक ने तुरन्त ही उसका हाथ छोड़ दिया। युवती कुछ क्षणों खड़ी रही; और जैसे ही उसने पहला पैर उठाकर सीढ़ी पर रखा, और दूसरा भी उठाना चाहा, वैसे ही अगला पैर लड़खड़ाने लगा। युवक ने तुरन्त सहारा दिया और वह रेलिंग पकड़ कर खड़ी हो गई।

युवक ने पहली सीढ़ी पर उसके बराबर खड़े होकर कहा—"विश्वास कीजिए; आप अभी बहुत कमजोर हैं; यदि अपने शरीर के साथ ज्यादती कीजिएगा तो इसका परिणाम आपके लिए सुखकर नहीं होगा। अधिक अस्वस्थ हो सकती हैं, तथा कहीं चोट लग जाने का भी डर है। आइए, आप मेरे सहारे धीरे-धीरे

ऊपर चढ़ें। आपत्ति-काल में पड़ोसी पर भी वही अधिकार होता है, जो अपने सगे-सम्बन्धियों पर होता है। शायद हम लोगों के कमरे पास ही पास हैं और इस जहाज पर एक देशीय होने के नाते अन्य प्रकार से भी सन्निकट हैं। यहाँ पर तो हम लोगों को ही एक दूसरे की सहायता करनी पड़ेगी, आत्मीय और स्वजन तो आ नहीं सकते।"

युवती ने कुछ सोचते हुए कहा—"आपका कहना सत्य है। ना-मालूम मैं इतनी कमजोर क्यों हो गई हूँ। जो विपत्ति मेरे ऊपर आई है, वही सब पर, आप पर भी आई, किन्तु फिर मैं अकेली ही क्यों ऐसी कमजोरी महसूस कर रही हूँ?"

"अपनी-अपनी सहन शक्ति होती है। फूल की पंखड़ी जिस धूप से मुरझा जाती है, उसी वृक्ष की टहनियाँ और पत्ते तो नहीं मुरझाते।"

"किन्तु मैं यह मानने को तैयार नहीं हूँ; कम से कम अपने सम्बन्ध में। मैं उसी तरह सबल और सुदृढ़ हूँ जैसे कोई पुरुष हो सकता है, कोमलता तो परिस्थितियों का परिणाम है, केवल नारी जाति के लिए वह सुरक्षित नहीं हुई है। उसी प्रकार शक्ति और बल, साहस तथा सहन-शक्ति केवल पुरुषों के एकाधिकार की वस्तु नहीं है।"

"अब ज्ञात हुआ कि आप क्यों बारम्बार मेरी सहायता ठुकरा रही थीं।" कहते-कहते युवक हँस पड़ा।

"नहीं, मैं अपनी शक्ति को तौल रही थी। इस संसार में बिना जरूरत किसी की सहायता लेना अनुचित है। इस सिद्धान्त को तो आप भी मानते होंगे।" युवती ने गम्भीरता के साथ अपनी झेंप मिटाने के उद्देश्य से कहा।

"सिद्धान्त को तो सबको मानना ही पड़ता है, परन्तु किसी सिद्धान्त का गुलाम बन जाना भी तो श्रेयस्कर नहीं है।"

युवती ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। वह हाथ का सहारा देकर उसके ऊपर चढ़ने में सहायता देने लगा। एक-एक सोपान पर ठहरते हुए वे डेक पर आ गये।

प्राची दिशा के क्षितिज पर सूर्य रक्ताम्बर धारण किए हुए जल-पोत को

देदीप्यमान कर रहा था। प्रकृति निस्पन्द और शान्त थी। जगत की आत्मा सूर्य प्रत्येक आरोही के मन मे उत्साह और तेज भर रहा था और यह सन्देश दे रहा था कि, "जागो, उठो और कार्य में लग जाओ। यही जीवन का लक्षण है। विगत को विस्मृति के सागर में डुबा दो, उस पर शोक करना व्यर्थ है तथा मानव की मर्यादा के विपरीत है।"

सूर्य की सुखद किरणों ने युवती को उल्लास प्रदान किया। वह चारों दिशाओं में व्याप्त रत्नाकर और प्रकाश की गरिमा देखकर उत्फुल्ल हो गई। उस दृश्य को देखकर वह इतनी आत्म-विभोर हो गई थी कि युवक के हाथ से अपना हाथ छुड़ाना भूल गई। युवक भी उसी भाँति प्रसन्न था, उसके मन के अवसाद की कालिमा को स्वर्ण-मयूखें नष्ट कर रही थीं।

"कितना सुन्दर दृश्य है! प्रकृति कितनी सुन्दरी है!! अब सोचती हूँ कि क्या कल रात्रि की भयावनी प्रकृति वही थी जो इस समय प्रशान्त, सुन्दर, आकर्षक, भव्य, तथा अपनी पूजा करने को आह्वान कर रही है।"

"हाँ; है तो वही, केवल परिस्थितियों का भेद है। इसी प्रकृति के कुछ थोड़े से भेद जानकर मानव कितना गर्व करने लगा है, और वह उनके बल पर संसार को नष्ट करने का स्वप्न देखने लगा है। उसकी संहारक वृत्तियों के साथ ही उसने अपना मेल-जोल बढ़ाया है, तथा अनेकानेक उपाय सृष्टि संहार के लिए ढूँढ़ा करता है।

"ऐटम तथा हाईड्रोजन बम का आविष्कार तो मानव ने अपना अस्तित्व मिटा देने के लिए किया है—और शायद वह दिन दूर नहीं है; जब वह अपने आविष्कारों की ध्वजा पर खड़ा होकर प्रलय का आवाहन करेगा।"

"मैं सोचता हूँ, शायद ऐसा नहीं होने पावेगा। संसार की विधायक शक्तियाँ, संहारक शक्तियों से कहीं प्रबल हैं। नाश उन्हीं का होगा जो दूसरों के नाश का बीड़ा उठाते हैं। प्राकृतिक न्याय का इससे अधिक सुन्दर तथा तथ्यपूर्ण स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। जब आप इस पर विचार करें कि जिन-जिन व्यक्तियों ने संहारक अस्त्रों का आविष्कार किया है, सबसे पहले वे ही उसके शिकार हुए हैं। प्रथम ऐटम बम का बनाने वाला राबर्ट आपेन हीमर इस

समय जेल में अपना जीवन यापन कर रहा है।"

"किन्तु इससे क्या, हिरोशिमा और नागासाकी के लाखों प्राणों की हानि की पूर्ति क्या उसके आविष्कारिक के जेल जाने से हो जायगी?"

"क्रिया तथा प्रतिक्रिया का अनवरत चक्र चलता रहता है। हिरोशिमा तथा नागासाकी के नर—संहार की प्रतिक्रिया अवश्य होगी, केवल उसके लिये समय अपेक्षित है। वह प्रतिक्रिया किस रूप में होगी; यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता। 'आँख के बदले आँख तथा दांत के बदले दांत' जैसा न्याय प्रकृति करेगी, या उससे भी भयकर, त्रासपूर्ण प्रतिशोध उसका होगा, यह तो कहने में अवश्य मैं असमर्थ हूँ और यह भी नहीं कह सकता कि प्रतिक्रिया का चक्र उनकी इस पीढ़ी में पूर्ण होगा या आगामी आने वाली पीढ़ियों को अपने पूर्वजों के पापों का परिणाम भुगतना पड़ेगा, परन्तु इतना निर्विवाद है कि प्रतिक्रिया अवश्य होगी। प्रकृति का यह शाश्वत नियम है।"

"यह तो कमजोरों का प्रलाप है। अपनी कमजोरी को छिपाने के लिये "दैवी प्रतिशोध" के अतिरिक्त और कोई बहाना तो अभी तक मनुष्य ढूँढ़ नहीं पाया है। और यह मनोवृत्ति भारत निवासियों की सदा रही है, जिससे वे लगभग एक हजार वर्ष तक गुलाम रहे, और यदि यह विचारधारा आलसियों, अकर्मण्यों के प्रसाद से कुछ दिन तक बनी रही तो विदेशियों की दासता हमें फिर करनी पड़ेगी।"

"गुलामी में भी देश कभी निश्चेष्ट नहीं रहा। वह सदैव अपनी परिस्थितियों से जूझता रहा है। एक हजार वर्ष का गुलामी का समय जो आप कहती हैं, उसमें हमने सदैव स्वतन्त्र होने की चेष्टा की है। हम अकर्मण्य या आलसी कभी नहीं रहे।"

युवती खिलखिलाकर हँस पड़ी। कटु व्यंग्य वायु मंडल में गूँज गया।

"हमारे यहाँ एक कहावत प्रसिद्ध है, जिसका अर्थ है, "कानी को कौन सराहे, उसकी माँ!" कहती हुई युवती पुनः हँस पड़ी। युवक कुछ अप्रतिभ रह गया।

"तो क्या आप राजपूतों का निरंतर संघर्ष, जो उन्होंने विदेशी शासकों के

साथ किया, अथवा १८५७ का विद्रोह, सभी भारतीयों की अकर्मण्यता की कहानी मानेगीं ?"

"यह तो मैं नहीं कहती, परन्तु इतना अवश्य कह सकती हूँ कि इस देश ने पारस्परिक कलह और ऊँच-नीच के भेद-भाव रखने के लिए अवश्य ख्याति प्राप्त की है। जिधर देखिए, अब भी उधर छोटे-छोटे घरौंदे उठे हुए हैं। पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, कलह, बुराई, घृणा आदि विनाशक प्रवृत्तियों को यहाँ के निवासी सदैव पनपाते और पोषण करते आए हैं, इसीलिए कभी उनके प्रयास सफल नहीं हुए। क्या आप इस तथ्य को अस्वीकार कर सकते हैं ?"

"इसको प्रायः सभी विचारवान व्यक्ति स्वीकार करेंगे। इन विनाशक तत्वों का बोलबाला इसलिये था कि मध्ययुग में हमारे देश की परिधि बहुत संकीर्ण हो गई थी। हमारे विदेशीय व्यापार के क्षीण होने से हमारी दुनिया थोड़े में सीमित रह गई थी। व्यापार के ह्रास का कारण था हमारे देश की उस युग में अन्तः कलह। देश छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया था और शान्ति नहीं थी।"

"और देश की सार्वभौमिकता क्यों नष्ट हुई ? इसके उत्तर में आप क्या कहेंगे ?" कहती हुई युवती कुछ मुस्कराई। युवक मौन हो गया।

"आप उत्तर क्यों नहीं देते ? आपके मौन रहने से मैं मान लूँ कि मैं जो कहती हूँ, वह शत-प्रतिशत ठीक है।"

"उससे इनकार कौन कर सकता है। दासता में इन्हीं विनाशक तत्वों का पोषण होता है। आप—।"

इसी समय पोत का कप्तान वहाँ आ पहुँचा और युवक को चुप हो जाना पड़ा।

कप्तान ने उनसे प्रश्न किया—"कल तूफान बड़ा भयंकर था, आप लोगों को कोई चोट तो नहीं आई ?"

युवती के उत्तर देने के पहले युवक ने कहा—"कोई विशेष चोट तो नहीं आई, लेकिन जैसा विकट अनुभव हुआ है, वैसा जीवन में कभी नहीं हुआ।"

"यह तो आप ठीक कहते हैं। शायद मिसेज की भी यही राय है, क्यों मेरा

अनुमान ठीक है न मिसेज...।" कहते-कहते वह युवती की ओर मुखातिब हुआ।

युवती का मुख लाल हो गया। उसे अब ध्यान आया कि उसका हाथ अभी तक युवक के हाथ में है। उसने एक हलके झटके के साथ छुड़ा लिया और वह बिना कोई उत्तर दिए हुए शीघ्रता से अपनी कैबिन की ओर चली गई। कप्तान सुरेशचन्द्र अप्रतिभ तथा कुछ कुंठित हो गए, मानो उन्होने कोई अपराध कर डाला हो।

"कृपा करके आप अपनी श्रीमती जी को समझा दीजिएगा कि यह विपत्ति आकस्मिक थी, और हमारे प्रबन्ध में कोई कमी नहीं थी। प्रकृति का वह आक्रमण इतना प्रचंड और दुस्तर था, जिसका मुकाबिला करने के लिए हम लोग सब प्रकार से अक्षम थे। उनको शायद बड़ी मार्मिक पीड़ा पहुँची है, और शायद उनका सारा क्रोध हमारे यानी जहाज के कर्मचारियों के प्रति है। मैं पुनः क्षमा याचना के लिए किसी दूसरे उपयुक्त समय पर आऊँगा।" यह कह कर वह जाने लगा।

युवक ने उसे रोकते हुए कहा—"आप जब भी आवें, आपका स्वागत है, किन्तु एक प्रार्थना यह है कि आप उन भद्र युवती को मेरी मिसेज कह कर सम्बोधित न कीजिएगा। हम एक दूसरे से नितान्त अपरिचित हैं कोई किसी को नहीं जानता। बिना जाने-बूझे हुए आप केवल धारणा से कोई सम्बन्ध न लगाया कीजिए। इसका परिणाम कभी भयंकर भी हो सकता है।"

"यह तो बड़ी भद्दी गलती हुई, आप से मैं क्षमा माँगता हूँ और उनसे भी क्षमा-याचना करूँगा। जहाज की कुशलता से मैं इतना प्रसन्न हूँ, जिससे मैं अपना बौद्धिक सन्तुलन खो बैठा। आपने मेरा ध्यान इस ओर आकर्षित करके मेरा बड़ा उपकार किया है। आगे से मैं बहुत सतर्क रहूँगा।"

कप्तान क्षमा-याचना करता हुआ चला गया।

—३—

तूफान से यद्यपि जलयान अथवा उसके यात्रियों को कोई क्षति नहीं पहुँची थी, तथापि उसकी चर्चा कई दिनों तक बनी रही। प्रायः सभी यात्री नए थे, और यह उनकी पहली समुद्र-यात्रा थी। उनमें से अधिकांश समुद्री बीमारी से ग्रस्त थे और कितने तूफान के आघात से आहत हो गए थे, इसलिए जलयान पर चहल-पहल कुछ अधिक नहीं रह गई थी। युवक तो उस तूफानी आघात को सहन कर पचा गया था; किन्तु युवती ने स्वयं अपने को अपने कैबिन में बन्दी बना रखा था, जिससे किसी को उसकी यथार्थ दशा का ज्ञान नहीं हुआ।

इधर दो दिनों से युवक को युवती का दर्शन नहीं हुआ था, इससे उसकी व्याकुलता बढ़ गई। उसने साहस कर कितनी ही बार उसके कक्ष का द्वार थपथपाया, किन्तु न तो दरवाजा ही खुला, और न किसी ने उत्तर ही दिया। अधिक शोर मचाकर वह दूसरे यात्रियों की शान्ति भंग करने का साहस न करता था, क्योंकि युवती से उसका उतना ही सम्बन्ध था जो प्रायः यात्रियों में होता है। किन्तु वह अपनी मानसिक चिन्ताओं से विकल था।

युवती की चुप्पी से परेशान युवक ने जहाज के कल-पुर्जों को देखकर मन की विकलता को कम करने का निश्चय किया। तीसरे दिन वह कप्तान के कक्ष की ओर टहलते-टहलते गया। कप्तान सुरेशचन्द्र ने उसे देखकर एक मन्द मुस्कान के साथ उसका स्वागत किया और पास की कुर्सी पर बैठने का संकेत किया।

युवक ने बैठते हुए कहा—"आपको मेरी पड़ोसिन के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात है?"

सुरेशचन्द्र ने एक मृदुल हास्य के साथ पूछा—"कौन सी आपकी पड़ोसिन, मैं समझा नहीं।"

"वही, जिसके साथ आपने मुझे तूफान आने वाली रात्रि के प्रभात में देखा था और उनको मेरी मिसेज़ बना डाला था।"

"अच्छा वह ! मैं उस दिन बड़ी भयानक भूल कर बैठा था। मैंने उनसे लिखित क्षमा-याचना की थी। उसके उत्तर में मुझे आदेश मिला कि उनका भोजन उन्हीं के कमरे में भेज दिया जावे। मैंने वह प्रबन्ध कर दिया और वे अब अपनी केबिन में ही खाती हैं। क्या आपका केबिन भी उन्हीं के पास है ?"

"जी हाँ, केवल एक पतली सी लकड़ी की दीवाल हम लोगों के बीच में है।"

"तो क्या आपका भी कुछ सम्बन्ध 'विश्व-स्वास्थ्य-संघ' से है ?"

"यह आप किस आधार पर कहते हैं ?"

"इसी आधार पर कि मुझे इसकी सूचना पहले मिल गई थी कि—'विश्व-स्वास्थ्य-संघ' से सम्बन्धित दो व्यक्ति मेरे जहाज से केनिया के लिए यात्रा करेंगे और उनके लिए स्थान सुरक्षित रखा जाये। कमरा नं० ९९ तथा १००, उन लोगों के लिए मैंने सुरक्षित रखकर संघ के मंत्री को इसकी सूचना दी थी।"

"तब तो मालूम होता है कि श्रीमती जी भी उसी उद्देश्य से जा रही हैं, जिससे मैं जा रहा हूँ। तब तो बड़ा आनन्द रहेगा।"

"इसके अर्थ यह हैं कि आप दोनों नितान्त अपरिचित नहीं हैं।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है। हम लोग एक दूसरे को बिलकुल नहीं जानते।"

"किन्तु आप दोनों की नियुक्ति तो एक ही संस्था द्वारा हुई है।"

"हाँ, इतना तो अवश्य सत्य है कि एक वर्ष के लिए मुझे विभिन्न प्रकार के विषों के सम्बध में अनुसन्धान कर उनके निरोध के उपाय जानने के लिए नियुक्त किया गया है। गत वर्ष अफ्रीका में सर्प-दंशन से अनेक मृत्युयें हुई हैं। केनिया के आस-पास के प्रदेश में मोम्बा जाति के विषधर बहुतायत के साथ पाए जाते हैं। इनके विष के निवारण करने का उपाय अभी तक ज्ञात नहीं हुआ है। मुझे इस भयानक सर्प के विष की निरोधक औषधि ढूँढ़ निकालना है। इसी उद्देश्य से मैं केनिया जा रहा हूँ।"

"मैं सोच रहा हूँ कि केनिया के मुख्य बन्दर का नाम भी 'मोम्बासा' है।

क्या इस बन्दरगाह से उस भयानक विषधर के नाम से कोई सम्बन्ध तो नहीं है ?"

"मैं इस विषय पर कुछ नहीं कह सकता। हाँ, नाम में बहुत कुछ एकरूपता है। संभव है कि 'मोम्बासा' नगर के आस-पास इस जाति के सर्प बहुतायत से मिलते हों।"

"आप की नियुक्ति से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि केनिया में वे अनायास मिल जाते हैं। मैंने भी यात्रियों से इस जाति के सर्पों के विषय में सुना है ऐसा मुझे याद पड़ता है। तब तो आप डाक्टर भी होंगे।"

"गत वर्ष मैंने लखनऊ मेडिकल कालेज से डिग्री लेकर विषों पर अनुसन्धान कार्य आरम्भ किया था। मुझे कई प्रकार के विषों का ज्ञान हुआ, और उनके निरोध तथा चिकित्सा के सम्बन्ध में मैंने उपाय भी ढूँढ़ निकालने में सफलता प्राप्त की थी। यूनीवर्सीटी के अधिकारियों ने मेरा नाम 'विश्व-स्वास्थ्य-संघ' के पास विष पर अनुसन्धानकारियों में भेजा और मुझे उसने केनिया में छात्र-वृत्ति देकर भेजने का निश्चय किया। मेरे मन में बहुत दिनों से केनिया जाने का विचार था, क्योंकि मेरे पिता का बाल्य तथा किशोर जीवन वहीं बीता था और वे प्रायः हम लोगों से वहाँ की अनेकों मनोरंजक घटनाओं को बताया करते थे। इससे इस देश को देखने की उत्सुकता होना स्वाभाविक थी। जब अनायास ही 'विश्व-स्वास्थ्य-संघ' की कृपा से वह अवसर प्राप्त हुआ तब मैंने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।"

"तब तो 'एक पंथ दो काज' वाली कहावत चरितार्थ होती है। अब आप अनुसंधान करते हुए अपने पिता के कार्य-क्षेत्र को भी देख सकेंगे। आपके पिता वहाँ कैसे गए थे ?"

"मेरे पितामह उन्नीसवी शताब्दि के अन्तिम भाग में मजदूर के रूप में 'केनिया सेटिलमेन्ट' में गए थे। वे शर्तबन्द मजदूर थे, अर्थात् स्वदेश लौटने का अधिकार वे खो चुके थे और गोरों की एक कम्पनी के द्वारा वे खरीद लिए गए थे। बाद में इस गुलामी प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन उठा, तो पहले उनको अपने परिवार के व्यक्तियों को बुलाकर रखने की अनुमति मिली। मेरे पिता का जन्म वहीं हुआ था। इसके पश्चात् जब आन्दोलन ने जोर पकड़ा तो मजदूरों

की भरती कानून बन्द कर दी गई और मजदूरों को स्वदेश लौटने की अनुमति मिल गई। उस समय तक मेरे पितामह का देहान्त हो चुका था और पिता कुछ दिनों बाद एक छोटी पूँजी लेकर भारत आ गए। यहाँ पर उन्होंने उस पूंजी से व्यापार आरम्भ किया, और थोड़े ही काल में उनको अपने व्यापार में सफलता मिलने लगी।"

"तब तो यह कहिए कि आपके पितामह भी उस घृण्य कुली-प्रथा के शिकार थे, जिसको समाप्त करने में महात्मा गांधी को सफलता मिली थी।"

"एमीग्रेशन एक्ट बन्द करवाने में उनका कितना हाथ था, यह मैं नहीं जानता, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके आन्दोलन से मजदूरों की सामाजिक व्यवस्था में कुछ सुधार अवश्य हुआ था। मेरे पिता के सामने ही महात्मा गांधी के आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ था, किन्तु उसमें उन्होंने कोई भाग नहीं लिया और स्वदेश लौट गए।"

"आपसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। यह नियति का चमत्कार ही तो है कि जहाँ पितामह कुली होकर गया था; वहां उसका पौत्र एक स्वतन्त्र देश का नागरिक बन अनुसंधान कार्य में प्रवृत्त होने जा रहा है।"

कप्तान और युवक दोनों हँसने लगे।

कप्तान ने सहास्य पूछा—"हम लोग इतनी बातें कर गए, किन्तु एक दूसरे के नाम से अभी तक अपरिचित हैं।"

युवक ने उत्तर दिया—"मेरा नाम विश्वनाथ है।"

"और मेरा नाम सुरेशचन्द्र है। पहले मैं एक अँगरेजी कम्पनी के जहाज पर नौकर था, और जब स्वतन्त्र भारत का जहाजी बेड़ा बना तो मुझे कप्तान का पद प्राप्त हुआ और इस जलयान का भार सौंपा गया। मैं रहने वाला कानपुर जिले का हूँ और अभी तक अविवाहित हूँ।"

"अविवाहित होने के कारण ही आप इतनी भद्दी गलतियां कर बैठते हैं; जैसे आपने तूफान के भोर उस युवती को मेरी पत्नी बना कर किया।"

विश्वनाथ और सुरेशचन्द्र की हँसी से वह छोटा-सा कमरा गूँज उठा।

सुरेशचन्द्र ने हँसी को रोकते हुए कहा—"कभी-कभी मैं यह सोचने लगता

हूँ कि वे भावनाएँ कैसी होंगी जो उस युवती के मन में मेरी उस भूल के कारण उठी होंगी।"

"पुरुष जाति के प्रति घृणा, द्वेष की भावनाओं के अतिरिक्त अन्य भावनाएँ नहीं उठ सकती। इस थोड़े संसर्ग से जो कुछ मैं समझ सका, उससे यही निष्कर्ष निकालता हूँ कि वह अपने को एक नारी की भाँति असहाय अथवा 'अबला' नहीं समझती और शायद उनको इन शब्दों स चिढ़ भी है। मैंने जब-जब उसकी सहायता करने के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित कीं, तब-तब उसने इनकार किया; किन्तु जब उसकी शारीरिक शिथिलता तथा दुर्बलता अपनी चरम सीमा को पहुँच गई थी, तभी उसने मेरी सहायता लेना मन्जूर किया। इससे प्रकट होता है कि वह स्वाभिमानी स्वभाव की है।"

"ऐसा तो होना ही चाहिए यह तो युगधर्म है। भारतीयों ने विशेषकर स्त्री जाति को जबरदस्ती अबला बना डाला है, उसकी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है। इस युग में स्त्री जाति पुरुष जाति की आधीनता स्वीकार नहीं कर सकती। उसी प्रकार हमें भी बदलजाना चाहिए और स्वेच्छा से उनके व्यक्तित्व को सम्मान देना स्वीकार करें, नहीं तो वह संघर्ष उत्पन्न होगा, जिससे गार्हस्थ्य जीवन की शान्ति नष्ट हो जायगी।'

"अब प्रश्न यह उठता है कि गार्हस्थ्य जीवन का अस्तित्व रहेगा भी?"

"क्यों नहीं, प्रकृति के इस नियम का उल्लंघन तो कभी नहीं हो सकता और न आज तक कोई उसका उल्लंघन करने में समर्थ ही हुआ है। हाँ, जीवन-प्रणाली में अन्तर अवश्य आ जायगा। यह कोई ऐसी नई बात नहीं है, जिससे नाक-भौं सिकोड़ी जाय। समाज का संस्कार सदैव युगधर्म के अनुसार आदिकाल से होता आया है। इससे तो आप सहमत होंगे ही।"

"हाँ, संस्कार जीवन का लक्षण है, यह मै मानता हूँ, परन्तु उलटे को सीधा तथा सीधे को उलटा कर देना संस्कार कहाँ तक कहा जायगा, यह विचारणीय है।"

"सामाजिक अवस्थाएँ सदैव परिवर्तन शील रही हैं। जिस जाति ने अपने समाज में युग की पुकार के अनुकूल परिवर्तन नही किए, वह जाति नष्ट हो

गई, वह समाज नष्ट हो गया। इतिहास इसका प्रमाण है। हमारी भावनाओं तथा चेतनाओं में निरन्तर उसी भाँति परिवर्तन हुआ करता है, जिस भाँति साँप अपनी केंचुलें बदलता है। पुरातन को छोड़कर नवीनता ग्रहण करना ही जीवन का लक्षण है। शताब्दियों तक पुरुष वर्ग ने नारी पर अपना अबाध शासन रखा। उनको जो-जो यातनाएँ दी गई हैं, वैसी शायद घोर से घोर शत्रुओं ने कभी न दी होगी। स्त्री जाति को असहाय तथा पंगु बनाने का श्रेय तो हमी पुरुषों को है।"

"यदि नियमबद्ध होकर किसी एक व्यवस्था में रहना अपराध है, तो अवश्य पुरुष जाति इसके लिए अपराधी ठहराई जा सकती है।"

"ठीक है, नियमित व्यवस्था कदापि अपराध नहीं है, अभी तक एक दूसरी व्यवस्था थी, जिससे अन्तर्गत समाज परिचालित होता था उसमें पुरुष का स्थान ऊँचा रखा गया था, शायद उस काल को देखते हुए वह उचित ही रहा होगा। हम यह भी माने लेते हैं, किन्तु अब जब काल में इतना परिवर्तन घटित हो गया है, तब क्या वही पुरानी सामाजिक प्रणाली हमारे इस समय के अनुकूल बनी रह सकती है? अब यह युग समानता का है। 'श्रेष्ठ' तथा 'निम्न' की भावनाओं का अन्त हो रहा है, जाति-पांति के बन्धन शिथिल होकर टूट रहे हैं। विश्वबन्धुत्व तथा सर्वांगीण समत्व का बोलबाला बढ़ रहा है, तब यह कैसे संभव है कि नारी जाति की सामाजिक अवस्था में परिवर्तन घटित न हो। जब उस परिवर्तन को अपने सामने देखते हैं तो घबड़ाकर चिल्ला उठते हैं कि इससे पुरानी सामाजिक व्यवस्था, अथवा गार्हस्थ्य जीवन छिन्न-भिन्न हो जायगा। यह तो स्वार्थ की भावना से ओत-प्रोत प्रणाली है।"

"किन्तु परिवार का क्या होगा?" भारतीय संस्कृति में परिवार बनाने की परिपाटी चली आई है, वह तो विनष्ट हो जायगा।"

"वह क्यों विनष्ट होगा। पुरुष और स्त्री ही परिवार को जन्म देते हैं। उनके संसर्ग से जो सन्तानें उत्पन्न होती हैं, वही उनका परिवार होता है या और कुछ?"

"मेरा मतलब है कि जब नारी अपने व्यक्तित्व को एकाकी समझने लगेगी, तब उसमें परिवार बनाने की भावना ही नहीं रह जायगी क्योंकि परिवार तभी बन पाता है, जब दोनों एक दूसरे के आश्रित हों। कर्त्तव्य और अधिकार साथ-साथ चलते हैं। प्रकृति ने भी नारी जाति को सन्तान का भार वहन करने के लिए बनाया है। सन्तान उत्पन्न होते ही कितना दायित्व बढ़ जाता है और उसका निर्वाह नारी को ही करना पड़ता है। जब नारी उस कर्त्तव्य का पालन नहीं करेगी, अथवा अपने को स्वतन्त्र कर लेगी तो फिर...।"

"आप उसकी चिन्ता मत कीजिए। प्रकृति स्वयं उनसे अपना पावना वसूल कर लेगी। नारी अपनी सन्तान का पालन-पोषण इस परिवर्तित अवस्था में में करेगी, जैसा वह करती आई है, उसी प्रकार परिवार भी बनेगा। केवल पुरुषों की सत्ता, जिसका उसने अभी तक दुरुपयोग किया है, नष्ट हो जायगी। स्त्री और पुरुष दोनों का व्यक्तित्व बिल्कुल स्वतन्त्र होगा। जब हम सहकारिता के सिद्धान्त के अनुसार कोई व्यापार कर सकते हैं, तब उसी के अनुरूप हम क्या परिवार की स्थापना नहीं कर सकेंगे?"

"कर सकेंगे या नहीं, अभी मै नहीं कह सकता, किन्तु...।"

"किन्तु-विन्तु कुछ नहीं। पारिवारिक जीवन सहकारिता के अतिरिक्त और क्या है? क्या परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे की सहायता नहीं करते?"

आपके इस तर्क में कुछ जोर अवश्य है, लेकिन ..।"

"लेकिन-वे किन क्या करते हैं, यह स्पष्ट क्यों नहीं कहते कि अभी तक जिस प्रभुता का आप आनन्द ले रहे थे, वह नष्ट हो जायगी। भाई, इस युग में किसी का भी अनुचित प्रभुत्व नहा चलेगा। मनुष्य मात्र ने अपना वास्तविक मूल्य समझ लिया है—उसके व्यक्तित्व ने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है। अभी गुलामी की प्रथा अपने अनेक रूपों में जीवित चली आ रही थी, वह इस युग में वस्तुतः समाप्त हो रही है। 'हमारे भाग्य में यही बदा है,' 'भगवान ने उन्हें ऊँचा बनाया है और हमें नीचा' आदि पूँजीवादी विचारों का युग बीत गया है। अपनी सामाजिक दुरावस्था के लिए अब मनुष्य भाग्य को नहीं कोसता, बल्कि कोसता है सामाजिक व्यवस्था को।"

"तब क्या भाग्य और ईश्वर का अस्तित्व ही मिट जायगा ?"

"अस्तित्व किसी का नहीं मिटेगा, सब विचारधाराएँ रहेंगी, किन्तु उनके सोचने की प्रणाली में विघटन अवश्य होगा। 'ईश्वर' और 'भाग्य' हमारे विचारधाराओं के ही तो परिणाम हैं। कभी साकार होकर तो यह कहने नहीं आए कि 'हम ईश्वर हैं,' 'हम भाग्य हैं' हमारा अस्तित्व स्वीकार करो' नहीं तो हम तुम्हें नष्ट कर देंगे, जब मनुष्य अपने प्रयासों में असफल होता है तो वह अपनी कमजोरी छिपाने के लिए, अथवा अपनी दृष्टि में अपने प्रयास की अपूर्णता न मानने के लिए, सारा दोष भगवान या भाग्य पर छोड़, निश्चिन्त होकर सन्तोष कर लेता है।"

"फिर क्या कारण है कि बारम्बार प्रयास करने पर भी सफलता नहीं मिलती ? उसके लिए कौन उत्तरदायी है ?"

"अपनी असफला के लिए आप 'भाग्य' अथवा 'ईश्वर' को दोषी ठहरायेंगे ? यह तो आप सरासर अन्याय कर रहे हैं ?"

"क्या ईश्वर और 'भाग्य' का अस्तित्व नहीं है ?"

"है क्यों नहीं ! वह भी एक प्रकार की विचारधारा है। जैसी अन्य विचार धाराएँ हैं, वैसी यह भी एक है। किन्तु मनुष्य स्वार्थ की भावना से सदैव अभिभूत रहता है; इसीलिए उसके विचारों के परिणामो में भूल हो जाती है। 'स्वार्थ की भावना' थोड़ी देर के लिए हटा दो और फिर जो कुछ सोचेंगे, उसके परिणाम शुद्ध ही होंगे।

"तब तो कहिए कि सारे अनर्थ की जड 'स्वार्थ' है। किन्तु 'स्वरक्षा' अथवा 'स्वार्थ' प्रत्येक प्राणी की जन्मजात अथवा प्राकृतिक भावना है, इससे छुटकारा नहीं हो सकता।"

"जहाँ तक दूसरों की हानि न करके 'स्वरक्षा' तथा 'स्वार्थ' किया जाता है, वहाँ तक वह वैध अथवा प्राकृतिक है। किन्तु जहाँ उस परिधि के बाहर कोई स्वार्थ पूरा किया जायगा, वह अवैध हो जायगा। तभी तो हमारे ऋषियों, विचारकों ने कहा है कि 'धर्म की गति अतिसूक्ष्म है।"

इसी समय जहाजी टेलीफोन की घंटी बजने लगी। 'प्रकाश-रेखा' पूर्णतया

आधुनिक सुविधाओं से व्यवस्थित था। उसकी निजी टेलीफोन प्रणाली थी, और प्रत्येक यात्री जहाज के तमाम यात्रियों से आलाप कर सकता था।

कप्तान सुरेशचन्द्र ने रिसीवर उठाया और सन्देश सुनकर उत्तर दिया— "अच्छा, आप बीमार हैं, अभी-अभी डाक्टर को भेजता हूँ।"

रिसीवर रखते हुए सुरेशचन्द्र ने मुस्कराते हुए विश्वनाथ की ओर देखा, फिर कहा—"आपकी होने वाली 'मिसेज' बीमार हो गई हैं। यह उन्हीं का फोन था। कहती हैं, दो दिन तक तो मैंने कोई ध्यान नहीं दिया, किन्तु अब शायद डाक्टर की सहायता के बिना काम नहीं चलेगा, इसलिए शीघ्र डाक्टर भेजिए।"

"मैं कहता न था कि वे बड़ी कड़ी मिजाज की हैं। झुकना तो वे शायद जानती ही नहीं।"

"आइए, डाक्टर को लेकर हम लोग भी चलकर उनको देख आवें। दो दिनों तक बाहर न निकलने का शायद यही कारण था कि वे अस्वस्थ थीं। इस साधारण-सी बात पर आपने न-मालूम कितनी अद्भुत-अद्भुत कल्पनाएं कर डाली। इससे निष्कर्ष यही निकलता है कि आप प्रेम संसार में भ्रमण करने लगे हैं। क्यों?"

कहते-कहते उन्होंने ठहाका लगाया। विश्वनाथ को भी उसमें योग देने के लिए बाध्य होना पड़ा।

— ४ —

केबिन के द्वार पर थपकियाँ देने के शब्द को सुनकर जब युवती ने द्वार खोला, तो वह तीन व्यक्तियों को देखकर कुछ ठिठक गई, और उसने तुरंत द्वार बन्द कर देने का प्रयत्न किया। कप्तान सुरेशचन्द्र ने मृदुल कण्ठ से कहा— "अभी कुछ देर पहले आपने टेलीफोन से डाक्टरी सहायता प्राप्त करने का आदेश दिया था, इसलिए मैं डाक्टर लेकर सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। कृपा करके आप दरवाजा बन्द न करें।"

युवती कुछ क्रुद्ध-सी होकर रुक गई, फिर कहा—"मैंने केवल डाक्टर की माँग की थी।"

"जी हाँ, डाक्टर को लेकर मैं स्वयं इसलिए उपस्थित हुआ कि जो डाक्टरी परीक्षा के अनुसार सहायता देना आवश्यक हो, उसका मैं शीघ्र से शीघ्र प्रबन्ध कर सकूँ, और यह आपके पड़ोसी श्री विश्वनाथ हैं, और उनसे शायद आप परिचित भी हैं।"

युवती ने रुखाई के साथ कहा—"मैं किसी से परिचित नहीं हूँ, और न परिचित होना चाहती हूँ।" आप लोग डाक्टर को छोड़कर चले जाने की कृपा करें।"

कप्तान और विश्वनाथ के नेत्र एक दूसरे के आहत स्थान को देखने लगे। यह स्पष्ट था कि उनका प्रवेष निषिद्ध है। उन्होंने विश्वनाथ को वहाँ से हट चलने के लिए संकेत किया। डाक्टर ने मन ही मन हँसते हुए अन्दर प्रवेश किया।

विश्वनाथ के कमरे में आकर कप्तान ने कहा—"कहिए।"

"क्या कहूँ, कुछ अजीब मामला है। नाक पर मक्खी बैठने देगी; इसमें भी सन्देह है।"

"मुझसे तो पहले ही से रुष्ट है, क्योंकि मैं एक बार उसके साथ अनजाने गलती कर बैठा था और आज दुबारा फिर थोड़ी सी भूल हो ही गई।"

"वह क्या?"

"यही कि मैंने आपका नाम भी ले दिया। हम दोनों को एक साथ देखकर शायद उसका घाव ताजा हो गया।"

"हो सकता है, किन्तु जैसा मैंने कहा, उसका स्वभाव ही पुरुषों से घृणा करने का है।"

"अब तो यही सिद्ध होता है।"

"आप किसी स्त्री को भेजिए तो उसका निरादर नहीं होगा।"

"उसका निरादर करने का कोई कारण नहीं है। किन्तु हमारे तुम्हारे निरादर के लिए पर्याप्त कारण हैं।"

"जैसा समाज आजकल संगठित हो रहा है; उसमें इस प्रकार की भूल की कोई गुरुता नहीं है, फिर आपकी क्षमा-याचना और मेरे खण्डन से स्थिति साफ हो जाती है। उसकी भावुकता भी एक कारण हो सकती है।"

"मैं अब यह सोच रहा हूँ कि आप दोनों जब एक ही जगह कार्य करेंगे, तब कैसे निर्वाह होगा?"

"यदि हम दोनों का अनुसंधान-क्षेत्र अलग-अलग हुआ, तब तो कोई अड़चन नहीं पड़ेगी; और हम बिना मिले हुए अपना-अपना काम करेंगे। किन्तु यदि विषय एक हुआ, तब तो अवश्य कठिनाई होगी।

"अभी शायद उसे नहीं मालूम कि आप भी अनुसन्धान-कार्य के लिए केनिया जा रहे हैं।"

"मेरा भी ऐसा ही अनुमान है। मुझे उसकी उस स्थिति की कल्पना करके हँसी आती है, जब वह मुझको भी नैरोबी के सरकारी परीक्षणालय में काम करते देखेगी।"

"वास्तव में वह बड़ी मनोरंजक परिस्थिति होगी। उसको आकाश से गिरने जैसा आश्चर्य होगा।"

इसी समय डाक्टर ने आकर कहा—"वह इन्फ्लूएंजा से पीड़ित है। एक नर्स का प्रबन्ध करने के लिए कहा है।"

कप्तान सुरेशचन्द्र ने उठते हुए कहा—"आपके पास जो नर्स खाली हो, उसे भेज दीजिए। आपने उसका कैसा मिजाज पाया?"

"बड़ी ही मृदु भाषिणी हैं, पीड़ा सहन करने में समर्थ हैं। तूफान की रात्रि में उसे भयानक शीत लग गई, उसी दिन के प्रात:काल से उसकी तबियत खराब है, किन्तु दवा लेने की कोई जरूरत नहीं समझी। जब उसके हाथ पैर निश्चेष्ट हो गए तो उसने डाक्टरी सहायता लेना स्वीकार किया हैं। मुझको तो बड़े जीवट की लड़की मालूम होती है।"

"वह तो है ही, उसने अपना क्या नाम बताया?" विश्वनाथ ने पूछा।

"कान्ति कुमारी। क्यों आप क्या उससे परिचित हैं?"

"मैंने उससे जब परिचित होने की बात चलाई थी तब उसने जो उत्तर दिया था, उसे क्या आप भूल गए, डाक्टर साहब ?" कप्तान ने मुस्कराते हुए कहा।

डाक्टर भी उस घटना का स्मरण करता हुआ इस बार प्रकट में हँसा। विश्वनाथ लज्जित हो गए और दूसरी ओर देखने लगे।

डाक्टर ने कमरे के बाहर निकलते हुए कहा—"मुझे आज्ञा दीजिए। नर्स के साथ अभी दवा भेजने का प्रबन्ध करूँगा। हां, मैंने उसे कोई काम करने के लिए मना कर दिया है। उसे पूर्ण विश्राम करने के लिए कहा है।"

"वे दो दिनों तक विश्राम ही तो करती रहीं। कमरे के बाहर कभी नहीं निकली, यहाँ तक कि भोजन भी अपने कमरे में ही करती रही।"

"किन्तु उस केबिन की वस्तुएँ देखने से ज्ञात होता है कि वे एक वैज्ञानिक हैं और अपने परीक्षण बराबर करती रहीं; क्योंकि स्प्रिट लैम्प जल रही थी और टेस्ट ट्यूब में कोई घोल गरम हो रहा था।"

"अच्छा, ऐसी शारीरिक अवस्था में भी······।" विश्वनाथ अपना कथन पूरा न कर सके और कप्तान ने सहास्य कहा—"सच्चे वैज्ञानिकों के लिए समय का अभाव सदैव रहता है। आप यदि सच्चे अर्थ में एक वैज्ञानिक होते तो अवश्य ही अपने परीक्षणों में समय व्यतीत करते होते। तब आपको अनर्गल बातों को सोचने बिचारने के लिए अवकाश नहीं मिलता।"

डाक्टर हँसते हुए चले गए। विश्वनाथ लज्जा से लाल हो गए।

कप्तान ने भी प्रस्थान करते हुए कहा—"डाक्टर विश्वनाथ, आप भी दिमागी 'फ्लू' से पीड़ित मालूम होते हैं। आप भी पूर्ण विश्राम कीजिए। मैं अब चलता हूँ। नमस्कार।"

कप्तान के जाने के पश्चात् हतप्रभ विश्वनाथ ने एक सिगरेट जलाई और सोचने लगे—"अजीब यह लड़की है। इसका आचरण कुछ समझ में नहीं आता। नामालूम मुझसे क्यों घृणा करती है। मैंने अभी तक कोई ऐसी बात नहीं कही, और न कोई ऐसी चेष्टा की है जिसमें उसको कोई आघात पहुँचा हो। मैं नहीं समझ पाता कि क्यों मेरा उसकी ओर इतना खिंचाव है। यह मेरे मन की कमजोरी है। इस भाव पर विजय तो पाना ही पड़ेगा। मैं अब उससे

कोई सम्पर्क अपने विचारों में भी नहीं रखूँगा। मेरी इस कमजोरी पर कप्तान भी हँसता है। सभी हँसेंगे। हँसने की बात ही है।"

इसी समय नर्स ने आकर कहा—"आपको बगल के कमरे वाली बुला रही हैं।"

नर्स की बात सुनकर विश्वनाथ चकित होकर उसको देखने लगे। उन्होंने समझा कि उसने कोई भूल की है। उनको इस प्रकार देखते हुए नर्स भी कुछ अप्रतिभ हो गई।

विश्वनाथ ने पूछा—"आप शायद भूल कर रही हैं। मुझको नहीं; किसी अन्य पड़ोसी को बुलाती होंगी।"

"नहीं, मैं ऐसी भूल नहीं कर सकती। वे आपको ही बुला रही हैं।"

विश्वनाथ धड़कते हुए हृदय के साथ उसके पीछे-पीछे जाने लगे। विश्वनाथ ने कमरे में प्रवेश करने के पहले अनुमति ले लेना उचित समझा जिसमें कोई भूल न हो। उन्होंने द्वार पर खड़े होकर पूछा—"क्या मैं भीतर आ सकता हूँ?"

शय्या पर लेटी हुई युवती उठकर बैठ गई और बोली—"आइए।"

विश्वनाथ ने अन्दर प्रवेश किया और अपराधी की भाँति एक ओर खड़े हो गए। युवती ने कुछ देर तक उनकी ओर देखा और फिर नत-दृष्टि से कहा—"आपसे एक प्रार्थना है। वह यह कि आपने जो कुछ मेरी सहायता तूफान की रात्रि में की थी, उसके लिए मैं विशेष रूप से उपकृत हूँ, किन्तु साथ ही यह भी चाहती हूँ कि उसको हमारी जान-पहचान बढ़ाने का आधार न बनाया जावे। आप और हम दोनों यात्री हैं। अपने-अपने निश्चित ठिकानों पर जा रहे हैं। न पहले कभी आपसे कोई सम्पर्क रहा था, और न आगे ही रहने की सम्भावना है। हम लोग जिस प्रकार अभी तक अपरिचित रहे, उसी प्रकार मैं रहना चाहती हूँ। आपने जिस प्रकार कप्तान के साथ मिलकर मेरी शान्ति में बाधा डालना चाहा, उससे मैं बहुत क्षुब्ध हूँ। मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि भविष्य में यदि हम एक दूसरे के मार्ग में पड़ भी जायँ तो आप न हमें पहचाने न मैं आपको। बिल्कुल अपरिचित व्यक्तियों की भाँति, बिना एक दूसरे

को देखे, अथवा नमस्कार इत्यादि किए हुए चले जाँय। आशा है कि आप बुरा न मानेंगे।"

"आखिर मेरा अपराध क्या है? यदि कोई गुस्ताखी हुई हो तो उसे क्षमा करने की कृपा करें।" विश्वनाथ ने गिरे हुए मन से कहा।

"गुस्ताखी नहीं हुई, बस इतना ही अच्छा है। यदि ऐसी कोई बात होती तो आपको उसका मजा मिल जाता। मैं यह आपको बता देना चाहती हूँ कि मैं अन्य भारतीय रमणियों की भाँति अपने को असहाय या अबला नहीं स्वीकार करती। मैं अपने अपमान का बदला चुकाना जानती हूँ और उतना मुझमें साहस है, बल है। मैं पुरुषों की अभिसन्धियों को बहुत अच्छी तरह समझती हूँ और कप्तान के साथ मेरे कमरे में प्रवेश करने की चेष्टा उसी अभिसन्धि का एक प्रदर्शन-मात्र था। मैंने उस समय कुछ अधिक कहना उचित नहीं समझा, क्योंकि आपका कुछ उपकार मेरे ऊपर था। केवल आपका अपमान न हो, मैने अपने विचारों को प्रकट करने से रोक लिया था। किन्तु शीघ्र से शीघ्र वास्तविक स्थिति से आपको अवगत भी कर देना चाहती थी, जिसमें आप कोई दूसरी चेष्टा न करे, और न मुझे आपको लाञ्छित करने का अवसर मिले। मेरी स्पष्टता के लिए आप क्षमा कीजिएगा।"

"आप तो मुझे बोलने का अवसर ही नहीं देना चाहती, बिल्कुल एकतर्फा कार······।"

युवती ने बीच ही में रोककर कहा—"आपसे मैं सफाई नहीं माँगती और न उसके सुनने के लिए मेरे पास समय ही है। अपने विचारों को स्पष्ट रूप से बता दिया है और वह रीति भी बता दी है जिस प्रकार भविष्य में हमारे आपसी सम्बन्ध रहें।"

"आपकी इच्छानुसार ही कार्य होगा।"

"ऐसा विश्वास दिलाने के लिए मेरा हार्दिक धन्यवाद स्वीकार कीजिए। अब आप जा सकते हैं। नमस्कार।"

युवती शिथिल होकर शय्या पर गिर पड़ी। लज्जा, मानसिक वेदना और क्रोध की भावनाओं से ओत-प्रोत विश्वनाथ अपने कमरे में लौट आए। इस

अकारण अपमान से वे बहुत मर्माहत हुए, और बिकल होकर कमरे में टहलने लगे।

—५—

विश्वनाथ की मानसिक वेदना बढ़ती ही गई। जितना उन बीती बातों को सोचते उतना ही अपने को वे क्षुब्ध, पीड़ित और लज्जित अनुभव करते। ऐसी बेतुकी बात न उन्होंने कभी सुनी या देखी थी। सहृदय यात्री की भाँति उन्होंने युवती कान्ति कुमारी के साथ व्यवहार किया था, मर्यादा की पूरी-पूरी रक्षा की थी, फिर भी उनको जिस भाँति उसने अपमानित किया था, उसका एक बहुत बड़ा आघात-चिह्न उनके मर्मस्थल में बन गया। डाक्टर और कप्तान की व्यंग्यमयी चुटकियाँ भी जले पर नमक लगा रही थी। यह उनका अकारण तथा अप्रत्याशित अपमान था, जिसकी वेदना कम ही न होती थी, वरन उनके सोचने, विचारने और मनन करने के साथ उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी।

सारी स्थिति पर विचार कर उन्होंने यही निश्चित किया कि वे भी अपने को अपनी केबिन में बन्द कर लें, और बाहरी दुनिया से सम्पर्क छोड़ दें। इस प्रकार रहने से शायद उनको शान्ति मिले। किन्तु उनका वह प्रयास भी निष्फल हुआ। शान्ति मिलने के स्थान पर घोर अशान्ति उनके पल्ले पड़ी। रात-दिन शय्या पर लेटे हुए करवटें बदलते रहते। सिगरेटों को फूँक फूँककर वे राख और अवशिष्ट टुकड़ों का ढेर लगाया करते, किन्तु मन का अवसाद फिर भी दूर न होता। अपने गत जीवन की कितनी ही बातों को वे सोचने लग जाते। कभी माँ का विषण्ण मुख उनकी आंखों के सामने नाचने लगता, कभी बहन मालती का बार-बार पत्र लिखने का अश्रु-पूरित अनुरोध याद पड़ता, कभी 'विश्व-स्वास्थ्य-संघ' द्वारा निर्वाचित होने के उपलक्ष में मित्रों की बधाई स्मरण होती, और कभी उन महत्वाकाक्षाओं की ओर उसका ध्यान जाता, जिनको पोसते हुए उन्होंने अफ्रीका महाद्वीप को प्रस्थान किया था। वे कभी मोम्बासा स्थित

डाक्टर आनन्द के उन पत्रों को निकालकर पढ़ते, जिनको वे उनके पिता को लिखा करते थे। मोम्बासा में ठहर और उनका पता लगाकर उनसे मिलने की योजनाएँ बनाते, किन्तु उन्हें शान्ति किसी काम, किसी विचार में, न मिलती थी। बार-बार उलट-पलट कर उनकी मर्मान्तक पीड़ा उन्हें दग्ध करने लगती। वे बरबस तिलमिला जाते और जल-हीन मीन की भाँति छटपटाने लगते। कभी-कभी बड़े उग्र विचार उनके मन में आते और उनका मन करता था कि वे कुछ कटु तथा अपमानजनक शब्दों का प्रयोग कर उस युवती को बता दें कि वह भी उसका अपमान कर सकता है, किन्तु दूसरे ही क्षण यह भी विचार आता कि उसने केवल अपने मन की बात कहकर आगामी व्यवहार के लिए संकेतमात्र किया है। उसको अपनी इच्छा की भांति आचरण करने का पूरा अधिकार हासिल है फिर सोचते कि यदि उसने नीचता की है तो क्या उसी भांति मुझे प्रत्युत्तर देना उचित है ? इससे तो उसकी वह धारणा जो उसने पुरुषों के प्रति बना रक्खी है, दृढ़तर होगी। यदि वह बिल्कुल अपरिचित की भाँति रहना चाहती है तो वह ऐसा करने के लिए स्वतन्त्र है। मुझको ही इससे क्यों रुष्ट होना चाहिए ? वस्तुतः हम दोनों अपरिचित हैं। उसी भाँति मुझको भी व्यवहार करना चाहिए। मान-अपमान की भावना को स्थान देना मन की कमजोरी को प्रकट करता है। मुझे बिलकुल निरपेक्ष और उदासीन रहना चाहिए।उपेक्षा—घोर उपेक्षा प्रदर्शन करने का निश्चय जब करते तब उन्हें कुछ शान्ति मिलती। इसी प्रकार के विचारों में उनको दो दिन बीत गए।

तीसरे दिन प्रातःकाल जब वे अपनी केबिन में चाय पी रहे थे, तब सहसा टेलीफोन की घंटी बज उठी। वे दो दिनों से बिलकुल बाहर न निकले थे, यहाँ तक कि भोजन भी उन्होंने अपने कमरे में किया था, उन्होंने रिसीवर उठाते हुए पूछा—"मैं विश्वनाथ हूँ, आप कहाँ से बोल रहे हैं ?"

उत्तर मिला—"मै कप्तान सुरेशचन्द्र हूँ। कहिए, आपकी तबियत कैसी है ?"

"बहुत अच्छा हूँ, धन्यवाद।"

"आप आजकल दिखाई नहीं पड़ते। क्या आपको भी वही बीमारी हो गई,

जिससे आपकी पड़ोसिन पीड़ित थीं। मालूम होता है, 'विश्व-स्वास्थ्य-संघ' के नामजद अनुसन्धान-कर्त्ताओं को देर अबेर में एक ही बीमारी हो जाया करती है। आपने भी अपने को स्वेच्छा से बन्दी बना रखा है।"

"इसके अतिरिक्त और जान बचाने का उपाय ही क्या है? आपके जाने के पश्चात् उस दिन एक और घटना घटी, जिससे एकान्तवास करने के लिये मजबूर होना पड़ा।"

"वह क्या, जरा मैं भी सुनूँ?"

"जिस प्रकार यूनीवर्सिटी के प्राक्टर शैतान लड़कों को चेतावनी दिया करते हैं, उसी प्रकार की यह भी एक चेतावनी थी।"

"तब तो यह निहायत दिलचस्प बात है। मेरी व्यग्रता चरम सीमा .क पहुँच रही है।"

"दर्शकों को तो मजा आता ही है, चाहे खेल खेलने वालों की कितनी ह क्षति क्यों न हो।"

"लीजिए, मै अपनी सहानुभूति बिना सुने हुए आपके प्रति प्रदर्शित करत हूँ, मुझे उतना ही दुख है, जितना आपको हुआ होगा।"

टेलीफोन के दोनों सिरों पर अट्टहास की ध्वनें निकलने लगीं। विश्वनाथ का इन दो दिनों में यह प्रथम हास्य था।

"आपकी मौखिक सहानुभूति के लिए आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ। किन्तु इन दो दिनों में जो पीड़ा मैंने अनुभव की है, उसका यदि आप शतांश भी अनुभव करते तो शायद आप भी उसी प्रकार एकान्तवास करते, जैसा मैंने किया है।"

"वही तो पूछ रहा हूँ; आपके प्राक्टर ने आपकी क्या मरम्मत की?"

"उस कार्य के लिए बुरी तरह लथाड़ा जो हम दोनों ने उसके कमरे में प्रवेश पाने के लिए किया था।"

"अर्थात्।"

"अर्थात् क्या? वह एक अनधिकार चेष्टा थी।"

"अच्छा, कप्तान के नाते तो मैं अपना मन्सबी काम कर रहा था।"

"हो सकता है कि वह उस कार्य से उतनी रुष्ट न हुई हो, किन्तु मैं तो कोई जहाज का कर्मचारी नहीं था। इसके अतिरिक्त आपने मेरा परिचय भी अटपटे शब्दों में दिया। अपराध तो आपने किया और दण्ड भुगतना पड़ा मुझको।"

"वह क्या?"

"यही कि आयन्दा जब कभी उसके सामने मैं पड़ूँ तो बिलकुल अपरिचित सा व्यवहार करूँ, यहां तक कि किसी भाव-भंगी, अथवा शब्द द्वारा यह न विदित होने दूँ कि मैंने कभी उनको देखा-सुना है या उनकी सहायता की है।"

"आपकी यह सजा तो आपके अपराध के अनुरूप ही है। मैं इसमें कोई दोष नही समझता।"

"आग लगाकर जमालो दूर खड़ी—चलो यह कहावत तो ठीक हुई।"

"मेरा मतलब आप नहीं समझे ! मैंने यह दण्ड आप के लिए उपयुक्त इसलिए बताया कि आप कल प्रातः काल केनिया पहुँच जायेंगे। मोम्बासा से शायद आप नैरोबी जायेंगे वहाँ की सरकारी विज्ञानशाला के परीक्षण-गृह में आप कुछ दिन रहकर अनुसन्धान-कार्य करेंगे। वहाँ आपसे उसकी भेंट होगी और कहीं आप अपने अधिकार-परिधि से बाहर न जायें, क्योंकि भावुकता की कमी आप में है नहीं, अतएव उस अप्रियता से बचने के लिए उसने आप को चेतावनी पहले से दे दी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कान्तिजी हैं बड़ी दूरन्देश।"

"जैसे आप हैं। आपने भी शायद दूरन्देशी के लिहाज से ही तूफान के प्रभात वैसी भोंडी भूल की थी। फिर उसी दूरदर्शिता के साथ आपने मुझे लेकर उसके कमरे में प्रवेश करने की चेष्टा की थी और उसी के अनुसार मुझे रुसवा कर स्वय आनन्द ले रहे हैं। कान्ति जी और आप की दूरदर्शी बुद्धि का फल मैंने भोग लिया है, अब तो कृपा कीजिए।"

"अजी प्रेम की गली में घुसने का यह पुरस्कार है और उसके पहले ही आघात से इतना घबड़ा गए। वाह, यह तो 'इब्तिदाए इश्क है, रोता है क्या ! आगे-आगे देखिए होता है क्या !।"

"बस बहुत हुआ। न आज तक कभी प्रेम किया था और अब तो वह साहस भी कभी होगा, इसमें सन्देह है। जिस प्रकार किसी नारी को अपनी मर्यादा का ख्याल है, उसी प्रकार पुरुष को भी है।"

"शाबाश! कान्ति जी का नुस्खा काम कर गया।"

"कैसे?"

"यही तो वे चाहती थी, जो उन्होंने अपनी एक ही चाल से पा लिया। आपके मन में भी स्वाभिमान का भाव जगाकर उन्होंने अनायास आप से पिंड छुड़ाया।"

"और आप भेद-नीति के आचार्य की भाँति दोनों को लड़ा कर पानी में आग लगाना चाहते हैं।"

विश्वनाथ को फिर कप्तान की हास्य-ध्वनि सुनाई पड़ी।

"अच्छा, अच्छा, अब आपके दर्शन होंगे या नहीं। यदि किसी डाक्टर की जरूरत हो तो ......।"

"बस, बस, आपकी कृपा ही बहुत है। डाक्टर उसके पास भेजिए, जिसको उसकी आवश्यकता हो।"

"वे तो अब अच्छी हो गई हैं। आज की ताजी 'बुलेटीन' यह है कि वे अब पूर्ण स्वस्थ हैं और शक्ति-संचय कर रही हैं।"

"लेकिन आप तो कह रहे हैं कि कल प्रातः काल आप का जहाज मोम्बासा पहुँच जायगा।"

"कल नहीं तो परसों पहुँचेगा और अगर परसों भी न पहुँच सका तो नरसों तो अवश्य पहुँच जायगा।"

"जहाज़ के कप्तान होते हुए भी यात्रा का हाल नहीं जानते?"

"यात्रा का काल घटाना-बढ़ाना भी तो कप्तान के हाथ की बात है। आपकी यदि इच्छा हो तो मैं उसमें हेर-फेर कर सकता हूँ।"

"मेरी तो इच्छा है कि मैं शीघ्र से शीघ्र मोम्बासा पहुँच जाऊँ।"

"तो आपकी इच्छा पूर्ण होगी, लेकिन इस जहाज से इतनी विरक्ति क्यों उत्पन्न हो गई?"

"विरक्ति, जहाज से नहीं, लेकिन कैदखाने से जरूर है।"

"आप भी इतना डरते हैं! बस एक ही फँटकार में हिम्मत हार बैठे।"

"हिम्मत हारने का प्रश्न नहीं है, अपनी इज्जत बचाने का है।"

"मेरी ही बात तो आप घुमा-फिराकर कर रहें हैं।"

"चाहे जो कुछ समझें, किन्तु मैं उसको फूटो आँखों से देखना नहीं चाहता।"

"लेकिन सजी सजाई भली-चंगी आँख से तो देख सकते हैं।"

"उसमें अब मन की ज्योति नहीं है।"

"डाक्टर से कहकर उसकी सुई लगवालें।"

"ऐसा कौन डाक्टर है।"

"आपका डाक्टर शायद आपके पड़ोस ही में तो है, ऐसा मेरा अनुमान है।"

कप्तान के हास्य ने विश्वनाथ को हँसने की प्रेरणा दी।

विश्वनाथ ने रिसीवर रख दिया। आलाप बन्द हो गया। वे सिगरेट जलाकर अपनी चिन्ताओं को भस्म करने लगे।

कप्तान के साथ जो बातचीत हुई थी उससे उन्हें विदित हुआ कि जहाज कल या परसों तक मोम्बासा पहुँच जायगा। उन्हें इससे वास्तविक प्रसन्नता हुई। वैसी जैसी किसी कैदी को मुक्ति के समाचार से होती है।

अभी उनकी सिगरेट समाप्त नहीं हुई थी कि उनके केबिन के द्वार को किसी ने खटखटाकर प्रवेश करने की आज्ञा मांगी। वे अनुमति प्रदान कर कुर्सी पर बैठ गए। आगन्तुक जहाज का एक कर्मचारी था। उसने एक पत्र उनको देते हुए कहा—"कप्तान साहब ने आपको सुबह के खाने के लिए बुलाया है।"

विश्वनाथ ने उस पत्र को पढ़ा, उसमें भी उनके साथ भोजन करने की प्रार्थना थी। उनकी इच्छा केबिन छोड़कर कहीं जाने की न थी, और पहले विचार किया कि उसे अस्वीकार कर दें, किन्तु फिर कुछ सोचकर अपनी स्वीकृति लिखकर दे दी। उत्तर लेकर कर्मचारी चला गया।

विश्वनाथ पुनः अपने विचारों की उधेड़-बुन में लग गए।

—६—

उपर्युक्त घटना के पश्चात् तीसरे दिन जहाज मोम्बासा बन्दरगाह पहुँच गया। यात्रियों की भीड़ उतरने के लिए व्याकुल हो गई। उन सब में अधिक आतुर युवती कान्ति थी। अपना सब सामान उसने एक दिन पहले ही बाँध कर ठीक कर लिया था। जब सामान केबिन में छोड़कर वह कमरे के बाहर निकली तो उसने चारों ओर देखा। रास्ता साफ था और प्रायः सभी यात्री इधर-उधर बिखरे दिखाई पड़ते थे। उसकी दृष्टि अनायास अपने पड़ोस की केबिन पर चली गई, जहां विश्वनाथ रहते थे। उसने द्वार बन्द देखकर निश्चिन्तता की साँस ली, और मन्थर गति से बिना किसी ओर दृष्टिपात किए जहाज से उतरने के लिए चल दी। थोड़ी दूर जाने के पश्चात् उसे कप्तान सुरेशचन्द्र सामने से आते हुए दिखाई दिए। उनके मुख पर एक छिपी हुई मुस्कान थी, किन्तु उसने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। मुटभेड़ होते ही उसने उन्हें बिना पहचाने ही चले जाना चाहा, किन्तु उन्होंने उसे वह अवसर नहीं दिया। नमस्कार करते हुए कहा—"अब तो आपकी तबियत अच्छी है, मिस।"

उन्होंने आवश्यकता से अधिक 'मिस' शब्द पर जोर दिया, जो उससे छिपा नहीं रह सका। उसने हाथ जोड़कर नमस्कार का उत्तर अवश्य दिया, परन्तु बिना प्रत्युत्तर दिये ही वह कुछ आगे बढ़ गई। कप्तान सुरेशचन्द्र वहीं खड़े हो गये और बोले—"मिस, कप्तान होने के नाते मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि आपकी यात्रा यहीं समाप्त होती है या कहीं आगे जाने का विचार है। यदि आगे जाना चाहें तो मैं आपको यह सूचित करता हूँ कि जहाज यहाँ मोम्बासा में कुछ ही घंटों ठहरेगा। संभवतः हम शाम तक अपनी यात्रा पुनः आरंभ कर देंगे। अतएव उस समय के पहले-पहले आप वापस आने का प्रयत्न करें।"

कान्ति ने रुककर उनकी बात सुनी अवश्य, किन्तु कथन समाप्त होते ही वह आगे बढ़ गई और जाती हुई बोली—"धन्यवाद, मुझे यहीं उतरना है। कृपया शीघ्र से शीघ्र मेरा सामान भेजवाने की व्यवस्था कर देने का कष्ट करें।" और वह तेजी से चलकर यात्रियों की भीड़ में मिल गई।

सुरेशचन्द्र हँसते हुए विश्वनाथ की केबिन के द्वार पर पहुँच कर उसे खटखटाने लगे। विश्वनाथ का इरादा सबके अन्त में जाने का था, इसलिए निश्चिन्त होकर सब यात्रियों के उतर जाने की प्रतीक्षा में बैठे सिगरेट फूँक रहे थे। द्वार की खटखटाहट सुनकर उन्होंने उठकर खोला और कप्तान सुरेशचन्द्र को हँसता हुआ देखकर कुछ चकित रह गए। कप्तान की हँसी बन्द न हुई, वरन् उनको देखकर वह और उमड़ने लगी। उन्होंने उनको टेलकर आगे बढ़ते हुए कहा—"अरे भाई, बड़ा ही आनन्द आया।"

विश्वनाथ ने चकित होते हुए पूछा—"क्या बात है, कुछ कहिए भी तो। मैं सोच रहा था कि आप यात्रियों के उतारने के प्रबन्ध में होंगे और आप हँसते हुए इधर-उधर घूम रहे हैं।"

विश्वनाथ ने हँसी रोकते हुए कहा—"जानते हो, मैं किससे बात करके आ रहा हूँ।"

"नहीं, मै अपनी केबिन में अपनी पड़ोसिन के डर से अपने को बन्द किए हुए बैठा हुआ उसके उतर जाने की प्रतीक्षा कर रहा था कैसे जान सकता हूँ कि आप किससे बातें करके आ रहे हैं। आप ही बताइये। कृपा करके सबसे पहले यह बताइये कि मेरी पड़ोसिन जी अपनी केबिन से चली गई हैं या नहीं। अगर न गई हों तो मैं अपने द्वार बन्द कर लूँ, जिसमें उनकी दृष्टि मेरे ऊपर और मेरी दृष्टि उन पर न पड़े।"

"अरे, वह आपका भय दूर हो गया। अब आप शौक से द्वार खोलकर बैठिये। जाते हुए मैंने उन्हें देख लिया, यद्यपि मैं भी उनसे मिलना नहीं चाहता था। मैं आपके कमरे की ओर आ रहा था। रास्ते में मुठभेड़ हो गई। मैंने नमस्कार किया, जिसका उन्होने मौन रहकर प्रत्युत्तर दिया। उनकी यह बेरुखी देखकर उनको छेड़ने की बात मेरे मन में आई। कह ही बैठा कि कप्तान

होने के नाते मुझे यह सूचित करना उचित है कि जहाज यहाँ केवल शाम तक ठहरेगा, और यदि आपका आगे जाने का विचार हो तो सन्ध्या के पहले वापस आ जावें। उनको उत्तर देने के लिये मैंने उन्हें मजबूर कर दिया। बोलीं कि उन्हें यहीं उतरना है। और फिर अकड़ती हुई चली गई। भाई, उनकी वह अकड़ देखने काबिल थी। अगर तुम होते तो तुमको भी मजबूरन हँसना पड़ता। हाँ, इतना हुक्म दे गई हैं कि मैं उनका सामान बहुत जल्द पहुँचा दूँ।"

"आपकी धृष्टता पर उसने यदि एक-आध चपत लगा दी होती तो आपको इससे अधिक आनन्द मिलता।"

"इसका आनन्द तो अब आप उठाइएगा, क्योंकि आप दोनों को बहुत लम्बा समय साथ-साथ रहकर काटना है। अपना तो अन्तिम नमस्कार हो गया।"

"यही डर तो मुझे बेचैन बना रहा है। न-मालूम हमारा कैसे निर्वाह होगा।

"क्या त्यागपत्र देकर वापस जाने का विचार है?"

"कभी-कभी यह भी सोचता हूँ।"

"वाह, क्या खटमलों के डर से कोई चारपाई छोड़ देता है? आप भी निरे भोंदू मालूम होते हैं। अब समय बहुत परिवर्तित हो गया है दिन पर दिन परिवर्तन हो रहे हैं। स्त्री और पुरुष के बीच जो भारतीय प्रथा ने संकोच की दीवाल उठा रखी थी वह अब ढह गई है। संविधान में दोनों को समान अधिकार दिए गए हैं, अतएव बराबरी के स्तर से हमें आपस में मिलना चाहिए। हाँ अभद्रता अवश्य न करना चाहिए। दोनों अपनी-अपनी मर्यादा-पालन करते हुए मित्र-रूप में रह सकते हैं।

"अच्छा बताइए, हमने कौन अभद्रता की थी?"

"अभद्रता हमने कोई नहीं की, इसलिए तो मैं उसके अद्भुत तथा भावुक आचरण पर हँसता हूँ। हमारा अन्तःकरण शुद्ध है; हमारा मन हमें लांछित नहीं करता।"

"यह बात तो अवश्य है, इसीलिए उसका वह अपमानित करने का प्रयत्न मुझे खटकता है।"

"जैसा पहले कह चुका हूँ कि आप भी आवश्यकता से अधिक भावुक हैं और तिल का ताड़ बना बैठे हैं। आजकल हर एक परिस्थिति को हमें खेलाड़ियों के दृष्टिकोण से देखना चाहिए। प्रतिद्वन्द्वी खिलाड़ी यदि कोई चोट लगा दे जो हम जिस प्रकार उसकी परवाह नहीं करते, उसी प्रकार आपको भी इस मान-अपमान के विचार से मुक्त होकर अपना कर्त्तव्य-पालन करना चाहिए।"

"यह तो ठीक है, किन्तु...।"

"किन्तु का विचार ही यह प्रकट करता है कि आप भी अपने सहज संकोच को दूर नहीं कर पाए हैं। कान्तिजी ने आपसे केवल यह कहा है कि आप उनके लिये सदैव अपरिचित जैसे बने रहें। जब उन्होंने यह बात कही थी तब शायद उनको ज्ञात नहीं था कि आप उनके सहयोगी अन्वेषक हैं। मेरा अनुभव है कि कोई-कोई यात्री कभी-कभी सहयात्रा की आड़ में अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न करने लगते हैं। शायद उनका संकेत उसी ओर था। आपके सम्बन्ध में उन्हें कुछ मालूम नहीं है। वे केवल आपको एक साधारण यात्री-मात्र जानती हैं, और शायद इसीलिए उन्होंने इतनी रुक्षता बरती।"

"चतुर वकील न्याय को किसी दिशा में मोड़ सकता है।"

"अभी तक तो मैं हास-परिहास के लिए आपको चिढ़ाने का प्रयत्न करता था, इसीलिए कभी अनर्गल बातें भी कर बैठा। हम दोनों लगभग समवयस्क हैं। जहाज का जीवन एकान्तिक जीवन है, बड़ी नीरसता के साथ दिन बीतते हैं। जब कभी आप जैसे यात्री से भेंट हो जाती है, तब कुछ रस का संचार होता है। अब हमारे वियोग का समय आ गया है। आपकी यात्रा तो समाप्त हो गई, किन्तु मेरी इस चिर-यात्रा का अन्त कब होगा; कोई नहीं कह सकता!" कहते-कहते एक निश्वास निकलकर अपने सूक्ष्म शरीर से उस केबिन के वातावरण में छा गई। उसने विश्वनाथ के मन को छू लिया और उनकी भावुकता सजल होने का प्रयत्न करने लगी।

"शायद इसीलिए यात्रियों की मित्रता को निस्सार बताया जाता है।" विश्वनाथ ने भी एक दीर्घ निश्वास के साथ उसमें योग दिया।

"अभी तक हमने कान्तिजी को लेकर बहुत हास-परिहास और मनोविनोद किया है। जब कभी काम से जी ऊबता, आपके साथ छेड़खानी करके कुछ थोड़ा सा हँस लिया करता था, परन्तु अब फिर गुम-सुम रहना पड़ेगा। आपकी याद बहुत आया करेगी।"

"आजकल तो हम लोग लखनऊ में रहते हैं, और वह कानपुर के बहुत समीप है। संसार भी अब सिकुड़ कर बहुत छोटा हो गया है; क्योंकि यातायात के साधनों की प्रचुरता ने देश-विदेश की सीमाओं के विस्तार को संकुचित कर दिया है। हमारी आपकी भेंट हो सकती है। न होने का कोई कारण भी नहीं है। मैं लगभग एक वर्ष तक कोनिया में रहूँगा, क्योंकि छात्र-वृत्ति केवल एक वर्ष के लिए है। इसके पश्चात मैं स्वदेश लौटूँगा।"

"आप कृपा करके अपने स्वदेश लौटने की तारीख अवश्य सूचित करें। संभव है कि आगामी वर्ष मेरा दूसरा या तीसरा चक्कर इधर से हो। बम्बई तथा अफ्रीका के बीच हमारे जहाज की यात्राएँ होती हैं। यदि वापसी में आप इसी जहाज से चलें तो बड़ा सुखकर होगा। आपके प्रति एक आकर्षण उत्पन्न हो गया है मित्र।"

"मैं भी उसको अनुभव करता हूँ। आप अपने पत्र मेरे नाम से डाक्टर आनन्द मोम्बासा के द्वारा भेजिएगा। आप अपने जहाज की गतिविधि सूचित करते रहिएगा। उसी के अनुसार मैं उत्तर लिखा करूँगा।"

"अवश्य लिखा करना। कान्तिजी के साथ आपकी पटरी कैसे बैठती है, अवश्य लिखिएगा। मैं समझता हूँ कि वे अपने किए पर बहुत पछताएँगी जब उन्हें ज्ञात होगा कि नियति ने बावजूद उनके प्रयत्नों के आप दोनों को एक साथ रहने के लिए मजबूर कर दिया है।"

"मुझे तो ऐसी आशा नहीं है। कम से कम मैं अपनी ओर से उनके साथ बिल्कुल अपरिचित जैसा व्यवहार करूँगा। और यदि वे अपने व्यवहार में कुछ परिवर्तन भी करेंगी तो मै उस ओर कोई ध्यान नहीं दूँगा।"

"चलिए, हम लोग भोजन करें। फिर आपको बिदा करने के लिए नीचे तट तक चलूँगा। मेरा विश्वास है, उस समय तक कान्तिजी अपने गन्तव्य स्थान को चली जायँगी। अब यहाँ पर उनकी भेंट आपसे नहीं होगी। उनका सामान चला ही गया है। कस्टम अधिकारियों की जाँच के बाद, वे जाने के लिए स्वतंत्र हैं। वहाँ से भी उन्हें जल्दी छुट्टी मिल जायगी, क्योंकि उनके पास कोई ऐसा सामान होगा नहीं; जिससे कोई झंझट उत्पन्न हो।"

यह कहकर वे उठ खड़े हुए और दोनों उनके कमरे की ओर चले। इस समय तक यात्री जहाज से उतर गए थे। वहाँ का वातावरण बिलकुल शून्य था। डेक पर कोई यात्री अथवा कर्मचारी नहीं रह गया था। सभी प्रकार की चहल-पहल समाप्त हो गई थी। दोनों मित्र कुछ सोचते हुए, भारी मन से चारों ओर का दृश्य देखते हुए कप्तान के कमरे में चले गए।

—७—

जिस समय विश्वनाथ को बिदा करने के लिये कप्तान सुरेशचन्द्र तट पर आए, उस समय तक यात्री चले गए थे। कस्टम अधिकारियों के कमरों में कहीं कोई अकेला-दुकेला यात्री ठहरा हुआ कर चुकाने में व्यस्त था, अन्यथा सब ओर एक सूनापन छाया हुआ था। नियमानुसार अपनी वस्तुओं की जाँच-पड़ताल कराने के लिए विश्वनाथ कस्टम-कार्यालय की ओर चले। अभी वे उसके मार्ग में ही थे कि कस्टम-कार्यालय के एक चपरासी ने कप्तान को अभिवादन करके कहा—"मैं आप ही की सेवा में उपस्थित होने जा रहा था, बड़ा अच्छा हुआ जो आप यहीं मिल गए।"

कप्तान ने पूछा—"क्या बात है, स्मिथ।"

चपरासी केनिया का आदिम निवासी एक ईसाई था, जो उनसे परिचित था। स्मिथ ने उत्तर दिया—"एक यात्री के सम्बन्ध में आप से जानकारी प्राप्त करना था। यात्री एक महिला है, शायद उसके पास कुछ ऐसा सामान है, जिस

पर कर लगाना उचित है किन्तु वह कर चुकाने से इनकार करती है और किसी एक सस्था का नाम लेकर कहती है कि उसे कर न चुकाने का विशेषाधिकार प्राप्त है।"

विश्वनाथ और कप्तान की आँखें चार हुईं। विश्वनाथ ने कहा—"आप चपरासी के साथ जाकर उसे मुक्ति दिलाइए मैं अब यहीं ठहरूँगा।"

कप्तान ने हँसते हुए कहा—"क्यों, क्या बात है?"

"मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यह मामला कान्तिजी से सम्बन्धित है। मैं उसके सामने न जाऊँगा। कहीं कोई बखेड़ा न उठ खड़ा हो।"

"वाह रे दब्बू! संभव है कि वह न भी हो, और थोड़ी देर के लिए मान भी लो कि वह वही है तो हम लोग उसकी सहायता के लिए चल रहे हैं। वह बुरा मानेगी तो हमारी बला से।"

"आप जा सकते हैं, क्योंकि आप एक अधिकारी हैं और कस्टम अधिकारी आप को बुला रहे हैं, किन्तु मेरे जाने का कोई वैध कारण नहीं है।"

"क्या आप को अपने माल-असबाब की जाँच नहीं कराना है?"

"कराना क्यों नहीं है, पहले आप जाकर उस मामले को सुलझा दें तब तक मैं यहीं इधर-उधर घूमता-फिरता हूँ। जब उसे मुक्ति मिल जायगी, तब मैं आऊँगा।"

"मैं इसके बिलकुल विरुद्ध हूँ। आप मेरे मित्र हैं और आप को मेरे साथ चलना सर्वथा उचित है।"

"नाहक एक आफत खड़ी करोगे। हम दोनों को एक साथ देखकर वह न मालूम क्या अनुमान कर बैठे, और शायद हम लोगों की एक अभिसन्धि न समझ बैठे। ना-भाई, मैं उसकी छाया से भी दूर रहना चाहता हूँ। आप जाइए।"

यह कहकर वे साथ छोड़कर जाने लगे, किन्तु कप्तान ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा—"मैं उसके मुख का वह भाव देखना चाहता हूँ जो हम लोगों को देखकर आवेगा। जो चिढ़े, उसको चिढ़ाने में भी तो एक आनन्द है।"

"वह आनन्द आप ही लीजिए, मुझे बख्शिये।"

विश्वनाथ ने साथ जाने में बड़ी आनाकानी की, किन्तु सुरेशचन्द्र ने उनका हाथ न छोड़ा, और घसीटते हुए ले जाने लगे। कार्यालय में प्रवेश करके उन्होंने सत्य ही कान्ति जी को कस्टम अधिकारी के सामने एक कुर्सी पर बैठे हुए देखा। उनको देखकर वह उठ खड़ी हुई और अधिकारी से बोली—"आप कप्तान से मेरे सम्बन्ध में अपनी जाँच कर लें। तब तक मैं बाहर ठहरती हूँ।"

अधिकारी ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह कप्तान को देखकर उठ खड़ा हुआ और दोनों को बैठने का संकेत किया। कान्ति क्रोध और क्षोभ से फुफकारती हुई बिना अनुमति की प्रतीक्षा किए जाने लगी। किन्तु कस्टम अधिकारी ने उसको रोकते हुए कहा—"कृपा करके अभी आप जायँगी नहीं, आपके चले जाने से कप्तान आपकी शिनाख्त कैसे करेंगे?"

कान्ति को बड़ी अनिच्छा के साथ रुकने के लिए बाध्य होना पड़ा। वह वापस आकर शिर नत किए हुए अपने स्थान पर बैठ गई। उसका चेहरा तम-तमाया हुआ था और कपोलों का रंग बार-बार बदल रहा था।

अधिकारी ने पहले कान्ति की ओर देखा, फिर उसकी ओर संकेत करते हुए कप्तान से कहा—"मैं आपसे यह पूछना चाहता हूँ कि आपके जहाज पर 'विश्व-स्वास्थ्य-संघ' की ओर से कितने यात्री थे।"

कप्तान ने उत्तर दिया—"दो, जिनकी सूचना मुझे मिली थी।"

"क्या आप उनको पहचानते हैं?"

"अवश्य। संघ के अधिकारियों ने मुझे इसकी सूचना पहले दी थी और उनके लिए मैंने दो कमरे सुरक्षित कर दिए थे।"

"क्या आपके सामने बैठी हुई श्रीमती जी उन यात्रियों में से एक हैं?"

"आप उनसे स्वयं क्यों नहीं पूछते?"

"वे तो यही बता रही हैं। इनका पास पोर्ट इनको मिलता नहीं, न-मालूम उन्होंने उसे कहाँ रख दिया है? उनका ख्याल है कि किसी ने उसे चुरा लिया है।"

"पास पोर्ट चुरा लिया गया, और वह भी मेरे जहाज पर। श्रीमती जी ने

इसकी कोई सूचना मुझे जहाज पर रहते नहीं दी। जहाज पर इनका पास-पोर्ट तो देखा ही गया होगा।"

"यही तो मैं भी सोच रहा हूँ कि यदि ये बिना पास-पोर्ट के यात्रा करती होतीं तो आपको इस अवैध कार्य की सूचना अवश्य मिलती। इधर माओ-माओ दल की हलचलों के कारण सरकार ने बाहर से आने वाले यात्रियों के प्रवेश पर कड़े प्रतिबन्ध लगाए हैं। नियमानुसार जब तक ये अपना पास-पोर्ट न दिखावें, मैं केनिया में प्रवेश की आज्ञा नहीं दे सकता। किन्तु आपका कहना है कि आप विश्व-स्वास्थ्य-संघ की ओर से किसी अनुसन्धान कार्य के लिए नैरोबी जा रही हैं। जब तक इसका अनुमोदन नहीं हो जाता, तब तक इन्हें रुकना पड़ेगा।"

"आप भारतीय दूतावास से भी तो इसकी जाँच कर सकते हैं।"

"हाँ, वहाँ भी मैं जाँच करूँगा, परन्तु इनका कहना है कि आपको यह जानकारी है, और आप इनकी शिनाख्त कर सकते हैं !"

शिनाख्त तो मैं कर सकता हूँ। संघ की ओर से जो सूचना मुझे प्राप्त हुई थी, उसमें आपका चित्र था। मैंने उससे आपका मिलान कर लिया है। यदि आप उसे देखना चाहें तो मैं दिखा सकता हूँ। केवल मुझे जहाज पर पुनः जाना पड़ेगा।"

"आप किसी कर्मचारी के द्वारा उसे मँगवा भी सकते हैं।"

"हाँ, वह भी कर सकता हूँ क्या अपने किसी चपरासी को मेरा पत्र ले जाने की आज्ञा देंगे ?"

"क्यों नहीं, आप अपने कर्मचारी को पत्र लिखें।"

कप्तान सुरेशचन्द्र मुस्कराते हुए पत्र लिखने लगे।

पत्र चपरासी स्मिथ को देने के पश्चात् कहा—"आप लोग यात्रियों को कभी-कभी बड़ी असुविधा में डाल देते हैं। श्रीमती जी के पास पास-पोर्ट है, निश्चय ही ये अपनी केबिन में भूल आई हैं, मेरा अनुमान है कि वे उसे मेज की किसी दराज में रखकर निकालना भूल गई हैं। आप कई दिनों से बीमार

थीं, इससे मानसिक अवस्था विकृत हो गई है। आपने शायद पहले अपने बक्स से निकाल कर कहीं रख दिया और रखकर भूल गईं। मानसिक हलचल के कारण उसे पुनः निकालकर अपने कोट की जेब में डालना भूल गई, अथवा जेब में डालते समय वह बजाय जेब में जाने के बाहर गिर पड़ा और आपने कोई ध्यान नहीं दिया। मेरा विश्वास है कि यदि आपकी केबिन को देखा जावे तो अवश्य वह कहीं पड़ा हुआ मिलेगा।"

कान्ति ने तुरन्त कहा—"आपका विचार बिलकुल ठीक मालूम पड़ता है। शायद ऐसा ही हुआ भी है। अब स्पष्ट याद पड़ता है कि मैंने उसे निकालकर पहले मेज पर रख दिया था और फिर चलने के समय उसे कोट की जेब में डाला था, किन्तु वह शायद बाहर ही सरक गया, जेब के अन्दर नहीं गया। जरूर यही बात है। अभी जाकर मै जरा वहाँ देख आऊँ।"

कप्तान ने मुस्कराते हुए कहा—"आप कष्ट न करें, मेरे साथ जो यात्री आए हैं, वे जाकर देख आवेंगे, क्योंकि उनका कमरा भी तो आपके कमरे से मिला हुआ था और मुझे विश्वास है कि वे पास-पोर्ट पहचानने में कोई भूल नहीं करेंगे।"

कान्ति ने उठते हुए कहा—"नहीं-नहीं, मैं स्वयं जाऊँगी। मैं किसी को कष्ट देना नहीं चाहती।"

"यदि उनके जाने में आपको कोई आपत्ति है तो मैं स्वयं चला जाऊँगा। आपका स्वास्थ्य इस प्रकार का नहीं है जो आप इतना कष्ट उठावें।"

कस्टम अधिकारी ने कहा—"आप कृपा करके बैठ जाइए। कप्तान या उनके मित्र जाकर ढूँढ़ आवेंगे। मुझे शोक के साथ कहना पड़ता है कि आपको मैं अकेले कहीं जाने की अनुमति उस समय तक नहीं दे सकता जब तक आप अपना पास-पोर्ट नहीं दिखातीं। सरकार ने अभी बहुत कड़े नूकन बनाए हैं।"

युवती सुनकर स्तब्ध हो गई, और वह कुर्सी पर बैठ गई, या गिर पड़ी। आहत अभिमान तड़पने लगा। और जब मन उसको दमन करने में असमर्थ

हुआ तो वह द्रवित होकर नयनों के दुर्गम मार्ग से निकलने के लिए झाँकने लगा। विश्वनाथ के मन ने प्रश्न किया कि दर्पिणी नारी के आँसू क्या दर्प की ज्वाला से सूख नहीं जाते ?

कप्तान ने उठते हुए कहा—"मैं जाकर स्वयं इनके कमरे की खोज-बीन करता हूँ, और यदि कमरे की सफाई हो गई होगी तो खोई हुई वस्तुओं के कार्यालय में भी पूँछ-ताँछ कर लूंगा।"

कस्टम अधिकारी ने कहा—"कप्तान साहब, जरा आप बैठिए, अपने साथी को क्यों नहीं भेज देते ?"

सुरेशचन्द्र ने कुछ गंभीर होते हुए पूछा—"क्या श्रीमती जी की भाँति मुझको भी आप हिरासत में तो नहीं ले रहे हैं ? क्या मैं अपने को आपका कैदी समझूँ ?"

अधिकारी ने हँसते हुए कहा—"यह आप क्या कह रहे हैं ? मैं तो आपसे कई बातें जानना चाहता हूँ। सबसे पहले उस तूफान के ही विषय में जानने के लिए उत्सुक हूँ कि आपने किस प्रकार उससे अपनी रक्षा की। ऐसे कितने ही प्रश्न हैं। जब तक हम लोग बातें करते हैं, तब तक बहुत आसानी से आपके मित्र जहाज पर जाकर मिस का काम कर आवेंगे। मैं समझता हूँ कि उनको कोई आपत्ति न होगी, क्योंकि आप पहले ही उनसे अनुरोध कर चुके हैं।"

विश्वनाथ की आँखों से परवशता निहारने लगी। सुरेशचन्द्र को हँसी आ गई। उसको रोकते हुए कहा—"हाँ, मित्रवर, अब आपको ही सुश्री कान्तिजी के साथ यह अहसान करना पड़ेगा।"

कान्ति ने स्पष्ट रूप से अहसान शब्द को लक्ष्य किया। घुचघुचाए हुए नेत्रों से एक अश्रु गिर पड़ा।

विश्वनाथ ने उसे लक्ष्य कर सुरेशचन्द्र से कहा—"तूफान आदि के सम्बन्ध में इनसे बातें कर लूँगा, यदि आप जाने का कष्ट उठाएँ तो अच्छा होगा।"

अधिकारी ने मीठी मुस्कान के साथ अनुरोध करते हुए कहा—"नहीं मिस्टर, आप ही जाने की कृपा करें, मुझे कई गोपनीय विषयों पर कप्तान से

परामर्श करना है। मै इस कृपा के लिए आपका आभारी रहूँगा।"

विश्वनाथ की अवस्था साँप-छछूँदर वाली हो गई। कप्तान ने भी इन्हें सहारा देते हुए कहा—"भाई, शास्त्रों का मत है कि आपत्काल में मर्यादा यदि भंग हो जाती है, तो वह कोई अपराध नहीं है। हम लोगों का तो धर्म ही सेवा करना है। अतएव बजाय शल्य-क्रिया के यदि आप पुलिस की भाँति ढूँढ़-खोज करने की क्रिया करें तो परिस्थितियों के अनुसार सब के लिए शुभ होगा।"

विश्वनाथ ने युवती कान्ति की ओर देखा, उसका शिर नत था, और कपोल ऐसे पीले थे, मानो हृदय ने रक्त-संचालन की क्रिया बन्द कर दी हो। वे अब भी अपना कर्त्तव्य स्थिर नहीं कर पा रहे थे।

कप्तान सुरेशचन्द्र ने उनको एकान्त में ले जाकर कहा—"अवसर से लाभ उठाना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। दर्पिणी का दर्प चूर्ण कर देना चाहिए। मेरे अनुरोध से आप चले जाइए। अगर पास-पोर्ट वहाँ न भी मिला. तो भी मैं इनको मुक्ति दिला दूँगा, क्योंकि मेरे पास इसके साधन मौजूद हैं। जानते हो, भगवान का आहार अहंकार है। नारद-मोह की वह चौपाई याद है—"बंचेहु मोहि जवनि धरि देही। सो तुम पाव शाप मम एही।' ठीक वैसी ही परिस्थिति सामने है। सुश्री कान्ति ने बिना किसी उपयुक्त कारण के आपका अपमान किया, उसकी प्रतिक्रिया हो रही है। हम लोग तो शतरंज के मोहरे हैं; चाल चलने वाला कोई दूसरा है। जाओ, उसकी रक्षा करो।"

विश्वनाथ जहाज पर लौटने के लिए मजबूर हो गए। कप्तान वापस आकर कस्टम अधिकारी से आलाप करने लगे। युवती घुचघुचाई आँखों से मेज के एक पाए में ठोकरें लगाकर अपनी अशान्ति को कम करने की चेन्टा करने लगी।

लगभग आध घंटे पश्चात् विश्वनाथ पास-पोर्ट लिए हुए वापस आए; कस्टम का चपरासी स्मिथ भी उनके साथ था।

कप्तान ने उन दोनों को देखकर कहा—"लीजिए, दोनों चीजें आ गई। पास-पोर्ट भी मिल गया और फायल भी आ गई। क्यों भाई, मेरा अनुमान सत्य था?"

विश्वनाथ ने पास-पोर्ट कस्टम अधिकारी को देते हुए कहा—"आपका अनुमान शब्दश: ठीक निकला। मेज के पाए के पास पास पोर्ट पड़ा हुआ था। कुशल यही थी कि फर्राश अभी वहाँ तक पहुँच न पाए थे, नहीं तो कई लोगों से पूछ-ताँछ करना पड़ता।"

कप्तान ने निरखा कि युवती के कपोलों का रंग पुनः अपनी सहज आभा प्राप्त करने लगा। विश्वनाथ को ऐसा विदित हुआ कि कान्ति शायद उन्हें धन्यवाद देने जा रही है। वे उससे त्राण पाने के लिए, बिना किसी से कुछ कहे-सुने तेजी के साथ कमरे से बाहर हो गए।

कान्ति ने परिस्थिति समझ ली। उसके कपोलों की लालिमा गहरी होने लगी। अधिकारी व्यस्तता से पासपोर्ट की जाँच करने लगा।

कप्तान ने कहा—"कहिए, सब ठीक है न, यदि कहीं आपको अब भी कुछ गड़बड़ी मालूम होती हो तो फिर मैं आपको अपनी फायल दिखलाऊँ।"

"रहने दीजिए, सब ठीक है। इसकी प्रति-छवि से श्रीमती जी का पूरा-पूरा मिलान होता है। क्या करूँ? सरकारी आदेश के समक्ष मैं बिलकुल निरुपाय हूँ। माओ-माओ के आन्दोलन से ब्रिटिश सरकार बहुत परेशान है। सेन्सर की पूरी-पूरी कड़ाई है, किन्तु सच्ची घटनाओं की कहानियाँ विदेशी-पत्रों में छप जाती हैं।"

"अब तो आपकी कहानियाँ देश के बाहर न जायँगी। कप्तान के स्वर में व्यंग्य की कर्कशता थी।

युवती ने पासपोर्ट वापस लेते हुये कहा—"अब तो मैं जाने के लिये स्वतंत्र हूँ।"

कस्टम अधिकारी ने उठते हुए कहा—"मिस, आप मुझे क्षमा करेंगी, यदि मुझसे कुछ भूल हो गई हो। मैं अपनी विवशता बता चुका हूँ।"

युवती ने उठते हुए कहा—"मैं कुछ बुरा नहीं मानती। आप अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे थे।"

कप्तान ने भी उठते हुए कहा—"सुश्री जी, क्या मैं आपकी कुछ और सहायता कर सकता हूँ।"

युवती ने उन्हें नमस्कार करते हुए कहा—"आपने जो मेरी सहायता की है, उसके लिए में बहुत आभारी हूँ और आपके मित्र ने जो जाने-आने का कष्ट किया है, उनके प्रति भी मैं बहुत कृतज्ञ हूँ। मेरी ओर से कृतज्ञता प्रकाश कर दीजिएगा।"

यह कह कर वह दोनों को पुनः नमस्कार करती हुई कार्यालय के बाहर चली गई।

— ८ —

विश्वनाथ को डाक्टर आनन्द का निवासस्थान ढूँढ़ने में कोई कठिनता नहीं हुई। वे केनिया-प्रवासी भारतीयों के सर्वमान्य नेता तो थे ही, और इसके अतिरिक्त वे एक प्रख्यात चिकित्सक भी थे। वे मोम्बासा नगर के एक सुदूर अञ्चल में रहते थे, तथा उनका चिकित्सालय नगर में था। प्रवासी भारतीयों पर उनकी अटूट श्रद्धा थी और वे राजनीतिक आन्दोलनों में प्रमुख भाग लिया करते थे। वे अफ्रीकी आदिवासियों के भी मित्र थे तथा उनमें राजनीतिक जागृति करने की सतत चेष्टा करते रहते थे। इससे बहुत बड़े अंश में उनकी भी श्रद्धा उन्हें प्राप्त थी। उनको नगर का लगभग प्रत्येक व्यक्ति जानता था, इससे जहाँ विश्वनाथ ने उनका पता पूछा उन्हें मालूम हो गया, और बिना किसी अड़चन के सहज ही उनके चिकित्सालय में पहुँच गए।

जब विश्वनाथ उनके चिकित्सालय में पहुँचे वे घर जाने की तैयारी कर रहे थे। पहले विश्वनाथ को कोई रोगी समझकर उनके कम्पाउण्डर ने कहा—"डाक्टर साहब अब मरीज नहीं देखेंगे, वे घर जा रहे हैं, आप कल प्रातःकाल आने का कष्ट करें।" फिर रुक कर कहा—"यदि कोई बहुत जरूरी बात हो तो शायद वे आपसे मिलने के लिए राजी भी हो जायँ। आप जानते हैं कि

वे बूढ़े हैं, और परिश्रम अधिक करने की सामर्थ्य उनमें नहीं रह गई है।"

कम्पाउण्डर की बकवासी आदत से डाक्टर आनन्द परिचित थे। उन्होंने उसकी बकवास सुनकर पूछा—"पीटर, कौन आया है? उसे आने दो।" क्या तुम नहीं जानते कि मरीज के अतिरिक्त कोई दूसरा डाक्टर के पास नहीं आता।"

पीटर ने भीतर जाने का संकेत करते हुये कहा—"जाइए, जनाब जाइए। डाक्टर साहब आपकी बात सुनेंगे। डाक्टर साहब को तो पैसा मिलेगा, लेकिन, मैं पूछता हूँ कि पीटर को क्या लाभ होगा? एक मरीज़ की दवा और बनाना पड़ेगा और घर पहुँचने में कम से कम आधा घंटा और देर हो जायगी।" पीटर ने अपने कथन का अंतिम भाग दबी जबान से लगभग स्वगत कहा था। विश्वनाथ के जाने के पश्चात् भी वह बड़बड़ाता रहा।

डाक्टर आनन्द ने विश्वनाथ की ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखते हुए पूछा—"कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?"

विश्वनाथ ने देखा कि उनके सामने श्रद्धा जाग्रत करने वाला एक वृद्ध पुरुष है, जिसका वर्ण तपाए हुए ताँबे की भाँति कान्ति-युक्त था। उसके सहज लम्बे शरीर का शिर-भाग कुर्सी के पिछले भाग से अपेक्षाकृत ऊँचा था। आँखों से दया, करुणा और सहानुभूति की धाराएँ प्रच्छन्न रूप से बहकर दर्शक को प्लावित करती थी, जिनका प्रभाव आँकने के लिए उनकी उठी हुई नासिका प्रयत्न करती थी, दाढ़ी और मूँछों से विहीन मुख पर बाल्य-सुलभ भोलापन खेल रहा था। उनकी वेष-भूषा की सरलता और मृदु सम्भाषण मन में स्वतः विश्वास करने की भावना को जन्म देते और प्रथम आलाप ही अपनी अद्‌भुत छाप छोड़ता था। उनको देखकर विश्वनाथ को अपने पिता का स्मरण हो आया, उनके मन ने कहा—"यदि तुम्हारे पिता जीवित रहते तो शायद इसी भाँति वे भी होते। उनका मन श्रद्धा विश्वास और स्नेह से गद्‌गद् हो गया। वे क्षण भर के लिये भूल गए कि डाक्टर आनन्द का व्यक्तित्व उनके पिता के व्यक्तित्व से भिन्न है। वे बरबस नत हो गए और लपक कर उन्होंने उनके चरणों को छूकर प्रणाम किया।

डाक्टर आनन्द इस प्रकार प्रणाम करने की प्रथा भूल चुके थे, किन्तु मस्तिष्क के किसी प्रच्छन्न कोने में यह भारतीय प्रथा अभी तक छिपी हुई बैठी थी जो विश्वनाथ के स्मरण कराने से जाग्रत होकर उनका मुख साश्चर्य देखने लगी। वे भौंचक्के होकर उनको पहचानने का प्रयत्न करने लगे। विश्वनाथ ने हाथ जोड़कर हिन्दी में कहा—"मैं स्वर्गीय जगन्नाथजी का पुत्र विश्वनाथ हूँ।" डाक्टर ने विस्मित स्वर में पूछा—"कौन जगन्नाथ ? अच्छा-अच्छा ! लखनऊ के भाई जगन्नाथ के तुम चिरंजीव हो ? आओ बेटा" कहते-कहते वे कुछ सजल हो गए और फिर उनको बाहु-युगल में भर लिया। एक ही क्षण में पुरानी स्मृतियाँ सहसा भरभराकर उठ खड़ी हुईं। उन्होंने और कसकर उन्हें हृदय से लगा लिया।

भावावेश कम होने पर उन्होंने विश्वनाथ को कुछ दूर हटाया और उनका मुख निहारने लगे। इस भाँति जैसे अपने मित्र की छाप उनके पुत्र में देखने का प्रयत्न करते हों। थोड़ी देर देखने के पश्चात् उन्होंने कहा—"ठीक है। लगभग तुम्हारे ही प्रतिरूप का तुम्हारे पिता थे। वैसे ही घुँघराले बाल हैं, वैसा ही चौड़ा मस्तक है, वैसे ही बड़े-बड़े कान हैं, वैसी ही बड़ी-बड़ी आँखें हैं, वैसी ही उठी हुई नाक है, किन्तु मुँह की चीरन कुछ छोटी है, और ठुड्डी भी कुछ थोड़ी दबी हुई है, बाकी सब भाई जगन्नाथ की ही तरह है। कहो बेटा, तुम्हारी माँ और बहन तो अच्छी तरह हैं। यह तो कहो, तुम अकस्मात् बिना सूचना दिये कैसे आए ? यह तो तुम्हारे पत्र से मालूम हो गया था कि भाई जगन्नाथ का स्वर्गवास हो गया है। उस दिन मुझे वैसा ही दुख हुआ थ, जैसा मेरा बड़ा भाई गत हुआ हो। बेटा, तुम्हारे पिता का मुझे बहुत स्नेह प्राप्त था। उन्होंने कई बार मेरी रक्षा की थी। उनके ऋण से मैं सात जन्म तक मुक्त नहीं हो सकता।"

'पिता जी का ऐसा ही स्नेह आपके प्रति था। आपके सम्बन्ध की बातें करते वे कभी न थकते थे। एक के बाद एक आपके और अपने जीवन की घटनाएँ बताते और बार-बार बताकर भी न अघाते थे। उनकी बड़ी इच्छा थी कि एक बार वे आपके दर्शन करें। आपको कई बार बुलाया, किन्तु जब आप

आने में असमर्थ रहे, तब वे केनिया आने के मनसूबे बाँधने लगे। उन्होंने अपने प्रस्थान का दिन तक निश्चित कर लिया था। किन्तु भाग्य ने उनका साथ नहीं दिया और वे केनिया नहीं आ सके। पिता के छोड़े हुए अधूरे काम को पूरा करने का दायित्व पुत्र पर होता है, उसी के नाते मैं आपकी सेवा में उपस्थित होकर अपनी श्रद्धांजलि आपके चरणों पर चढ़ाने के लिये चला आया। अकस्मात् एक कार्य भी अनायास मिल गया। 'विश्व-स्वास्थ्य-संघ' की ओर से विष-चिकित्सा पर अनुसंधान करने के लिए मुझे छात्र-वृत्ति मिली और नियति ने मुझे केनिया भेजने में मेरी सहायता की और इस प्रकार इतना शीघ्र आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।"

"तुम्हारी प्रतिभा देखकर मुझे बड़ा हर्ष है, साथ साथ अपने को भी गौरवान्वित समझ रहा हूँ। मेरा हार्दिक आशीर्वाद है कि तुम अपने अन्वेषण में सफल हो और अपने पिता तथा मेरे बड़े भाई को भी अपने यश का भागीदार बनाओ।"

"विश्वनाथ ने उन्हें पुनः प्रणाम किया। डाक्टर आनन्द ने उत्फुल्ल होकर अपने हृदय से लगा लिया और कहा—"तुम्हारा सामान कहाँ है? आने के पहले यदि सूचित किया होता तो मैं पहुँच कर तुम्हें लिवा लाता, और शायद तब तुन्हें इतना कष्ट न हुआ होता।"

"सामान मेरे पास तो कुछ ज्यादा है नहीं, इसलिए उसे कस्टम के कार्यालय में ही छोड़ आया हूँ। यह पहले मुझे ज्ञात नहीं था कि आपकी ख्याति यहाँ गली-गली में गूँज रही है।"

"नहीं, ऐसी कोई ख्याति नहीं है, हाँ, आज तीस-बत्तीस साल से यहाँ रहने के कारण अवश्य मुझे लोग जान गये हैं। साथ ही मेरा पेशा भी ऐसा है जिससे जन-साधारण के सम्पर्क में आता रहता हूँ। आओ चलें, पहले चलकर तुम्हारा असबाब उठा लावें।"

"चलिए, आपका परिचय भी उस जहाज के कप्तान से करवा दूँ जिससे मैं आया हूँ। मेरा उनसे आलाप हो गया था और वे भी हमारे नगर लखनऊ

के पड़ोसी कानपुर के रहने वाले हैं। बड़े ही सहृदय व्यक्ति हैं।"

"चलो, चलो, जरूर उनसे मिलूँगा। कानपुर जिले का तो मैं भी रहने वाला था। कानपुर में ही मुझे अफ्रीका लाने के लिए भरती किया गया था। अफ्रीका आदि देशों में जहाँ-जहाँ अँग्रेजों के पास भूमि के बड़े-बड़े क्षेत्र थे और उनमें काम करने के लिए पर्याप्त मजदूर नहीं मिलते थे, उस समय भारतीय ब्रिटिश सरकार ने मजदूरी के लिए भारतियों की भरती का काम ब्रिटिश कम्पनियों के स्वामियों को दे दिया था। ऐसी कम्पनियों ने प्रत्येक बड़े-बड़े नगरों में, जिनकी निकटवर्ती जनता गरीब और दरिद्र थी, ऐसे डिपो कायम कर दिये थे, जहाँ मजदूरों को भरती करने का काम होता था। ऐसे डिपो के एजेण्ट, तथा कार्यकर्त्ता गुट बनाकर गाँव-गाँव घूमा करते थे और मजदूरी करने के इच्छुक बलवान तथा स्वस्थ शरीर वालों को प्रलोभनों के जाल में फँसा कर उनसे धोखे में मजदूरी करने का मुआहिदा या कन्ट्रैक्ट लिखा लिया करते थे और फिर उन्हें भेड़-बकरियों की भाँति विदेशों में, जैसे फिजी, अफ्रीका आदि देशों में भेज देते थे। ये कम्पनियाँ, स्त्री-पुरुष दोनों को भरती किया करती थीं। इनकी भी बड़ी दर्दनाक कहानी है। इसको भारत में कुली प्रथा के नाम से पुकारा जाने लगा और जब इसका भेद जन-साधारण पर खुला, तो इसके विरुद्ध आन्दोलन छेड़ा गया, और कई वर्षों के पश्चात् इस प्रथा का अन्त हुआ। तुम्हारे पितामह और मैं इसी प्रथा के शिकार हुए थे। उन दिनों की स्मृति आज भी इतनी स्पष्ट है कि मैं उन सभी व्यक्तियों के नाम तक बता सकता हूँ, जो मेरे साथ केनिया आए थे या जिन्होंने मुझे भरती किया था।"

"इन कम्पनियों में लोग क्यों मजदूरी करना स्वीकार कर लेते थे ?"

"बेटा, ईश्वर ने मनुष्य के शरीर में 'पेट' की व्यवस्था कर उसके गले में आधीनता का पट्टा डाल दिया है। इसको भरने के लिए मनुष्य नीच से नीच तथा अवैध से अवैध काम करने के लिए मजबूर हो जाता है। सन् १८५७ में जो विनाश तथा विघटन अंग्रेजों के दमन से हुआ था, उसकी पूर्ति कई दशाब्दियों तक नहीं हो सकी। विदेशों में निरन्तर भारतीय सम्पत्ति निर्बाध चली जा रही थी, इससे उसकी आर्थिक दशा का ह्रास हो रहा था और उसका

परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता को केवल पेट भरने के लिए भी, पर्याप्त साधन नहीं रह गए थे। सन् १८५७ की क्रान्ति का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा उस क्षेत्र में जिसको आजकल तुम्हारे देश की सरकार उत्तर प्रदेश कहती है। यहाँ का आदमी बड़ा जीवट होता है। परिश्रम करने में वह थकता नहीं। मोटा-झोटा खाकर अपनी गुजर कर लेता है। गरीबी भी यहाँ सबसे ज्यादा है। अतएव ऐसे क्षेत्र ही सेना के लिए सैनिकों अथवा कहीं भी मजदूरी करने के लिए मजदूरों की भरती के प्रमुख केन्द्र सहज ही बन जाते हैं।"

"कहने का तात्पर्य यह है कि उत्तर प्रदेश के ही लोग अधिकतर कुली-प्रथा के शिकार हुए?"

"उत्तर प्रदेश, बिहार और पंजाब ही के निवासी शरीर से हृष्ट-पुष्ट, मेहनत-मजदूरी करने के उपयुक्त होते हैं। उन प्रदेशों में भी कुलियों की भरती होती थी, किन्तु उनका विस्तृत क्षेत्र उत्तर प्रदेश में था। कानपुर के पुतलीघरों में काम ढूँढ़ने के लिए हजारों आदमी देहात से आया करते थे। कुली भरती करने वाली कम्पनियों के एजेण्ट नाना वेश में सर्वत्र घूमा करते थे। इस दिशा में काम करते-करते वे इतने चतुर तथा दक्ष हो गए थे कि वे शकल देखते ही उनकी मानसिक अस्थिरता भाँप लेते थे, और उसको ऐसे-ऐसे सब्जबाग दिखलाते थे कि वह बेचारा अनभिज्ञ व्यक्ति सहज उनके मकड़ी के जाल में मक्खी की भाँति फँस जाता था। वे उसे अपने अड्डे में ले आते थे। उत्तम भोजन देते और कभी-कभी कपड़ों की व्यवस्था करके उसको भरमाए रहते, और एक मुआहिदे पर उसके अँगूठे का निशान करवा लेते।"

"यह मुआहिदा क्या था?"

यह कानून को धोखा देने का एक उपाय था। जिस देश में भेजने के लिए कम्पनियाँ भरती करती थीं, उसके स्वामी की ओर से लिखित प्रतिज्ञा-पत्र होता था और उसमें वे शर्तें लिखी होती थीं जिनका पालन कम्पनी के सञ्चालक और मजदूर करेंगे। स्वदेश न लौटने की आज्ञा देना या न देना कम्पनी के सञ्चालक पर निर्भर करता था। वेतन आदि देना भी उसकी स्वेच्छा पर था। संक्षेप में

यह कि वह एक प्रकार की गुलामी का दस्तावेज होता था, जिससे मुक्ति मरने के पश्चात् ही मिल सकती थी। जब मजदूर की भरती हो जाती तो वह एक मैजिस्ट्रेट के सम्मुख पेश किया जाता, और वह उनसे पूछता था कि वे क्या स्वेच्छा से कम्पनी की मजदूरी स्वीकार कर रहे हैं? मजदूर जो अपनी तगी से लगभग मृतप्राय होता था, तुरंत स्वीकार कर लेता था, और जो इक्के-दुक्के उस समय मुकर जाते, उनकी भी स्वीकृति मान ली जाती थी, क्योंकि उनके अँगूठे की छाप तो प्रतिज्ञा-पत्र पर पहले से ही अंकित होती थी। वहाँ पर भी कम्पनी के एजेण्ट, उनके साथ रहते थे और उनके भय से वे अस्वीकृति देते ही न थे। जहाँ एक बार इस स्वीकृति की पुष्टि मैजिस्ट्रेट के सामने हो गई, उनकी गुलामी का पट्टा लौह शृंखलाओं की भाँति दृढ़ हो गया।"

"तो क्या स्त्रियों की भी भरती होती थी?"

"हाँ, उन मजदूरों को स्थायी रूप से ऐसे नव-उपनिवेशों में बसाने के लिए, परिवार बनाने की योजनाएँ भी इन कुलियों के स्वामियों ने बनाईं, जिससे पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुलामी कायम रहे। तरुण तथा प्रौढ़ वयस की स्त्रियों को भी भरती किया जाता था, जहाँ वे मजदूरी करती थीं और वहाँ के मजदूरों से विवाह करके परिवार की सृष्टि करती थीं। उनसे जो सन्तानें होती थीं, वे तो बिना किसी मुआहिदे के ही गुलाम होती थी, और कम्पनियों के स्वामियों की सेवा में अपना जीवन बिता देने के लिये बाध्य होती थीं।"

"ऐसे गुलामों के साथ व्यवहार कैसा होता था?"

"गुलाम के साथ कैसे व्यवहार की तुम आशा कर सकते हो? पशु का तो कुछ सम्मान भी होता था, किन्तु मनुष्य वेश-धारी पशु का किञ्चित सम्मान नहीं था। पशु की शक्ति को सीमित समझने का रिवाज है, किन्तु गुलामों की शक्ति के ह्रास होने की कोई अवधि नहीं थी। शारीरिक दुर्बलता, अथवा बीमारी अथवा कोई भी अन्य कारण उनकी छुट्टी तथा विश्राम के लिए उपयुक्त नहीं था। उनको तो अपने अपने कोटे के अनुसार काम पूरा करना ही पड़ता था, और यदि काम पूरा न हो तो निगरानी करने वाला ओवरसियर हण्टरों के बल

से करवा लेता था। उनमें न मालूम कितने ही मर जाते थे। सत्य ही भैया, मौत उनके लिए वरदान होती थी, मैंने वे सब नरक यातनाएँ सहन की है। यदि तुम मेरा नंगा बदन देखो तो वहाँ हण्टरों की मार के चिन्ह ही चिन्ह दिखाई पड़ेंगे। यदि मैं आज अभी तक जीवित हूँ, तो यह तुम्हारे दयालु पिता की कृपा से। वे मेरे हिस्से का काम कर दिया करते थे और बीमारी के दिनों में मेरी सेवा सुश्रूषा भी करते थे।"

"स्त्रियों के साथ कैसा व्यवहार होता था?"

"बेटा, उनकी कहानी तो पुरुषों की दुरावस्था से भी अधिक भयावनी है। वे भरतीवालों के एजेन्टों, जहाज के कर्मचारियों, कम्पनी के सञ्चालकों की काम-लिप्सा की शिकार होती थीं। जब उनका यौवन क्षीण हो जाता, तब वे किसी मजदूर के गले मढ़ दी जाती थीं। उस समय भी उनसे एक-दो सन्तानें हो जाती थीं और मजदूर-गुलामों की सृष्टि करती थीं?"

"इस प्रथा का अन्त कैसे और कब हुआ?"

"उन्नीसवीं शताब्दी तक तो यह निर्वाध रूप से चलता रहा। इसके सत्य का उद्घाटन ही न हो सका। लाखों-करोड़ों भारतीय प्रशान्त सागर के छोटे-छोटे द्वीपों दक्षिणी अमरीका और अफ्रीका के जंगलों को काट-काट कर नए सिरे से बसाए गए। बीसवीं शताब्दी की आरम्भिक दशाब्दी में भारत में इस कुली-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन शुरू हुआ। इस प्रकार गुलाम बनाने वाली कम्पनियों के अनुरूप ही भारत में भी गोरों की कम्पनियाँ, चाय बगानों तथा नील की खेती के लिए स्थापित थीं। वहाँ पर भी अमानुषिक अत्याचार मजदूरों पर हुआ करते थे। बहुत दिनों बाद उनकी करुण कहानियाँ इधर-उधर फैल सकीं। गोखले आदि नेताओं के उद्योग से इस गुलामी प्रथा का अन्त हुआ। और अफ्रीका में जो कुछ हुआ, उसका श्रेय महात्मा गांधी तथा उनके साथियों को है। यहाँ के मजदूरों की भी सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ और शर्तबन्दी तोड़ दी गई तथा जो स्वदेश लौटना चाहते थे, उनको अनुज्ञा दी गई। इसी का लाभ उठाकर तुम्हारे पिता स्वदेश को लौटे थे।"

"फिर आप क्यों नहीं स्वदेश लौटे ?"

"मुख्य कारण था जाति-पाँति का झगड़ा। मेरा जन्म ब्राह्मण कुल के सम्पन्न घराने में हुआ था। यदि मैं वापस लौटकर जाता तो मुझे कोई जाति में मिलाने को तैयार न होता और अपने अन्य कुल वालों के लिए एक कठिन प्रश्न बन जाता। मैं घर से भाग कर कानपुर शहर देखने आया था। नौकरी की खोज में नहीं था, किन्तु जब भरती करने वाले एजेण्ट से आलाप हुआ तो उसने ऐसी लच्छेदार बातें बनाईं कि मैं देश-देशान्तर देखने के लिए लालायित हो उठा। उन्होंने बिना पैसा खर्च किए बड़े-बड़े देशों के देखने का लोभ दिया तथा ऐसे-ऐसे रंग मेरी मानसिक तस्वीर में भरे कि मैं अपना सब विवेक खो बैठा और उनके साथ जाना स्वीकार कर लिया। उन्होंने बम्बई आदि भारतीय नगरों के देखने-दिखाने की बातें बताई थीं। यह नहीं बताया था कि देश के बाहर जाना होगा। जब हमें जहाज पर बैठाया गया, तब ज्ञात हुआ कि अफ्रीका हम लोग भेजे जा रहे हैं। उस समय हमारा विलाप काम नहीं आया। यहाँ आकर हमें जो यातनाएँ भोगनी पड़ी, उसकी कहानी कहने की शक्ति के बाहर है। लौटने पर मेरे लिए कोई स्थान समाज में नहीं था, इसलिए नहीं लौटा। यहीं एक अंग्रेज डाक्टर के यहाँ कम्पाउण्डर हो गया। वह एक सहृदय व्यक्ति था। उसकी कृपा से मुझे चिकित्सा का ज्ञान हुआ और उसके मरने के पश्चात् मैंने उसके दवाखाने को मोल ले लिया। भगवान की कृपा से मेरा दवाखाना चल गया, और यहीं एक मजदूरिन से विवाह कर परिवार की स्थापना की। अपनी कहानी तो विस्तारपूर्वक कभी अन्य समय बताऊँगा। अभी चलकर तुम्हारा असबाब तो ले आवें।

विश्वनाथ अपने मन में उठते हुए अनेक कौतूहलों को दमन कर उनके साथ चले गए।

— ६ —

डाक्टर आनन्द के परिवार में एक लड़की सुहासिनी और पुत्र देवराज था। उनकी पत्नी का देहान्त कुछ वर्षों पहले हो गया था। सुहासिनी वयस्क थी और उसने देवराज के पालन-पोषण का भार उठा लिया था। देवराज अत्यन्त चपल स्वभाव का था, किन्तु वह सुहासिनी के मिष्ठ शासन को मानकर अपनी उन्नति कर रहा था। अपनी माँ के वियोग का प्रभाव उस पर बहुत पड़ा था और इससे उसमें एक प्रकार की विषादमयी गंभीरता आ गई थी। सुहासिनी की सतत चेष्टा रहती कि वह उनकी माँ के अभाव को भूल जाय, किन्तु यह उसके लिए कठिन बात थी। परन्तु लगन और परिश्रम का फल होता ही है, सुहासिनी को भी बहुत कुछ सफलता मिली और देवराज बीतते हुए दिनों के साथ उसका अनुगामी तथा आज्ञाकारी हो गया।

मोम्बासा के एक अंग्रेजी स्कूल में सुहासिनी ने शिक्षा पाई थी, इससे उसका रहन-सहन अंग्रेज युवतियों की भाँति था। यद्यपि डाक्टर आनन्द की पत्नी भारतीय मजदूरिन थी, किन्तु कई वर्षों तक वह कम्पनी के एक अंग्रेज के साथ रहने से उसकी भारतीयता बहुत अंशों में पश्चिमीय रंग धारण कर चुकी थी। वह एक अनुपम सुन्दरी थी। उसके साथ जो अत्याचार हुए थे, उससे त्राण पाने के लिए उसको एक अंग्रेज की शरण में जाने के लिए बाध्य होना पड़ा। वह गोरा उस कम्पनी का ओवरसियर था, जिसके सम्पर्क में उसे नित्य ही आना पड़ता था। वह भी अन्य पुरुषों की भाँति उस पर आसक्त था, और उसे अपनी उप-पत्नी बनाने के लिए तैयार था। डाक्टर आनन्द भी उन दिनों युवक थे और वे भी उससे विवाह करने के इच्छुक थे, परन्तु गोरे ओवरसियर की दृष्टि से उनका प्रेमालाप छिपा नहीं रह सका। उसने उन दोनों को पृथक-पृथक क्षेत्रों में काम करने के लिए भेज दिया। डाक्टर आनन्द के मन पर इसका घातक प्रभाव पड़ा, और वे उस गोरे ओवरसियर की हत्या का उपाय सोचने लगे। अपने मन का विचार उन्होंने अपने समवयस्क साथी जगन्नाथ से

जो विश्वनाथ के पिता थे, कहा। उन्होंने उनके विचारों की पुष्टि नहीं की, वरन् बहुत समझा-बुझा, ऊँच-नीच दिखाकर उसकी ओर से मन फिरा लेने का उपदेश दिया। गोरा ओवरसियर भी सतर्क था और वह भी डाक्टर आनन्द को सता-सताकर मार डालना चाहता था। जगन्नाथ उस समय एक ओवरसियर के पद पर प्रतिष्ठित हो गए थे, क्योंकि वे दूसरी पीढ़ी के गुलाम थे। दूसरी पीढ़ी के गुलामों के साथ बल से नहीं, कौशल से काम लिया जाता था और उनको कभी-कभी कुछ एकड़ भूमि खेती के लिए दी जाती थी और कभी उसी कम्पनी के छोटे-मोटे पदों पर नौकर रख लिया जाता था। जगन्नाथ ने डाक्टर आनन्द के सम्बन्ध में उस गोरे से बातचीत की, तो उनमें यह समझौता हुआ कि डाक्टर आनन्द अपनी प्रेयसी सम्बन्ध के सारे अधिकार छोड़ दे और यहाँ से दूरचले जावे। उसने उनकी नौकरी भी अन्य क्षेत्र में करवा देने का वचन दिया। डाक्टर आनन्द को यह स्वीकार नहीं था, किन्तु शक्ति के सम्मुख वे निरुपायभी थे। अन्ततोगत्वा सब को यह स्वीकार करना पड़ा और वे दूसरे क्षेत्र में भेज दिये गए। गोरे की विजय हुई और उसने एक अँधेरी और तूफानी रात्रि में डाक्टर आनन्द की प्रेयसी पर अपना प्रभुत्व पाशविक बल से जमा लिया।

परिस्थितियाँ मनुष्य से सब कुछ करवा लेती हैं। दारुण और असह्य बातें उनके प्रभाव से अपना तीखापन मिटा देती हैं। डाक्टर आनन्द की प्रेयसी यमुना भी धीरे-धीरे गोरे ओवरसियर के साथ रहने की अभ्यस्त हो गई। उसमें परिवर्त्तन घटित होने लगा, किन्तु बावजूद उन परिवर्त्तनों के वह डाक्टर आनन्द को भूल नहीं सकी। कुछ दिनों पश्चात् कालेज्वर का आक्रमण केनिया में हुआ। इस महामारी में काले और गोरे दोनों शिकार हुए और सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गई। डाक्टर आनन्द का प्रतिद्वन्द्वी, गोरा ओवरसियर भी इस विषम ज्वर से पीड़ित हुआ। जगन्नाथ और यमुना ने निष्कपट होकर उसकी बहुत सेवा-सुश्रूषा की किन्तु वह किसी भाँति अच्छा नहीं हुआ। मृत्यु घटित होने के समय उसके मस्तिष्क-कोष में उसके अत्याचारों की कहानी सजग हुई। शारीरिक शक्ति के निःशेष होने पर ही मस्तिष्क वास्तविक परिस्थित का ज्ञान कराता

है। वृश्चिक दंशन की भाँति उसके अत्याचारों तथा पापों की स्मृति उसे पीड़ित करने लगी। वह छटपटाकर अपनी पीड़ा को कम करना चाहता, किन्तु वह तो द्रुतिगति से निरन्तर बढ़ती ही जाती थी। पश्चाताप के अश्रु-जल से वह अपने कार्यों के प्रतिक्रिया की अग्नि को बुझाना चाहता था, परन्तु अब वह अवसर उसके हाथ से निकल चुका था। जगन्नाथ को बुलाकर उसने एकान्त में अनुरोध किया कि उसकी मृत्यु के पश्चात् वे यमुना का विवाह डाक्टर आनन्द से करवा देवें, और प्रायश्चित्त में उसने अपनी सारी सम्पत्ति भी यमुना के नाम करवा देने का हठ किया। वकील को बुलाकर विधिपूर्वक दान-पत्र लिखा गया और वह कुछ दिनों उपरान्त काल-कवलित हो गया।

इस समय तक कुली-प्रथा में बहुत कुछ संशोधन हो चुके थे। मजदूर स्वतंत्र कर दिए गये थे। उनको स्वदेश लौटने की आज्ञा मिल गयी थी। डाक्टर आनन्द का विवाह यमुना के साथ जगन्नाथ ने करवा दिया और उसके साथ उनको थोड़ी-बहुत पूँजी भी मिल गई। मुक्ति मिलने पर वे मोम्बासा नगर में आकर बस गए। और एक अंग्रेज डाक्टर के चिकित्सालय में नौकर हो गए। डाक्टर के मरने के पश्चात् उन्होंने उसका औषधालय खरीद लिया और शनैः शनैः कम्पाउण्डर से डाक्टर हो गए। जगन्नाथ ने उनसे विदा लेकर स्वदेश को प्रयाण किया।

कई वर्षों तक यमुना के कोई सन्तान नहीं हुई। एक प्रकार से दम्पति उस दिशा में निराश हो चुके थे। यद्यपि डाक्टर आनन्द इससे अधिक दुखी या चिन्तित नहीं थे, किन्तु यमुना मातृत्व के लोभ को कभी त्याग न सकी। उसके आनन्द की सीमा, उस दिन न रही जब दाम्पत्य जीवन के लगभग दस वर्ष बाद उसने एक कन्या को जन्म दिया। शिशु अवस्था में सुहासिनी मुस्कराती बहुत थी, इसलिए दाम्पति ने सुहासिनी नाम उसके लिए निर्वाचित किया। दस वर्ष पश्चात् यमुना ने एक बालक को जन्म दिया और उसके भव्य रूप के अनुसार उसे देवराज का नाम दिया। देवराज के जन्म के पश्चात् यमुना का स्वास्थ्य गिरता गया। और वह तीन वर्ष की रुग्णता के पश्चात् काल-कवलित हो गई।

डाक्टर आनन्द भी इस वज्राघात को सहन करने में केवल इसलिए समर्थ हुए, क्योंकि उनके सामने असहायावस्था में दो सन्तानें थीं। सुहासिनी ने भी साहस तथा धैर्य से पिता की सारी गृहस्थी सँभाल ली। वह सीनियर कैम्ब्रिज की परीक्षा में बैठने वाली थी जब उसकी माता का देहान्त हुआ। उसने परीक्षा से उत्तीर्ण होने के पश्चात् अपना विद्याभ्यास बराबर जारी रखा, तथा देवराज का भी सारा भार उठा लिया। इतनी छोटी अवस्था में जिस चतुराई एवं दक्षता का परिचय उसने दिया, उससे डाक्टर आनन्द ही नहीं, वरन् पास-पड़ोस के सभी सभ्य घराने चकित रह गए। कुछ दिन अधिक जीवित रहने की साध उनके मन में जाग्रत हो गई, और वे अपने दीर्घजीवन के लिए भगवान से प्रार्थना करने लगे।

डाक्टर आनन्द ने दो आदिवासी स्त्रियों को सुहासिनी की सहायता के लिए नौकर रख लिया। केनिया और अफ्रीका के दक्षिणी प्रदेशों में विदेशियों ने अपनी सभ्यता के साथ-साथ अपने ईसाई धर्म का भी प्रचार किया। अधिकांश अथवा लगभग सभी ईसाई हैं, यद्यपि वे अपने पुराने संस्कारों से पूर्ण मुक्ति नहीं प्राप्त कर सके। ईसाई धर्म-व्यवस्था भी, सभ्यता की भाँति उन पर जोर जबरदस्ती से लादी गई वस्तु है। सभी अपने सनातन धर्म का पालन करते, उसी प्रकार भूत-प्रेत और पूर्व पुरुषों पर विश्वास करते, वन-देवी तथा देवताओं की पूजा करते, यंत्रों का जाप कर शाप अथवा पिशाच ग्रस्त प्राणियों को मुक्त करते और चोरी-छिपा पहले की भाँति नर-बलि भी करते थे। केनिया में भी अनेक प्रकार की जातियाँ बसी हुई थीं, और उनके आचार-व्यवहार में बहुत कुछ भिन्नता थी। एक जाति दूसरी जाति से लड़ने में अन्य जातियों की भाँति ही सजग तथा सचेष्ट रहती थी, किन्तु शिक्षा के प्रसार के साथ उनमें जातीयता तथा देश-प्रेम की भावना तो जाग्रत हो चुकी थी, और आपस में लड़ने-मरने की आदत भी धीरे-धीरे कम हो रही थी, परन्तु उनके मूल जातीय संस्कारों को अब भी कोई क्षति नहीं पहुँच सकी थी।

सुहासिनी की दोनों सहायक परिचारिकाएँ ईसाई मत को मानने वाली थीं,

किन्तु इसका कोई प्रभाव उनकी सामाजिक स्थिति पर नहीं पड़ता था। भारत में पनपने वाली जातिया वर्ण-व्यवस्था से अफ्रीका में रहने वाली हिन्दू जनता सर्वथा मुक्त थी। वहाँ सब केवल भारतीय थे। विवाह आदि सम्बन्ध भी संकीर्णता से विलग हुआ करते थे। धर्म का वहाँ कुछ सामाजिक महत्व नहीं रह गया था। वह अपने निजी विश्वास की वस्तु थी और केवल धर्म के नाम पर किए जाने वाले अत्याचारों का समावेश प्रवासी भारतीयों की उस नव-व्यवस्था में नहीं हो सका था। कुछ वर्षों तक तो हिन्दू और मुस्लिम का भी भेद वहाँ बिल्कुल न था, दोनों गोरों के सन्मुख काले भारतीय-मात्र थे, परन्तु इधर जब से अगरेजी शासकों ने भेद-नीति का आश्रय भारत में लिया, तब से वहाँ के शासकों ने भी इससे लाभ उठाना चाहा और इस विष को किसी अंश तक प्रविष्ट करने में समर्थ हुए। भारत से सम्पर्क होने के कारण इस भेद-नीति को कुछ-कुछ पनपने में सहायता मिली; परन्तु अधिक नहीं। अबभी सभी धर्मावलंबी भारतीय केवल भारतीय हैं।

सुहासिनी के गृह-प्रबन्ध से डाक्टर आनन्द सर्वथा सन्तुष्ट थे। उनके मन में यह इच्छा थी कि यदि उसका विवाह उनके सामने हो जाय तो वे सुख से मर सकेंगे। सुहासिनी महत्वाकांक्षिणी थी। घर-गृहस्थी बसाने के चक्र में वह अभी नहीं पड़ना चाहती थी। उसके सामने एक आदर्श था—वह था अपनी स्त्री-जाति को समुन्नत करने का। अफ्रीका के आदि जातियों में, जिस प्रकार अशिक्षा, तथा असभ्यता फैली हुई थी, उसे मिटाकर वह सभ्य समाज में बराबरी का स्थान दिलाने का स्वप्न देखा करती थी, भारत के नेतृत्व में वह भारतीय समाज को संगठित करना चाहती थी, और इसी उद्देश्य से उसने भारतीय नेत्रियों से पत्र-मित्रता स्थापित कर रखी थी। डाक्टर आनन्द ने भी जन-सेवा का मार्ग बहुत पहले से ही अपना रखा था इसलिए सुहासिनी के इस प्रयत्न को उन्होंने सराहा और यथा संभव उसकी सहायता भी करने लगे। केनिया की जनता पिता-पुत्री दोनों की भक्ति करती थी, और उनके लिए सर्वत्र आदर और तथा सम्मान था। किन्तु इतनी प्रतिष्ठा होने पर भी कोई सुयोग्य पात्र सुहासिनी से विवाह करने के लिए अग्रसर नहीं हुआ था, जिसका

कारण डाक्टर आनन्द की समझ में कुछ नहीं आता था। किन्तु धैर्य से प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं था।

— १० —

डाक्टर आनन्द ने विश्वनाथ का परिचय देते हुए सुहासिनी से कहा— "जानती हो, यह कौन हैं ?"

सुहासिनी अपने सम्मुख एक अपरिचित सुन्दर युवक को देखकर पहले कुछ सहज-भाव से लजा गई ! उसके कपोलों पर लालिमा दौड़ गई। उसके नेत्र स्वतः नत हो गए।

डाक्टर आनन्द हर्षावेग में बहते हुए बिना उसके उत्तर की प्रतीक्षा किए हुए कहते रहे—"तुम नहीं जान सकती सुहास, मैं कहता हूँ कि तुम कल्पना भी नहीं कर सकती। लेकिन अभी इसका परिचय दूँगा नहीं। आज तुम्हारी कल्पना शक्ति की परीक्षा करना है। आओ, मेरे साथ ड्राइङ्ग-रूम में चलो।" फिर विश्वनाथ से कहा—"भैया, तुम कुछ न बोलना। आज इस मुखर बालिका की प्रतिभा देखना है। मुझे परेशान करने का इसने बीड़ा उठा रखा है। अपनी प्रतिभा से मुझ बूढ़े को तो सदैव चकित करती रहती है, क्योंकि मैं कुछ अधिक पढ़ा-लिखा नहीं हूँ। अधिक पढ़ा-लिखना कहना भी झूठ है, मैं तो बिल्कुल लंठ गँवार हूँ। ईश्वर की कृपा से मेरी सुहास को शिक्षित होने का दावा है। यहाँ मोम्बासा में सीनियर कैम्ब्रिज परीक्षा पास करके लन्दन विश्वविद्यालय पढ़ने गई थी। वहाँ से ग्रेजुएट होकर आई और तब से इसका दिमाग फिर गया है। समाज-सेवा का व्रत ले लिया। विवाह के नाम से चिढ़ती है। आओ जरा देखो इसकी बुद्धि-प्रखरता।"

कहते हुए वे सुहासिनी को ड्राइंग-रूम में ले गए, और उसको विश्वनाथ के पिता स्वर्गीय जगन्नाथ के तैल-चित्र के सामने खड़ा कर दिया। सुहासिनी के मन की अवस्था बड़ी विकृत थी। वह मन ही मन अपने पिता पर कुपित हो रही थी। प्रायः प्रत्येक सम्भ्रान्त कुल के युवक के सामने वे उसकी प्रसंशा के

गीत गाने लगते थे, जिससे उसको बहुत अरुचि थी, और वह उन्हें रुकने के लिए संकेत करती किन्तु पिता की वात्सल्य-प्रगल्भता पुत्री का शासन अस्वीकार करती।

सुहासिनी ने चिढ़े हुए स्वर में कहा—"पापा, आप तो बहुत जबरदस्ती करते हैं। बिना परिचय दिये मैं किसी को कैसे पहचान सकती हूँ। मैं कोई देवी-देवता तो हूँ नहीं।"

डाक्टर आनन्द ने उसकी बातों पर कुछ ध्यान नहीं दिया और वे कहने लगे—"सबसे पहले इस चित्र को देखो। तुम इस चित्र को अवश्य जानती हो। मैंने कई बार इनके सम्बन्ध में घंटों तुमसे बातें की हैं। तुम्हारी स्वर्गीय माँ, और हम सब उसकी बराबर पूजा करते आये हैं। बोलो, उस चित्र में अंकित व्यक्ति का क्या नाम है?"

"श्री जगन्नाथ जी!" सुहासिनी ने पिंड छुड़ाने के लिए कह दिया।

"ठीक, तुम पहली परीक्षा में उत्तीर्ण हुई। आज जरा गौर से इस नवयुवक की ओर देखो।"

"क्या देखूँ? आप तो तंग बहुत करते हैं।"

देखो, इस अल्हड़ लड़की की बातें! तुम्हारी बुद्धि तथा कल्पना की परीक्षा ले रहा हूँ और तू कहती है कि मैं तंग कर रहा हूँ। बेटा विश्वनाथ, तुम्ही इसका विचार करो।"

"सुहासिनी को यह सब अच्छा नहीं लग रहा था, किन्तु एक अपरिचित के सामने वह कटु भी नहीं होना चाहती थी। उसने अपने विराग को दमन करते हुए कुछ अपने मन्द स्वर में कहा—"पिताजी, आप एक अपरिचित के सामने मेरा उपहास क्यों करते हैं?"

"क्या कहा? अपरिचित! यही तो बता रहा हूँ कि विश्वनाथ इस घर का बहुत ही परिचित तथा निकट व्यक्ति है। उतना ही, जितना तुम और देवराज हो।"

"सुहासिनी ने मौन रहने में ही अपना कल्याण समझा।

डाक्टर आनन्द कहते रहे—"देखो, इस चित्र पर अंकित छवि से उस नव-युवक के चेहरे-मोहरे का कुछ मिलान होता है ? तुम अब रूठ गई हो, इसलिए देखोगी नहीं।"

"मैं कहाँ रूठ गई हूँ, पिताजी! आप तो अन्याय करते हैं।"

"बेटी इस जमाने में बूढ़े अन्याय करने के आदी हो गए हैं। अच्छा, मैं स्वीकार करता हूँ कि तुम रूठी नहीं। अच्छा, अगर रूठी नहीं तो फिर इस नवयुवक से इस चित्र का मिलान क्यों नहीं करती ?"

"मिलान करने की कोई बात हो तो मिलान करूँ।"

"हाँ, हाँ, मैं स्वीकार करता हूँ, मेरी ही भूल है। इस चित्र का व्यक्ति हिन्दुस्तान की प्राचीन वेश-भूषा में है। सिर पर पगड़ी है, शरीर पर कुरता है, कमर में धोती है, पैरों में चप्पल है, जो इस नवयुवक के परिधान से बिल्कुल मेल नहीं खाते। लेकिन चेहरों पर जब ध्यान दोगी तो मालूम होगा कि दोनों के नेत्र एक समान दीर्घ है, कानों का विस्तार लगभग बराबर है, नासिकाएँ दोनों की उठी हुई कुछ बड़ी हैं, हाँ अन्तर केवल मुँह की चीरन में है। चित्र में वह कुछ बड़ी दिखाई पड़ती है और युवक में कुछ कम हैं। थोड़ा बहुत अन्तर दोनों के ओष्ठों में भी है। भाई जगन्नाथ के कुछ मोटे थे, और चिरन्जीव विश्वनाथ के कुछ पतले हैं।"

सुहासिनी को ज्ञात हो गया कि आगन्तुक नवयुवक उनके पिता के अन्यतम सुहृत् जगन्नाथ का पुत्र है। उसने एक तिरछी तथा छिपती दृष्टि से विश्वनाथ की ओर देखा। अब उसे सादृश्य स्पष्ट प्रतीत होने लगा। उसके कर्णमूलों पर गहरी लालिमा छा गई। उसने अपना सिर नत कर पृथ्वी को अंगूठे के नख से खुरचना आरम्भ किया। विश्वनाथ भी पिता का स्नेह, और हर्षावेग से उत्पन्न प्रगल्भता तथा सुहासिनी की संकटापन्न अवस्था को निरीक्षण कर एक विचित्र प्रकार का आनन्द ले रहे थे, जिसका अभ्यास आज के पहले उन्हें कभी नहीं हुआ था।

डाक्टर आनन्द ने तरुण तथा तरुणी के नयन-मिलन की ओर न देखा

और न ध्यान दिया। उनको बहुत दिनों बाद आज दिल खोलकर बोलने का अवसर प्राप्त हुआ था—शायद अपनी पत्नी के वियोग के पश्चात् वह पहला था। वे अपनी कल्पना के राज्य में अबाध विचरण कर रहे थे और किसी भाँति उसको छोड़ना नहीं चाहते थे। वे कहते ही गए—"बेटा विश्वनाथ, तुमने देखा, आज कैसे मैंने इस मुखरा को छका दिया। मैं इसकी बकवास से बहुत परेशान रहता हूँ। जब से इसकी मां मरी, तब से यह घर की मालकिन बन बैठी। मेरी सारी स्वतंत्रता पर इसने ब्रेक लगा दिए हैं। "पापा, तुमने यह नहीं किया', 'वह नहीं किया', 'तुम बहुत देर में खाते हो', 'रात भर क्यों नहीं सोते' 'सभा-सोसाइटियों में क्यों नहीं जाते', 'तुम हँसते क्यों नहीं', 'तुम घर की चिन्ता क्यों करते हो', न-मालूम कितनी बातें सुनाया करती है, कितने उलहने दिया करती है, कितने उपदेश देती है, मैं तो भैया, बिल्कुल ऊब गया हूँ। अब तुम आ गए हो। तुमने मुझे उबार लिया। सवा सेर के सामने सेर भर की हेकड़ी नहीं चल पाती। तुम इससे ज्यादा पढ़े-लिखे, चतुर और सुजान हो। तुम्हारा बल पाकर मेरा पक्ष सबल हो जायगा।" कहते-कहते वे खुले हृदय से हँसने लगे। इस उन्मुक्त हास्य से आनन्द की मयूखें निकलकर वातावरण को सुखद बनाने लगी। सुहासिनी और विश्वनाथ उससे प्लावित होकर परस्पर पुनः देखने लगे।

डाक्टर आनन्द विश्राम लेकर कुछ कहने वाले ही थे कि सुहासिनी ने उनको रोकते हुए कहा—"पापा, आप तो किसी को बोलने नहीं देगें। मैं समझती हूँ कि हमारे अतिथि आज ही स्वदेश से आ रहे हैं। हमें उनके आशय की व्यवस्था सबसे पहले करना चाहिए।"

"क्या कहा, अतिथि? कौन अतिथि है? अरी पगली, विश्वनाथ मेरा अतिथि नहीं है। यह तो मेरा पुत्र है। सबसे बड़ा पुत्र! बाप के घर में बेटा कहीं अतिथि हुआ करता है! तुम लोगों का दृष्टिकोण ही पश्चिमीय हो गया है। जहाँ बेटा बाप को धन्यवाद देता है और बाप बेटे को! यह हमारी भारतीय सभ्यता नहीं है। उसमें पुत्र अपने पिता का ऋणी होता है। जानते हो, वह ऋण किस बात का होता है? रुपये-पैसे का नहीं, मान-मर्यादा का

नहीं। वह ऋणी होता है शुद्ध सरल स्नेह का, वात्सल्य का, आदर का, प्रेम का, और भक्ति का। इस घर की बात छोड़ो, विश्वनाथ का स्थान मेरे हृदय में देखो। उसने वहाँ कितनी जगह घेर ली है। अरे, अरे सुहास, देखो तुम और देवराज उसमें लोप हुए जा रहे हो।"

"लोप हो जाने दो पापा, हमें इसका कोई क्षोभ नहीं है, और न कोई चिन्ता है।"

"ठीक है, तुमको क्यों चिन्ता होगी? लड़की की दुनिया, उसके पिता की दुनिया से बिल्कुल प्रथक होती है। तभी तो हमारे मनु महाराज ने पिता के सर्वस्व का उत्तराधिकारी उसके पुत्र को ही बनाया है।"

"लेकिन अब नहीं पिताजी, उत्तराधिकारी के नियमों में भारतीय राज्य-क्रान्ति के साथ बहुत परिवर्त्तन हो गया है। अब पिता की सम्पत्ति में पुत्र तथा पुत्री को समान अधिकार प्राप्त हुए हैं।" सुहासिनी की ओर एक मन्द मुस्कान के साथ देखते हुए विश्वनाथ ने बीच ही में उत्तर दिया।

"अच्छा बेटा, उत्तराधिकार के इस नए परिवर्त्तन के विषय में मुझे कुछ ज्ञान नहीं है। क्योंकि इधर कई वर्षों से मैंने अखबार पढ़ना छोड़ दिया है।"

"यह क्यों नहीं कहते कि संसार का सब काम-काज छोड़ दिया है।" सुहासिनी ने अपनी मन्द मुस्कान से विश्वनाथ के स्मित हास्य का उत्तर देते हुए कहा।

"तुम्हीं बताओ बेटा विश्वनाथ, अब क्या मैं संसार चलाने का भार उठाने के योग्य रह गया हूँ? यह मेरा पचहत्तरवाँ वर्ष चल रहा है। इन घिसे-घिसाए हाड़ों में कितने दिन शक्ति रहेगी? भगवान ने मेरे ऊपर सदैव कृपा की है। वे सदैव मेरी कठिनाइयों को हल करते आए हैं। जवानी में वे तुम्हारे पिता के रूप में मेरे सहायक प्रकट हुए थे और अब बुढ़ापे में तुम्हारे रूप में आए हैं। अब मेरी सारी चिन्ता, दुख मिट गया है। मेरी सारी कठिनाइयाँ अपने आप सरल हो जायँगी।"

"पापा, अब क्या अपने सहायक भगवान को दिन-भर भूखा ही रखोगे?

न खुद खाओगे, न उनको खिलाओगे, और न किसी को खाने दोगे ?"

"तुमने खूब याद दिलाया। मैं तो बिल्कुल भूल ही गया था। हाँ-हाँ चलो बेटा, मुँह हाथ धो लो। पर यह जान लो, इस घर में सुहास का शासन चलता है, और वह बिल्कुल लौहमय है। रञ्च-मात्र भी अन्तर वह स्वीकार नहीं करती। लेकिन अब मुझे विश्वास है कि तुम्हारे संसर्ग से वह इस बूढ़े के साथ दया का व्यवहार करना सीख जायगी।" कहते हुए वे कपड़े बदलने के लिए अपने कमरे में चले गए।

बैठक में जब सुहासिनी ने अपने को विश्वनाथ के साथ अकेला पाया, वह एक बार उनको देखकर मुस्कराई और हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हुए कहा—"पापा की बकवास के कारण आपकी अभ्यर्थना में देर हुई, इसका मुझे हार्दिक क्लेश है, सबसे प्रथम मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए। आप मुझसे बड़े हैं, मेरे गुरुजन हैं, मेरे अपराधों पर दृष्टिपात न कीजिएगा। जहाँ भूल हो जाय, बड़े भाई की भाँति उसका सुधार कीजिएगा।" कहती हुई वह उनकी चरण-धूलि लेने के लिए नत-भूमि हुई।

क्षण-भर के लिए विश्वनाथ हतचेष्ट से हो गए। उन्हें न उत्तर ही सूझ पड़ा और न उसके भूमिष्ठ होने के प्रयास को रोक ही सके। जब उसके कर का स्पर्श उन्होंने अनुभव किया, तब सहमी हुई उनकी चेतना जाग्रत हुई, और उन्होंने झुककर उसके हाथों को पकड़कर उठाते हुए कहा—"यह उचित नहीं है। मनुष्य-मात्र बराबर हैं। छोटे-बड़े का भेद कृत्रिम है।"

"नहीं यह हमारी परम्परा है—भारतीय सभ्यता है।"

"उसमें छोटी बहिन का स्थान देवी की भाँति पूज्य है।"

"और बड़े भाई का स्थान माता-पिता के समान ही प्रणम्य है।"

"किन्तु इस समानता के युग में वह अशोभनीय है। नहीं, मेरे कहने का मतलब है कि वह फैशन के बाहर हो चुका है।"

"मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकती। पश्चिम का व्यवहार हमारे पूर्व के फैशन से विभिन्न है। हमें अपनी सभ्यता को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहिए।

इसी में तो हमारा गौरव है।" नत होने की व्यवस्था, राजतन्त्रीय है प्रजातन्त्र में उसका कोई स्थान नहीं है।"

"अपने गुरुजनों का अपमान करना तो प्रजातन्त्र का अभीष्ठ नहीं है। रह गया आदर-सम्मान प्रदर्शित करना, वह देश तथा संस्कृति के अनुसार हुआ करता है। आज भी विभिन्न देशों में विभिन्न रीतियाँ प्रचलित हैं। हम चाहे जहाँ रहें, भारतीय ही रहेंगे और हमें उसी सभ्यता के अनुसार ही चलना होगा।"

"लेकिन आप एक शिक्षित रमणी हैं।"

"किन्तु भारतीय हूँ। शिक्षा तो विनम्रता के बोझ को और बोझक बनाती है। आप मेरे अधिकार से मुझे वञ्चित न करें। पापा आप लोगों की कथाएँ सुनाते कभी नहीं थकते। मैं जानती हूँ कि जितना उनको आज आनन्द प्राप्त हो रहा है, उतना शायद उस समय भी न होता, यदि साक्षात् भगवान उनके सम्मुख अवतरित हो जाते। आज वर्षों बाद उनका इस तरह हँसते देखा है। मेरा रोम-रोम आपके प्रति कृतज्ञ है। आप न-मालूम कितना आनन्द लेकर आए हैं।" कहते-कहते उसके पिता के प्रति उसका स्नेह तरल हो गया।

विश्वनाथ को भी उसके अपनत्व ने छू लिया। उनका भी शरीर रोमाञ्चित हो गया।

सुहासिनी ने मन के आवेश को हँसी में परिवर्तित करने की चेष्टा करते हुए कहा—"आप नहीं जानते कि हम लोग कितने दुखो हैं। मां के बाद पापा जीवित जरूर हैं, लेकिन वह भी हमारे लिए। इस घर की हँसी न मालूम किस शून्य-लोक में समा गई थी। पापा का कहना झूठ नहीं है कि आप भगवान ही के रूप में आए हैं।"

"अरे यह क्या अन्याय कर रही हो?" विश्वनाथ का हृदय उसकी स्नेह छाया में विश्राम करने लगा।

"नहीं, मैं सत्य ही कहती हूँ। यह मुझे भी अनुभव नहीं हो रहा है कि

आप हमसे दूर हैं। केवल इतना मालूम होता है कि हम लोग बहुत दिनों बाद मिले हैं।"

"हमारे पिता और आपके पिता की मित्रता की पृष्ठभूमि में ऐसा मालूम होना कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं है। वर्त्तमान को परिचालित करने में अतीत का ही हाथ होता है।"

इसी समय कपड़े बदलकर डाक्टर आनन्द वहाँ आ गए और/बोले—"वाह सुहास, मुझको तो डाट-डपट कर भगा दिया, और तुम स्वयं विश्वनाथ को बातों में उलझाए हो। उसको खाने पिलाने की बात तो दूर रही, खाली बातों में उसका पेट भरना चाहती हो, शायद !"

सुहासिनी लज्जित हो गई और डाक्टर आनन्द के अट्टहास्य से हर्ष कण-कण होकर बिखर गया। उन्होंने उनका हाथ पकड़ कर एक ओर ले जाते हुए कहा—"आओ बेटा, मैं तुमको स्नानागार तक पहुँचा दूँ। अभी तुम आज ही आए हो, इसलिए इस कुटिया के स्थानों से परिचित नहीं हो। सुहास भी तुमको पाकर सब कुछ भूल गई है। देवराज के भी स्कूल से लौटने का समय हो गया है। अब तक हम लोगों की गृहस्थी में केवल तीन आदमी थे, इसलिये सदैव एक साथ एक जगह ही खाते-पीते हैं। अब हम लोग तीन से चार हो गए हैं। हमारी चौथी कुर्सी, जिसको मैं सुहास की मृत्यु के बाद से सदैव खाली ही देखता था, वह आज भर जायगी। मैं सुहास की माँ का स्थान ग्रहण करूँगा और तुम मेरा। चलो बेटा जल्दी से तैयार तो हो जाओ।"

विश्वनाथ ने कोई उत्तर नहीं दिया वे चुपचाप स्नानागार में घुस गए।

डाक्टर आनन्द युवकों की भाँति सीटी बजाते हुए रसोईघर में भोजन की व्यवस्था देखने चले गए।

— ११ —

विश्वनाथ के आगमन के साथ डाक्टर आनन्द के घर में एक अद्भुत प्रकार की चेतना, चहल-पहल और उत्साह आ गया। यद्यपि अब भी सारे

काम-काज पुराने नियमों के अनुसार ही होते थे, तथापि उनमें एक नवीनता आ गई थी, एक चञ्चलता आ गई थी, और एक जीवन आ गया था। नित्य की भाँति डाक्टर आनन्द अपने चिकित्सालय जाते थे, किन्तु आजकल उतने अनमने भाव से नहीं, जैसे पहले जाया करते थे। चाय पीने की मेज पर अब लोग कर्त्तव्य पालन के भाव से नहीं बैठते थे, बल्कि नई-नई बातों का रसास्वादन करने के लिए बैठते थे। प्रत्येक विषय पर वार्त्ताएँ होती थीं, बहस-मुबाहिसे होते थे, और अपना-अपना पक्ष सभी खींचते थे। देवराज की हँसी खुशी का भी छोर न मिलता था और सुहासिनी के मुख पर हास्य सदैव नाचता हुआ उसके नाम को सार्थक करता था। सब कोई हार्दिक प्रसन्नता से ओत-प्रोत थे और आजकल दिन कितनी शीघ्रता से बीत जाता था, जब कि वह पहले काटे ही न कटता था। विश्वनाथ भी इस आनन्द समारोह में खो गए थे और उन्हें नैरोबी जाकर अनुसन्धान-कार्य में जुटना भार-स्वरूप लग रहा था। वे प्रतिदिन आने वाले दिन को अपने जाने का दिन निश्चय करते, किन्तु उसके आने पर वह फिर अगले दिन के लिए स्थगित हो जाता। इस प्रकार उनको टालते हुए एक सप्ताह व्यतीत हो गया।

उन्होंने अधिकारियों को अपने आगमन की सूचना दे दी थी और अस्वस्थता का बहाना करके कुछ विलम्ब से पहुँचने के लिए भी लिख दिया था। साधारण रूप से उसकी अवधि भी समाप्त होने को आ रही थी; परन्तु डाक्टर आनन्द की उस अपरिमित प्रसन्नता को आघात पहुँचाने में वे बार-बार संकोच करके मन की बात मन ही में रखकर चुप हो जाते थे। उन्हें ज्ञात था कि वे जाने के प्रश्न पर बहुत आपत्ति उठायेंगे तथा इससे उनके मन का उत्साह टूट जायगा। सुहासिनी को भी मर्माहत पीड़ा होगी; इसको भी वे अनुभव करते थे।

विश्वनाथ के संसर्ग में आकर सुहासिनी में भी एक अद्भुत परिवर्तन आ गया था। वह बड़ी प्रसन्नता से अपने जीवन का कार्यक्रम उन्हें बताती, अपनी महत्त्वाकांक्षायें बड़ी अभिलाषा के साथ उनके सम्मुख रखती और बड़ी साध के साथ भविष्य में पूर्ण होने वाले चित्रों को आँकती थी। विश्वनाथ भी अपनी

सहमति देते और उसकी योजनाओं में यथास्थान आवश्यक परिवर्तनों के सुझाव भी रखते थे, इससे वह दिन पर दिन उनके निकट आती जाती थी।

डाक्टर आनन्द अपनी कल्पना का एक नया संसार बना रहे थे। वे सोचते थे कि यदि सुहासिनी का विवाह विश्वनाथ के साथ सम्पन्न हो जाय तो वे निश्चिन्त होकर स्वर्ग-यात्रा कर सकेंगे। यद्यपि उन्होंने अपने विचारों को न सुहासिनी पर और न विश्वनाथ पर प्रकट किया था, तथापि उन दोनों को जब वे एक साथ बिल्कुल समीप बैठे हुए देखते, तो जोड़ी की मनोहरता लक्ष्य कर मन ही मन खिल जाते। वे इन दिनों भगवान से यही प्रार्थना करते थे कि दोनों परस्पर आकर्षित होकर प्रेम-सूत्र में बँध जायँ।

डाक्टर आनन्द के यहाँ आने के दिन से एक सप्ताह बाद विश्वनाथ ने प्रातःकाल की चाय-पान के अवसर पर कहा—"पिताजी, मैं कल नैरोबी जाने का विचार कर रहा हूँ।"

"क्यों, क्या काम है ? क्यों जाओगे ? नहीं; तुम अब इस बूढ़े को छोड़कर कहीं नहीं जा सकते।" डाक्टर आनन्द ने घबड़ाए हुए स्वर में कहा।

"क्या आप भूल गए पिताजी, कि मैं विष पर अनुसन्धान करने के लिए विश्व-स्वास्थ्य-संघ द्वारा भेजा गया हूँ। जिस काम के लिए मुझे छात्र-वृत्ति मिलती है, वह तो करना ही पड़ेगा।"

"ठीक है, वह अनुसन्धान क्या तुम यहाँ रहकर नहीं कर सकते ? जिन-जिन वस्तुओं, सामग्रियों, उपकरणों, साधनाओं की आवश्यकता हो, तुम यहाँ मँगवा लो। इसी घर के एक कमरे में तुम अपना परीक्षण-गृह बना सकते हो। सुहास ने भी विज्ञान लिया था, वह भी तुम्हारी सहायता एक डिमान्स्ट्रेटर की भाँति करेगी। लाख-दो-लाख पाउण्ड में उत्तम से उत्तम परीक्षण-गृह बन सकता है, और मैं इतना द्रव्य बड़ी आसानी से तुमको इस काम के लिए दे सकता हूँ। क्यों सुहास, तुम्हारा क्या विचार है ?"

"पापा, मैं आपके विचार का अनुमोदन करती हूँ।"

"अच्छा, देवराज, तुम बताओ कि क्या तुम अपने बड़े भैया को अपने पास से दूर जाने दोगे ?"

"नहीं पापा, अब बड़े भैय्या हम लोगों को छोड़कर कहीं नहीं जा सकते।"

"देखो बेटा विश्वनाथ, बहुमत हमारे पक्ष में है। इसलिये इस प्रजातान्त्रिक युग में तुमको बहुमत के सामने सिर झुकाना पड़ेगा। तुम कहीं नहीं जा सकते। यही हमारा निर्णय है।"

"विश्वनाथ ने बड़े असमञ्जस में पड़कर कहा—"लेकिन पिताजी, मुझे तो नैरोबी जाना ही पड़ेगा। मैं भी लिखा-पढ़ी के बन्धनों में आबद्ध हूँ। इसके अतिरिक्त मेरे भविष्य को भी कुछ व्याघात पहुँचेगा। मैं नैरोबी से बराबर आता-जाता रहूँगा। मुझको भी तो इस घर से उतना ही मोह हो गया है, जितना अभी तक केवल अपने घर से था। आप लोगों को सहसा नहीं छोड़ सकता।"

"अब मुआहिदों की शर्तों में बँधने का समय लद गया। वह उन्नीसवीं शताब्दी ही थी जब गुलामी के मुआहिदे लिखे जाते थे। अब तो किसी न्यायालय में गुलामी का मुआहिदा चल नहीं सकता। वह दूसरा जमाना था जब अँग्रेज व्यापारी मनमानी कर लेते थे।"

"आपका कहना ठीक है पिताजी, किन्तु नौकरी के मुआहिदे तो बराबर वैध हैं। मुझे एक विशेष काम के लिये नियुक्त किया गया, और मैंने उसके सम्बन्ध की शर्तें स्वीकार की हैं। यदि मैं उस काम को नहीं करता तो मुझे वह रुपया वापस कर देना होगा जो उस संस्था ने मेरे ऊपर व्यय किया है……।"

"ठीक है, अगर रुपया वापस करने से छुटकारा मिलता है तो बताओ, कितना रुपया वापस करना होगा?"

"ऐसा करना क्या उचित होगा एक सभ्य पुरुष के लिये। आप ही विचारिये।"

"मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ। जब सुहास से तर्क में नहीं जीत सकता, तब तुमसे जीत की कल्पना करना सरासर बेवकूफ़ी होगी। मैं तुम्हारा पितृ-स्थानीय हूँ। उस नाते मेरा तुम्हारे ऊपर कुछ अधिकार है। उसी अधिकार का उपयोग करना चाहता हूँ। क्यों सुहास, ठीक है न?"

"मैं क्या बताऊँ? जैसी आपकी इच्छा।"

"ठीक है, मैं अपनी इच्छानुसार ही काम करूँगा। अच्छा बेटा विश्वनाथ, यह बताओ कि तुम क्या विष-अनुसन्धान का काम यहाँ रहकर नहीं कर सकते?"

"यह कैसे सम्भव है पिता जी। मुझे डाक्टर राबर्ट की संरक्षणता में काम करना है। यह आपको ज्ञात होगा कि डाक्टर राबर्ट अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के व्यक्ति हैं। उन्होंने कई अनुसन्धान अनेक प्रकार के विषों पर किए हैं। "मोम्बा" नामक जाति का सर्प महाविषपूर्ण है। उससे डसा हुआ व्यक्ति दो-एक मिनट में ही अपने प्राण विसर्जित करता है। "पोटेशियम साइनाइड" जैसे कराल विष की भाँति ही "मोम्बा" सर्प का विष होता है। अकेले तो इस गहन विष पर अध्ययन तथा अनुसन्धान संभव नहीं है।"

"डाक्टर राबर्ट हाक से मैं भली-भाँति परिचित हूँ। उनकी एक संस्था को मैंने चार वर्ष पहले बीस हजार पाउण्ड दान किए थे, तब से घनिष्ठता बढ़ गई है। मुझे विश्वास है कि वे मेरे अनुरोध को टालेंगे नहीं। मैं उनसे कहूँगा कि वे तुमको यहीं रहने की अनुमति दे दें, और मैं तुम्हारे लिए सब प्रबन्ध उनकी इच्छानुसार कर दूँगा।"

"इससे लाभ क्या होगा, पिताजी? व्यर्थ में......।"

"तुम कहना चाहते हो कि इसमें व्यर्थ खर्च होगा, किन्तु मैं उसे व्यर्थ नहीं समझता। लाखों पाउण्ड जो मैंने कमा कर इकट्ठा किया है वह सामाजिक स्वास्थ्य के लाभ के लिए व्यय होगा। इससे अच्छा उपयोग और क्या होगा?" यह तो हमारा पुराना आदर्श है। हम सञ्चय करते हैं केवल सार्वजनिक दान के लिए। बिलकुल आधुनिक परीक्षण-यंत्रों को अपने इस नवीन परीक्षणालय में स्थापित करो। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की संस्था चलाओ, और विश्व का कल्याण करो। जगत को अपनी प्रतिभा से चमत्कृत करो और अपने पिता के साथ-साथ मेरे नाम को भी गौरवान्वि करो। तुम्हीं बताओ, इससे अधिक पुण्य-कार्य क्या होगा?"

"यदि आपकी ऐसी इच्छा है तो ऐसी संस्था को बनाने का विचार हम

लोग आगे करेंगे। अभी मुझे सीख तो आने दीजिये। जब मैं संस्था चलाने के योग्य हो जाऊँगा, तब उसको सम्हाल भी सकूँगा।"

"अरे बेटा, कहावत है, 'कोतवाली का चबूतरा कोतवाली सिखाता है।' तुम संस्था तो खोलो, अपने आप सब हो जायगा। हम लोग डाक्टर राबर्ट से परामर्श लेकर काम करेंगे। अब तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं है?"

"अभी यह संभव नहीं है, पिताजी, एक वर्ष तक मुझे उनकी संरक्षणता में काम हर हालत में करना पड़ेगा। उसके पश्चात् यदि आप ऐसी कोई विश्व-कल्याण की संस्था खोलना चाहेंगे; तो मैं सहर्ष उसमें योग दूँगा। इसमें तनिक सन्देह नहीं कि आप मेरे पिता के तुल्य आदरणीय हैं। आपसे वही स्नेह पा रहा हूँ जो उनसे पाता था। इतने दिनों में ही ऐसा स्नेह हो गया है, जैसा अपने निजी घरवालों से है। मैं अपने आपको आपके स्नेह से वञ्चित नहीं कर सकता।" कहते-कहते उसकी वाणी गद्गद हो गई।

वृद्ध डाक्टर आनन्द की आँखों से आनन्दाश्रु निकलने लगे। चश्मे को हटाकर रूमाल में उनको सञ्चित करते हुए कहा—"तुमसे ऐसी ही आशा है बेटा तुम मेरे बुढ़ापे की लकड़ी हो। शारीरिक निर्बलता के साथ-साथ बूढ़ों के मन में भी निर्बलता और दुर्बलता आ जाती है। मेरे बड़े भाग्य से भगवान ने अनायास तुम्हें मेरे पास भेज दिया है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इसमें भी भाई जगन्नाथ के आत्मा की प्रेरणा है। न-मालूम उनका कितना मेरे ऊपर स्नेह था। मैं सात जन्म तक उनसे उऋण नहीं हो सकता। अब तो बस एक यही कामना रह गई है कि सब कुछ तुम तीनों को छोड़कर स्वर्ग-यात्रा करूँ और तुम मेरी अस्थियों को अपने हाथ से जलाकर मुझे मुक्ति प्रदान करो।"

डाक्टर आनन्द की आँखों से अजस्र अश्रुधारा ने सबको उच्छ्वासित कर दिया।

देवराज ने अपनी कुर्सी से उठकर विश्वनाथ के गले में दोनों हाथ डालकर कहा—"बड़े भैय्या, कह दो कि तुम कहीं नहीं जाओगे। देखो, पापा कितना रो रहे हैं।"

विश्वनाथ ने उसको गोद में सस्नेह बैठाते हुए कहा—"मैं कहाँ जा रहा हूँ। जैसे तुम पढ़ने के लिए रोज स्कूल जाते हो, वैसे ही मैं भी पढ़ने के लिए नैरोबी जाऊँगा। वहाँ कुछ दिन रहकर फिर आ जाऊँगा।"

"लेकिन तुम रोज तो घर लौट कर नहीं आओगे; जैसे मैं आ जाता हूँ।"

"हाँ रोज तो नहीं, किन्तु महीने में एक बार तो आया ही करूँगा!"

"यही बात तो पापा नहीं चाहते।"

"अच्छा, महीने में दो बार आऊँगा।"

"यह भी मन में नहीं बैठती। तुम कहीं न जाओ। रोज हमारे साथ रहो।"

"अच्छा, तुम भी स्कूल न जाया करो।"

"मेरे स्कूल जाने में तो कोई बाधा नहीं पड़ती। आठ बजे जाता हूँ और दो बजे आ जाता हूँ। लेकिन तुम तो जाओगे, महीने भर के लिए।"

"क्या तुम्हारी दीदी पढ़ने के लिए विलायत नहीं गई थीं?"

"गई थी। लेकिन उन दिनों तो मामा जीवित थीं। मैं भी छोटा था और उनका जाना किसी को खला नहीं था।"

"वैसे ही मैं भी नैरोबी तक जाऊँगा। जानते हो, नैरोबी यहाँ से बहुत समीप है। एक रविवार को तुम चले आया करना, और दूसरे रविवार को मैं चला आया करूँगा। बस, अब तो ठीक है।"

"सुहासिनी बड़े मनोयोग से उनकी बातें सुन रही थी। विश्वनाथ का यह प्रस्ताव उसे कुछ प्रिय लगा। उसने हँसकर कहा—"चलो, दोनों भाइयों में समझौता हो गया।"

"कैसा समझौता?" डाक्टर आनन्द ने पूछा।

"बड़े भैया कहते हैं कि नैरोबी से एक रविवार को मैं आऊँगा और दूसरे रविवार को देवराज जाया करेगा।"

"देवराज, यह ठीक नहीं। तुम कहो कि जहाँ तुम रहोगे वहीं मैं भी रहूँगा।"

"हाँ पापा, मैं तो यही कहना चाहता था, मगर दीदी ने बीच ही में फैसला कर दिया।"

"तुम्हारी दीदी भी यहीं कहती हैं, केवल तुम्हें चिढ़ाने के लिए ऐसा कह दिया ।"

"हाँ बड़े भैया, जहाँ तुम रहोगे, वहीं हम सब रहेंगे। क्यों ठीक है न पापा ।"

"बिल्कुल। अगर विश्वनाथ हमारे साथ रहना ठीक नहीं समझते या यहाँ हम लोगों को छोड़कर जाने की जिद करते हैं, तब हम लोग नैरोबी चलकर रहेंगे। इसमें तो कोई आपत्ति नहीं है तुमको ?"

"यह तो मेरे लिए बड़े सुख की बात होगी, पिता जी। क्या आप सोचते हैं कि आपके साथ रहने में मुझे कोई आपत्ति है? अथवा मैं किसी अन्य कारण से जाना चाहता हूँ ।"

"नहीं, मैं ऐसा नहीं सोचता। सिर्फ यह सोचता हूँ कि जब तुम्हारा नैरोबी जाना नितान्त आवश्यक है तब हम सभी क्यों न चलकर कुछ दिनों तक नैरोबी में रहें। क्यों सुहास, तुम्हारा क्या विचार है ?"

"मुझे तो इसमें कोई रुकावट नहीं देख पड़ती। मोम्बासा में रहते-रहते जी ऊब गया है। अब अगर कुछ दिनों तक नैरोबी में रहें तो ठीक ही रहेगा। बड़े भैया का भी साथ न छूटेगा और हमारी जलवायु का भी परिवर्तन हो जायगा। मैं बड़ी प्रसन्नता से आपके विचार का अनुमोदन करती हूँ ।"

"बस यही सबसे उत्तम है ।"

"लेकिन पिता जी, इसमें कितनी परेशानी आप सबको उठानी पड़ेगी। देवराज की पढ़ाई में व्याघात पहुँचेगा आपकी प्रैक्टिस छूट जायगी और जमी-जमायी गृहस्थी बिखर जायगी ।"

"जितनी बातें तुमने बताई; उसमें एक न होगी। देखो, देवराज नैरोबी के किसी स्कूल में पढ़ेगा, मेरी प्रैक्टिस जैसे यहाँ चलती है, वैसी वहाँ चलेगी। मेरे पास नैरोबी के निवासी भी चिकित्सा कराने यहाँ आया करते हैं। जब उनको मालूम होगा कि मैं नैरोबी आ गया हूँ तो उनको बड़ी प्रसन्नता होगी। यदि मान लो कि मुझे कुछ आर्थिक हानि उठानी भी पड़ी, तो मैं उसे विशेष

महत्व नहीं देता। ईश्वर की कृपा से मैंने बहुत कमा लिया है। अब धन बटोरने की साध नहीं, उसके खर्च करने की है। घर को बन्द कर चौकीदार के सिपुर्द कर देंगे। उसकी व्यवस्था में कोई हेर-फेर नहीं होगा। तुम्हारे सोचने-विचारने या दुखी होने के लिए कोई कारण नहीं है।"

"मेरा भी यही विचार है पापा, हम सबको जरूर नैरोबी चलना चाहिए। इससे अच्छा अवसर हाथ नहीं आयेगा।"

"जब सुहास की भी यही इच्छा है, तब आगा-पीछा करने की कोई बात नहीं है। बस बेटा विश्वनाथ, अब हम सब लोग एक साथ नैरोबी जायगे। मैं आज ही तार द्वारा अपने एक मित्र को अपने सपरिवार पहुँचने की सूचना देता हूँ। वे एक बँगले को किराए पर ले लेंगे और सब उचित प्रबन्ध कर देंगे। मेरा अनुमान है कि दो चार दिनों में ही सब ठीक हो जायगा। प्रबन्ध होते ही हम लोग चल देंगे। क्यों सुहास ठीक है न?"

"बिल्कुल। मैं भी आज से वह सामान बाँधना शुरू कर दूँगी, जिसे ले जाना हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है। पाँच मिनट की पूर्व सूचना में ही आप हमको यात्रा के लिए तैयार पाइएगा।"

डाक्टर आनन्द पुलकित हो गए। वे बालकों की सी उत्फुल्लता के साथ अपने चिकित्सालय जाने के लिए उठकर खड़े हो गए। इसी समय देवराज को लेने के लिए मोटर आ गई। हार्न सुनकर देवराज भी अपने पिता की भाँति नाचता हुआ चला गया।

सुहासिनी और विश्वनाथ चाय की टेबुल पर बैठे रहे।

— १२ —

देवराज ने जब नैरोबी के लिए रेल-यात्रा आरंभ की तब वह हर्ष से नाचने लगा। बाल्य-सुलभ उत्कण्ठा तथा जिज्ञासा से उसने सबको अपने प्रश्नों की झड़ी से उकता किया। किन्तु इसमें विश्वनाथ को रस मिल रहा था। यद्यपि सुहासिनी उसे बार-बार डाँटती थी, तथापि वह अनेकानेक प्रश्नों का पूछना नहीं

छोड़ता था। डाक्टर आनन्द के भी उत्साह की सीमा नहीं थी। उस उत्साह-सागर में डूबते-उतराते हुए कभी-कभी उन्हें अपने विगत यौवन के दिन, जब वे कुली...प्रथा के शर्त्तबन्द मजदूर होकर नैरोबी पहले-पहल गए थे, याद आ रहे थे। वे उस दिन कितने मुमूर्ष थे और आज कितनी आसक्ति उनकी जीवन के प्रति थी। इस दिन की कल्पना भी वे उस समय के किसी स्वप्न में न कर सकते थे।

उनको मौन देखकर विश्वनाथ ने पूछा—"पिता जी, क्या सोच रहे हैं?"

"सोच रहा हूँ बेटा, अपने उन दिनों को, जब मैंने पहले-पहल उस नगर की यात्रा की थी। एक बड़ी लम्बी गाड़ी थी, जिसमें बैठने के लिए बैन्चें नहीं थीं, केवल फर्श था, जैसा पशुओं के ले जाने के लिए होता है। पशुओं की ही भाँति हमें रस्सी से बाँध रखा गया था, जिसमें हम लोग भाग न सकें। रेल के डिब्बे के दोनों तरफ दो-दो मजबूत गोरे हण्टरों को बार-बार फटकारते हुए स्टूलों पर बैठे थे। उनकी कमर में एक तरफ लम्बी-लम्बी किरचें लटक रही थीं और दूसरी तरफ पिस्तौलें। हमको आपस में बोलने, बात करने की मनाही थी। शारीरिक वेगों को भी शमन करने की आजादी नहीं थी। यदि मार्ग के बीच में किसी को उसकी आवश्यकता अनुभव हुई तो उसे दबाने के लिए मजबूर होना पड़ता था। और यदि वह भी संभव न हुआ और मूत्र या मल-त्याग हो गया तो उसका दण्ड दूसरों को तो भोगना ही पड़ता था, उस अभागे को बे-मौत मरना पड़ता था। हन्टरों के आघात से उसका सारा शरीर लोहू—लुहान हो जाता था। कभी-कभी अनेक दुर्दान्तों ने उसे चाटने के लिए भी मजबूर किया; ऐसी कथाएँ भी सुनने में आई थीं। इसलिए यात्रा के पहले लोग खाते-पीते न थे। कितना कष्टकर वह जीवन था। पशुओं को तो इन वेगों के शमन करने की स्वतंत्रता होती है, परन्तु मनुष्य कहे जाने वाले पशु को इससे वञ्चित कर दिया गया था।"

"परन्तु आप तो अनेक होते थे; और वे थोड़े से, आप लोग बगावत क्यों नहीं करते थे।"

"बगावत! इसका विचार ही न आता था। उन्नीसवीं शताब्दी का भारत

प्रबल भाग्यवादी था। १८५७ के विद्रोह दमन ने उसे भाग्यवादी बनने के लिए मजबूर कर दिया था। जब मनुष्य की शक्ति का ह्रास हो जाता है तब वह अपने कार्य-कलाप को एक अनजान शक्ति के आश्रय में छोड़ देता है। जिन परिस्थितियों के वश में होकर वह जीवन में आगे बढ़ता है, उसी को 'भाग्य' अथवा 'कर्म विपाक' मानने के लिए विवश हो जाता है।"

"सन्, १८५७ का विद्रोह-दमन बड़ी निरंकुशता के साथ हुआ था?"

"उसके बराबर का उदाहरण इतिहास में नहीं मिलता, बेटा! वैसा शक्ति का नग्न ताण्डव अन्यत्र देखने-सुनने या पढ़ने में नहीं आता। बस्तियों में चारों दिशाओं से आग लगाकर भागते हुए निरपराध बच्चों, बूढ़ों और स्त्रियों का शिकार खेला जाता था। इतने जवानों को फाँसी के फन्दों में लटकाया गया था कि भारत—जैसे हरे-भरे वृक्षों के देश में उनके लटकाने के लिए उनकी कमी पड़ गई थी। एक-एक पेड़ में दस-दस, बारह-बारह आदमी लटकाए जाते थे और उनके कंकाल महीनों तक लटकते रहते थे। पुरानी अथवा उस समय की पीढ़ी को नाश करके ब्रिटिश सरकार अपनी सत्ता उसी प्रकार स्थापित करना चाहती थी, जैसे वह आजकल अफ्रीका में, विशेषकर केनिया में कर रही है।"

"केनिया में? आप क्या कहते हैं पिताजी?"

"क्या तुमने अपने देश के समाचार-पत्रों में 'माओ माओ' आन्दोलन का नाम नहीं सुना। सेन्सर की कड़ी कार्रवाई के बावजूद अधूरी या छुट-पुट खबरें तो बाहर पहुँच ही जाती होंगी?"

" 'माओ-माओ' आन्दोलन के सम्बन्ध में कुछ खबरें जरूर प्रकाशित हुई हैं, लेकिन हमको अर्थात भारतीयों को, इसकी वास्तविकता का ज्ञान कुछ भी नहीं है।"

"बेटा, ब्रिटिश सरकार की कूटनीति को समझना टेढ़ी खीर है। कभी आग लगाकर पानी को दौड़ते हैं, कभी आग लगाकर जमालों की तरह दूर खड़े हो जाते हैं। और कभी पेट्रोल छिड़क कर ऐसी प्रचण्ड आग लगाते हैं कि सबका सब स्वाहा हो जाता है। भेद-नीति उत्पन्न कर कभी एक का पक्ष लेते हैं, कभी दूसरे का पक्ष लेते हैं और कभी दोनों को कमजोर करने के बाद उनको निर्मूल

कर देते हैं और सिफत यह कि प्रचार ऐसा करेंगे जिसमें न्याय का तराजू उनकी ओर ही झुका रहे। कभी अकेले जूझेंगे नहीं, दूसरों को अपना साथी अवश्य बना लेंगे, और दम—दिलासा देकर अपने साथी का नाश ही करवा देंगे। न इनकी दोस्ती ही अच्छी है और न दुश्मनी। इनका बहिष्कार करने में ही किसी की भलाई हो सकती है।"

"शायद 'माओ-माओ' आन्दोलन की मुख्य आधार-शिला स्वतन्त्रता प्राप्त करना है।"

"हाँ, वह तो है ही। सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आन्दोलनों के समूह का नाम 'माओ-माओ' आन्दोलन है। यहाँ के आदिम निवासियों को जब तक उनके उत्तरोत्तर बसने के लिए जंगलों में भूमि मिलती गई, वे इन श्वेत डाकुओं को अपनी भूमि सौंपकर जंगलों के अन्तप्रदेशों में घुसते चले गए। किन्तु स्वार्थी मनुष्य की लिप्सा की इति कभी नहीं होती। जब अगम्य जंगलों में भी उन्हें जाकर घेरा गया तो जानते हो, मरती हुई चींटी भी अपनी भरपूर शक्ति से एक बार तो काट ही लेती है। अफ्रीका की भूमि प्राकृतिक द्रव्यों की भंडार है। इसकी भूमि के गहवरों में अनन्त रत्न शीशा सोना, चाँदी, ताँबा, सीसा और लोहा दबा पड़ा है। समस्त योरोप की वर्त्तमान समृद्धता का एकमात्र आधार अफ्रीका के उपनिवेश ही हैं। और इसीलिए वे इस महाद्वीप को बिल्कुल अपना बना लेना चाहते हैं। यहाँ के निवासियों को वे इस प्रकार नष्ट कर देना चाहते हैं कि उनका अस्तित्व यदि कहीं मिले तो वह किसी पुराने इतिहास के फटे पृष्ठों में ही मिल सके। तुम जानते हो, दक्षिण अफ्रीका खुल्लम-खुल्ला रंगवाद का प्रचार कर रहा है। वह काली जातियों को समूल नष्ट करने पर कमर कसे हुए ससार के राष्ट्रसंघ को चुनौती दे रहा है। यह क्यों?"

"क्योंकि वर्त्तमान संयुक्त राष्ट्रसंघ में श्वेता का बोलबाला है। उनमें से जो योरोप अथवा उत्तरी या दक्षिणी अमरीका के राष्ट्र हैं, सभी गोरे हैं, और वे अपने रंगवालों का साथ लुक-छिपकर बराबर देते हैं।"

"तुम्हारा अनुमान ठीक है। एक गोरा केवल गोरे का पक्ष ही अपने मनः

और कर्म से लेगा, हाँ वचनों में वह दरिद्रता कभी प्रदर्शित नहीं करेगा। मौखिक सहानुभूति प्रदर्शित करने के अतिरिक्त अथवा उनकी राजनीतिक अथवा सामाजिक स्थिति को उन्नतिशील बनाने का दावा करता हुआ कुछ ठोस काम कभी नहीं करेगा। उसके कोरे आदर्शवाद के नीचे यदि तुम देख सको तो वहाँ पर घोर घृणा, विकट उपेक्षा, और कृतान्त की कराल योजनाओं को देखोगे। संसार के सम्मुख वह 'मानव समानता' के झंडे को ऊँचा तो करता है, किन्तु उसके नीचे वह गुप्त अभिसन्धियाँ बनाता है, उसी सिद्धान्त के दमन के लिए, उसकी क्रूरता के साथ हत्या करने के लिए। मौखिक नारों की चकाचौंध में बिचारे भोले-भाले मानव कहे जाने वाले पशु को दिग्भ्रम हो जाता है और वह मृग-मरीचिका में फँसा हुआ दौड़-दौड़कर अपने प्राण या तो खो देता है, या फिर उन्हीं के दूसरे साथियो द्वारा नष्ट कर दिया जाता है।"

"तब यह 'विश्व राष्ट्रसंघ' केवल एक मखौल है, अथवा श्वेत जातियों के स्वार्थ-साधन का एक मण्डल है?"

"बेटा किसी भी संस्था की स्थापना नैतिक आधारों पर ही की जाती है। मनुष्य जब महान् संकट या विपत्ति से घिरा हुआ होता है, और उसकी शारीरिक शक्ति क्षीण अथवा पंगु हो जाती है, तब वह दूसरों की सहायता प्राप्त करने के लिये सत् विचारों का स्वर्णिम जाल बिछाकर संसार के समक्ष आता है। उस समय उसके स्वर में सच्चाई होती है, क्योंकि वह स्वयं निःशक्त हो जाता है। सच्चाई सहज ही दूसरों को आकर्षित करती है और वे उसमें योग देने लगते हैं। यह सच्चाई केवल संकट-काल तक रहा करती है। जब संकट का परिहार हो जाता है, तब उसकी स्वार्थ-प्रवृत्ति जो विपन्नावस्था में मृतप्राय हो गई थी, चेतनता प्राप्त करने लगती है और तब दुरभिसन्धियों का, कूटनीति का जन्म होता है और वे उसके द्वारा अपने-अपने स्वार्थों की पूर्ति में, उन सत् उद्देश्यों की आड़ में बड़ी चतुरता से लग जाते हैं। उस समय संस्था पर जनता का विश्वास दूर होने लगता है, किन्तु वे अपनी आसुरिक शक्ति के बूते उस पर कोई ध्यान नहीं देते। देखो, जब एक विपन्न मनुष्य किसी महाजन से रुपया उधार लेने के लिए जाता है, तब उसके मन का यह सच्चा भाव होता है कि

यदि उसे ऋण मिल जाय तो वह अपनी सारी आवश्यकताओं को पृष्ठभूमि में रखकर सबसे पहले वह उक्त ऋण को चुकाएगा, परन्तु जहाँ उसका संकट टल गया, या उसकी स्वार्थ-पूर्ति हो गई, वह अपनी उन आवश्यकताओं की पूर्ति को मुख्य मानने लगता है; जिनको वह पहले पृष्ठभूमि में डालने का निश्चय कर चुका था। ऋण चुकाने को वह गौण बना लेता है, फिर सारी तस्वीर उलटी हो जाती है। ऋण में दिए गए धन को प्राप्त करने के लिए बेचारे महाजन को दूसरे उपायों का सहारा लेना पड़ता है।"

"तब इसका अर्थ यह है कि 'संयुक्त विश्व संघ' की स्थापना सदुद्देश्यों को लेकर हुई थी और उससे मानव-जाति का कल्याण हो सकता है।"

"हाँ, किन्तु इसके रास्ते में एक बहुत बड़ा 'यदि' जो उलझा हुआ है।"

"वह क्या?"

"वह 'यदि' यह है कि उसके सदस्यों का स्वार्थ रहित होना और किसी अनीति पर किसी प्रकार का समझौता न करना। यदि किसी निकटतम मित्र-राष्ट्र द्वारा भी कोई अनीति होती है, तो उसको उसी कट्टरता से निर्मूल करना चाहिए जितनी एक शत्रु राष्ट्र द्वारा की गई अनीति को।" संक्षेप में यह कि उन सारे उद्देश्यों का पालन, मन, वचन, कर्म से सभी को करना चाहिए। सत्य को किसी भाँति न दबाया जाय और समानता का भाव केवल मौखिक न होकर क्रियात्मक होना चाहिए। यह तभी संभव है जब उसकी आधार शिला अहिंसा पर रखी जाय अहिंसा के सम्बन्ध में विविध मनुष्यों की विविध धारणाएँ हैं, जिन्हें पश्चिम दूसरे रूप में समझता है। अहिंसा का अर्थ बहुत व्यापक है, वह हमारे हर एक कार्य को परिचालित करती है और वह है निस्वार्थ होना। मानसिक वाचिक और धार्मिक हिंसा तभी होगी जब मनुष्य स्वार्थ की भावना से अभिभूत हो जाता है। मानवता का असली अस्तित्व तो स्वार्थ की भावना के ऊपर ही उठकर निखरता है। स्वार्थ की भावना पशुत्व का द्योतक है। जब तक मानव अपने पशुत्व से छुटकारा नहीं पाता, तब तक विग्रह, युद्ध और अशान्ति जीवित रहेंगे। उनसे उनको कभी मुक्ति नहीं मिलेगी।"

"किन्तु पिताजी, यह तो एक दार्शनिक दृष्टिकोण है, और वह कार्य-साध्य नहीं है।"

"इसलिये तो अहिंसा के पहले सत्य का नाम लिया जाता है। सत्य के पालन से ही मानव सच्चे अर्थ में अहिंसक होगा। और सत्य वह है, जब मानव विचारने लगे कि जो बातें मेरे लिये ठीक हैं; उपयुक्त हैं; लाभ या हानि-प्रद हैं, दूसरों के लिए वैसी ही, ठीक वैसी ही हैं। अपने ही समान दूसरों के हित-अनहित की भावना रखना ही सत्य है। सत्य सदैव स्वार्थ-रहित होगा और स्वार्थ-रहित सत्य ही अहिंसा की आधार-भूमि है। सत्य और अहिंसा की कसौटी पर जो भी विचार कसा जायगा, उसमें लेशमात्र स्वार्थ होने से वह अवश्य शत-प्रतिशत टंच या खरा न बैठेगा।"

"यह तो आप महान तपस्या का रास्ता बता रहे हैं।"

अपने स्वार्थ को मनुष्य बिना तपस्या के नहीं छोड़ सकता। स्वार्थ का जन्म भय से होता है। भय का परिहार तब संभव है, जब मनुष्य का विश्वास, निजी साधनों, अपनी निजी शक्ति से हट जाय। जब वह अपनी शक्ति दूसरों की शक्ति में ढूँढ़ता है, जब वह अपना अस्तित्व दूसरों के अस्तित्व में पाता है, तब उसको निजी साधनों, निजी शक्ति की आवश्यकता महसूस नहीं होती और तब उसका स्वार्थ दूसरों के स्वार्थ में समा जाता है।"

"पिता जी, क्या ऐसा होना संभव है?"

"असंभव कुछ नहीं है, बेटा। मनुष्य की शक्ति असीम है। अभी तक मानव ने अपनी शक्ति का उपयोग केवल अपने स्वार्थ-साधन में किया है अथवा दूसरे शब्दों में वह उसको बहिर्मुखी बनाए है। यदि उसकी वही शक्ति अन्तर्मुखी हो जाय तो अणु-बम की भाँति उसकी विचार-प्रणाली में विस्फोट होगा जिसमें सभी प्रकार की कलुषिता नष्ट हो जायगी। मानव ने अभी तक केवल अपने बाहरी रूप को ही देखा है, अन्तररूप को नहीं। प्राचीन भारत ने अवश्य ही उसके अन्तररूप की छटा देख पाई थी, किन्तु स्वार्थ-वाद के सिद्धान्त फिर प्रबल हो गए और वह ज्योति मलिन हो गई। उसी भावना

उसी विचार को पुनः प्रज्ज्वलित करने के लिए भगवान की ओर से एक शक्ति में अवतरित हुई और उसने भारत की पुरानी थाती को अपनी नई थाती में ससार को जीवित रहने के लिए नव-संदेश दिया। उन दो महान् सिद्धान्तों को क्रियात्मक रूप देकर उसने भारत को एक महान् पशुत्व शक्ति से पूरित राष्ट्र के प्रबल पंजे से उद्धार कर उनकी सार्थकता उदाहरण रूप में रख दी। अब उनको विश्व में परिचालित करने का भार उसके अनुयाइयों पर है, और यथार्थ में जब विश्व इस सिद्धान्त को ग्रहण करेगा, तभी उसका कल्याण होगा अन्यथा नहीं।"

इसी समय देवराज जो डिब्बे की खिड़की के बाहर झाँक रहा था, दौड़कर आया और डाक्टर आनन्द के गले में झूलते हुए बोला—"पापा, वह देखो, नैरोबी आ गया।"

डाक्टर आनन्द के विचारों की धारा टूटी और उन्होंने भी बाहर झाँकते हुए कहा—"अच्छा, बातों ही बातों में इतना समय बीत गया। सुहास, अब हमको अपना बिखरा हुआ सामान एकत्रित कर लेना है।"

सुहासिनी ने कहा—"हाँ पिताजी।" और वह सामान इकट्ठा करने में संलग्न हो गई।

— १३ —

डाक्टर राबर्ट हाक ने विश्वनाथ की ओर बड़ी सूक्ष्मता के साथ देखते हुए पूछा—"आपका जहाज, जिससे आपने भारत से यात्रा की थी, दो सप्ताह पूर्व आया था। आपके साथ काम करने वाली छात्रा यहाँ आ गई और उसने अकेले ही अनुसंधान-कार्य आरम्भ कर दिया है। यहाँ तक लाने के लिए सरकार ने सब प्रबन्ध कर दिया था, किन्तु आपने उसका उपयोग न किया, और न जाने कहाँ गायब हो गये? क्या आप बताएँगे कि इतने दिनों तक आप कहाँ रहे?"

विश्वनाथ ने अपने सहज स्वर में उत्तर दिया—"मेरे पिता के मित्र

मोम्बासा में रहते हैं। उनसे मिलने के लिए उनके यहाँ चला गया था। उनका प्रेम और आग्रह देखकर कुछ दिन ठहर जाना पड़ा और इसके अतिरिक्त प्रथम जहाज-यात्रा से मैं कुछ शिथिल भी हो गया था। इसलिए विश्राम लेना आवश्यक था। मैं इसकी सूचना तो दे चुका था।"

"हाँ, सूचना मिल जाने से हम कुछ अधिक चिंतित नहीं हुए। आजकल यहाँ "माओ-माओ' आंदोलन चल रहा है, और इस आन्दोलन की गुप्त शाखायें देश-भर में फैली हुई हैं। इनके सदस्य विदेशियों को, विशेषकर भारतीयों को अपना विकट शत्रु समझते हैं और इक्का-दुक्का पाकर वे हत्या भी कर देते हैं। आप जब समय पर नैरोबी नहीं पहुँचे, तब हमें चिन्ता हुई, और सरकार ने खोज करना शुरू कर दिया। इतना तो पता चल गया था कि आपने 'प्रकाश-रेखा' से यात्रा की और मोम्बासा पहुँच गए। आपका सामान कुछ घंटों तक कस्टम के दफ्तर में पड़ा रहा और आप एक वृद्ध के साथ आकर उसे ले गये थे। उस वृद्ध का पता लगाने पर मालूम हुआ कि वे मोम्बासा के डाक्टर आनन्द थे।"

"हाँ, हाँ, मैं उन्हीं के यहाँ था। वही मेरे पिता के मित्र हैं।"

"वे तो कुली-प्रथा में लाए गए मजदूर हैं, जिन्होंने उस प्रथा के टूट जाने पर यहाँ बसकर अपना व्यवसाय आरम्भ कर दिया। ईश्वर की कृपा से उन्होंने धन और यश दोनों उपार्जित किए। वे दानी भी हैं, हमारी संस्था को उन्होंने एक बार बीस हजार पाउण्ड दान किए थे।"

"जी हाँ, मैं उनसे यह बात सुन चुका हूँ। उनका अनुरोध था कि मैं अनुसंधान कार्य उनकी अनुसंधान-शाला में करूँ, जिसको वे स्थापित करना चाहते हैं।"

"अच्छा, उनका यह विचार है। हमारी अनुसंधान-शाला को द्रव्य की अत्यन्त आवश्यकता है। इनकी सहायता यदि हमें प्राप्त हो जाय, तो विश्व का बहुत कल्याण होगा। यदि उनकी इच्छा होगी तो हम अपनी इस अनुसंधानशाला का नामकरण उनके नाम पर कर देंगे। नई अनुसंधानशाला से कोई विशेष

लाभ नहीं है । इसी को विस्तृत करने से अनेक उद्देश्यों की पूर्ति संभव है ।"

"जी हाँ, मेरा भी कुछ ऐसा ही विचार है। अभी तो कुछ समय के लिए उन्होंने अपने विचार को स्थगित कर दिया है।"

"ठीक है । उनसे शीघ्र ही मिलूँगा ।"

"वे मेरे साथ-साथ नैरोबी आ गए हैं, और यहाँ एक बँगला लेकर ठहरे हैं ।"

"क्या डाक्टर नैरोबी आए हैं। यह तो बड़ा सुखद समाचार है। आपको क्या उनका पता मालूम है ।"

"जी हाँ, मैं तो अभी उनके यहाँ ही रहता हूँ। जब मोम्बासा में रहकर मैंने अनुसन्धान करना स्वीकार नहीं किया, तो वे मेरे साथ रहने के लिए यहाँ चले आए ।"

"अच्छा, आपसे उनका इतना स्नेह है ?"

"जी हाँ, वे मुझे अपनी सन्तान के समान ही स्नेह करते हैं। मेरे पिता और उनमें बहुत घनिष्ठता थी ।"

"यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप डाक्टर आनन्द के इतने निकट हैं। आज शाम को ही मैं आपके साथ चलूँगा ।"

इसी समय उनके कमरे के द्वार पर एक रमणी आकर ठिठक गई और डाक्टर आनन्द को वार्तालाप में व्यस्त देखकर उलटे पाँव जाने लगी। विश्वनाथ की पीठ द्वार की ओर थी, इसलिए वह आगन्तुक को देखने में समर्थ नहीं था। डाक्टर हाक का ध्यान बँटते देखकर उन्होंने भी मुड़कर उसको देखने की चेष्टा की; परन्तु वायु में लहलहाते हुए साड़ी के छोर को देखने के अतिरिक्त वे उसको पहनने वाले व्यक्ति को न देख सके

आगन्तुक को बुलाते हुए डाक्टर हाक ने कहा—"आइए, आपके लौटने की कोई जरूरत नहीं है । मैं व्यस्त नहीं हूँ ।"

उस रमणी ने वहीं दूर से मिष्ठस्वर में उत्तर दिया—"ऐसा कोई जरूरी काम भी नहीं है । आप बात कर लीजिए, पीछे जाऊँगी ।"

"नहीं, मैं बिल्कुल व्यस्त नहीं हूँ । आप आ जाइए, मुझे कुछ काम है ।"

गमनोद्यत रमणी के उठे हुए पैर रुक गए। क्षण-भर रुक कर उसने अपनी ठिठक दूर की, और ऊँची एड़ी के जूते से फर्श को खटखटाती हुई कमरे में प्रविष्ट हुई। इस समय उसको देखने की चेष्टा करना असभ्यता होगी। विश्वनाथ उसी प्रकार निर्लिप्त भाव से बैठे रहे। युवती के प्रवेश करते ही डाक्टर हाक का कमरा सुगन्ध से भर गया।

उस सुरभि का आनन्द लेते हुए डाक्टर हाक ने मधुर हास्य के साथ कहा—"आइए, आपका परिचय करवा दूँ।"

युवती आकर मेज के समीप खड़ी हो गई। विश्वनाथ और उसके नेत्र मिले। दोनों ने एक-दूसरे को पहचाना। विश्वनाथ के मुख पर एक मन्द हास्य खेलने लगा। युवती, जो वस्तुतः कान्ति थी, अपने जहाज के साथी को देखकर क्षण-भर के लिए ठिठकी और उल्टे पैरों लौटकर शीघ्रता से कमरे के बाहर चली गई। क्षण-भर के लिए हाक स्तम्भित रह गए। उन्हें उसका व्यवहार समझ में नहीं आया। क्षिप्रगति से जाती हुई कान्ति के जूतों का खटखट शब्द अब भी सुनाई पड़ता था।

डाक्टर हाक ने तुरन्त पलट कर विश्वनाथ की ओर गंभीरता के साथ देखा। वे अपनी उस मुस्कान को छिपाकर कुछ गंभीर होकर गुंडली मारे हुए सर्पाकार पत्र चाप से खेल रहे थे।

डाक्टर हाक ने गंभीर वाणी में पूछा—"अभी जो कुछ मैंने देखा, उससे मालूम होता है कि मिस कान्ति आपको जानती हैं; और आपने उनके साथ कुछ अभद्रता की है।"

उनके इस आरोप से उन्हें बरबस हँसी आ गई और कुछ उत्तर न देकर वे चुप रहे।

उनको हँसते देखकर डाक्टर हाक कुछ चिढ़ गए, उन्हें विश्वास हो गया कि वे अवश्य अपराधी हैं।

उन्होंने आवेश के साथ पूछा—"मैं जानना चाहूँगा कि आपने उनके साथ कौन अभद्रता की है?"

विश्वनाथ ने सहज स्वर में उत्तर दिया—"मैं मिस कान्ति से परिचित अवश्य हूँ। मेरे साथ ही उन्होंने भारत से यात्रा की है। रास्ते में भयंकर तूफान आया था, और उसमें मैंने यथाशक्ति उनकी सहायता की थी। मैं तो थोड़ा-बहुत उनके विषय में जानता हूँ, किन्तु मेरे विषय में वे कुछ नहीं जानतीं। जहाज में ही वे न-मालूम सहसा क्यों रुष्ट हो गईं, और जब मैं जहाज के कप्तान के साथ उनकी बीमारी में सहायता के लिए गया, क्योंकि उनका कमरा मेरे कमरे से बिलकुल सटा हुआ था तो उन्होंने मुझे अपने सामने आने से मना कर दिया। इसका कारण आज तक मुझे अज्ञात है। डाक्टर साहब, मैं विषेष रूप से आपका आभारी हूँगा यदि आप उनसे मेरे अपराध का पता लगाकर मुझे सूचित करें तो मैं उनसे क्षमा-याचना कर सकूँ।"

"इसके अतिरिक्त आपकी ओर से कोई अभद्रता तो नहीं हुई?"

"मेरी ओर से और मेरी जानकारी में कोई अभद्रता नहीं हुई। एक छोटी-सी भूल कप्तान से अवश्य हो गई थी, जिसके लिए मैं किसी प्रकार दोषी नहीं ठहराया जा सकता।"

"कप्तान से क्या भूल हुई?" डाक्टर हाक को कुछ सूत्र मिलने की आशा हुई।

"बात यह है कि तूफान वाली रात्रि भर हम दोनों अन्य यात्रियों के साथ नृत्य-गृह में बेहोश हो गए थे और उसी अवस्था में बहुत देर तक पड़े रहे। तूफान लगभग अर्द्ध-रात्रि के समीप आया था और उषाकाल तक रहा था और हम लोग गिर पड़े थे, और ढुलकते-ढुलकते एक दूसरे के पास आ गये थे। उसी दशा में आरकेस्ट्रा का कोई वाद्य-यन्त्र भी लुढ़कता हुआ हमारे दोनों के सिरों के पास आकर जहाज की डगमगाहट के साथ प्रहार करने लगा। उसकी चोट से हम दोनों बेहोश हो गए। जब चेतना लौटी तब प्रातःकाल हो रहा था। पहले मैं उठकर बैठा, और मिस कान्ति को उठाने में सहारा देने का यत्न किया, किन्तु उन्होंने पहले उसे अस्वीकार कर दिया, और स्वयं उठने की चेष्टा करने लगीं किन्तु वे उसमें कृतकार्य न हो सकीं और बड़ी अनिच्छा से, ऐसा

मुझे मालूम हुआ, मेरी सहायता से उठीं। नृत्य-गृह से हम लोग अपने-अपने कमरों की ओर चले, किन्तु मिस कान्ति के पैर लड़खड़ा रहे थे। मैंने पुनः उन्हें सहायता देने की याचना की, किन्तु पहले वह अस्वीकृत होकर नितान्त अवशता की हालत में स्वीकृत हुई और मैं उन्हें ऊपर डेक पर ले आया। प्रकृति का अब वह शान्त रूप देखकर हम दोनों उसके सौंदर्य की चर्चा करने लगे।"

"आप सत्य-सत्य वर्णन कर रहे हैं न ?" डाक्टर हाक ने बात काटते हुए पूछा, जब उन्हें कोई उपयुक्त सूत्र मिलते हुए दिखाई न दिया।

"आप विश्वास कीजिए, मैं एक शब्द भी असत्य नहीं कह रहा हूँ। इसके अतिरिक्त आप स्वयं मिस कान्ति से सब हाल विस्तारपूर्वक जान लीजियेगा।"

"हाँ, हाँ, वह तो मैं पूछूँगा ही, मैं अनुशासन का घोर पक्षपाती हूँ, बल्कि यही मेरी कमजोरी है। मैं अपने छात्रों में किञ्चित अनुशासनहीनता सहन नहीं कर सकता। विज्ञान तो अनुशासित व्यवस्था का स्पष्टीकरण है। इसीलिए मैं इतनी पूँछ-ताँछ कर रहा हूँ, क्योंकि बिना किसी गुरुतर अपराध के कोई सम्भ्रान्त रमणी इस प्रकार किसी को देखकर भाग नहीं सकती।"

"डाक्टर साहब, मैं स्वयं चकित हूँ, उनकी रुष्टता का जो कुछ अनुमान मैं कर सका हूँ, वह शायद इतना ही हो सकता है, कि उसी समय जब हम दोनों डेक पर शान्त प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन कर रहे थे, तब यात्रियों की अवस्था का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कप्तान आ गया। हमारे पास आकर उसने हम दोनों को अभिनन्दन किया और मिस कान्ति को भूल से मेरी पत्नी समझ कर मिसेज कह बैठा। हम दोनों ही उस सम्बोधन से चौंक गए, और जब तक मैं उसकी भूल का स्पष्टीकरण करूँ, तब तक मिस कान्ति विद्युत की उद्दाम क्षिप्रता से अपनी केबिन में प्रविष्ट हो गईं। बेचारे कप्तान को जब मैंने उनकी भूल बताई तो उन्हें बहुत मर्माहत पीड़ा हुई, और उन्होंने उसी समय लिखित क्षमा-याचना की।"

"यह तो विशेष क्षुब्ध होने की बात नहीं है। घटनाचक्र से प्रायः ऐसी भूलें हो जाया करती हैं। शायद अभी और कुछ है ?"

"जो कुछ है, वह सब सुनाए देता हूँ। इसके पश्चात् शायद मिस कान्ति अस्वस्थ हो गईं, और दो दिनों तक अपनी केबिन से बाहर नहीं दिखाई दीं। कप्तान को भी इससे चिन्ता हुई और उन्होंने जब टेलीफोन से पूछा तो मालूम हुआ कि वे बीमार हैं और डाक्टरी सहायता चाहती हैं। पड़ोसी और एकदेशीय होने के नाते मुझे भी कुछ चिन्ता हुई।"

"ठीक है, चिन्ता होंना स्वाभाविक है। फिर क्या हुआ?"

"डाक्टर को लेकर जब कप्तान और मैं उनके कमरे के द्वार पर गए तो मिस कान्ति ने घोर अशिष्टता का परिचय दिया। मुझको और कप्तान को केबिन के आने से मना किया और केवल डाक्टर को प्रवेश करने की अनुमति दी। हम लोगों ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया और कप्तान मेरे कमरे में बैठे हुए डाक्टर की वापसी की प्रतीक्षा करने लगे। डाक्टर के आने पर उसने परीक्षाफल कप्तान को बताया। इन्फ्लूएंजा की बीमारी उसने बताई और एक नर्स का प्रबन्ध करने का उसने अनुरोध किया जो उनके परामर्श के अनुसार कप्तान ने तुरन्त कर दिया।"

"बिल्कुल उचित काम किया। फिर कुछ हुआ?"

"जी हाँ, इसके बाद बिल्कुल अनावश्यक रूप से मेरी भर्त्सना की गई।"

"डाक्टर हाक की भ्रू-कुञ्चित हो गई। नेत्रों से आगे कहने के लिए संकेत किया।

इसके पश्चात् जब कप्तान और जहाज के डाक्टर चले गए, और नर्स उनके पास आ गई तो मिस कान्ति ने उसके द्वारा मुझे बुलवा भेजा। मेरे जाने पर उन्होंने अनर्गल प्रलाप आरंभ कर दिया, जिसका आशय था कि वे पुरुषों की अपेक्षा किसी भाँति न्यून नहीं हैं और वे अपनी रक्षा करने में सर्वथा समर्थ हैं। मैंने अपना अपराध जानने की बहुत अनुनय विनय की, किन्तु उन्होंने कुछ न बताया और यहाँ तक कह डाला कि अपराध अगर मुझसे हुआ होता तो कभी वे मेरी मरम्मत कर दिए होतीं। मैं तो उनकी गर्जना से इतना क्षुब्ध हो गया, और निरपराधी होते हुए डाट-फटकार मिलने से मुझे मार्मिक पीड़ा हुई।"

मुझे मालूम हुआ, मेरी सहायता से उठीं। नृत्य-गृह से हम लोग अपने-अपने कमरों की ओर चले, किन्तु मिस कान्ति के पैर लड़खड़ा रहे थे। मैंने पुनः उन्हें सहायता देने की याचना की, किन्तु पहले वह अस्वीकृत होकर नितान्त अवशता की हालत में स्वीकृत हुई और मैं उन्हें ऊपर डेक पर ले आया। प्रकृति का अब वह शान्त रूप देखकर हम दोनों उसके सौंदर्य की चर्चा करने लगे।"

"आप सत्य-सत्य वर्णन कर रहे हैं न ?" डाक्टर हाक ने बात काटते हुए पूछा, जब उन्हें कोई उपयुक्त सूत्र मिलते हुए दिखाई न दिया।

"आप विश्वास कीजिए, मैं एक शब्द भी असत्य नहीं कह रहा हूं। इसके अतिरिक्त आप स्वयं मिस कान्ति से सब हाल विस्तारपूर्वक जान लीजियेगा।"

"हाँ, हाँ, वह तो मैं पूछूँगा ही, मैं अनुशासन का घोर पक्षपाती हूँ, बल्कि यही मेरी कमजोरी है। मैं अपने छात्रों में किञ्चित अनुशासनहीनता सहन नहीं कर सकता। विज्ञान तो अनुशासित व्यवस्था का स्पष्टीकरण है। इसीलिए मैं इतनी पूँछ-ताँछ कर रहा हूं, क्योंकि बिना किसी गुरुतर अपराध के कोई सम्भ्रान्त रमणी इस प्रकार किसी को देखकर भाग नहीं सकती।"

"डाक्टर साहब, मैं स्वयं चकित हूँ, उनकी रुष्टता का जो कुछ अनुमान मैं कर सका हूँ, वह शायद इतना ही हो सकता है, कि उसी समय जब हम दोनों डेक पर शान्त प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन कर रहे थे, तब यात्रियों की अवस्था का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कप्तान आ गया। हमारे पास आकर उसने हम दोनों को अभिनन्दन किया और मिस कान्ति को भूल से मेरी पत्नी समझ कर मिसेज कह बैठा। हम दोनों ही उस सम्बोधन से चौंक गए, और जब तक मैं उसकी भूल का स्पष्टीकरण करूँ, तब तक मिस कान्ति विद्युत की उद्दाम क्षिप्रता से अपनी केबिन में प्रविष्ट हो गईं। बेचारे कप्तान को जब मैंने उनकी भूल बताई तो उन्हें बहुत मर्माहत पीड़ा हुई, और उन्होंने उसी समय लिखित क्षमा-याचना की।"

"यह तो विशेष क्षुब्ध होने की बात नहीं है। घटनाचक्र से प्रायः ऐसी भूलें हो जाया करती हैं। शायद अभी और कुछ है ?"

"जो कुछ है, वह सच सुनाए देता हूँ। इसके पश्चात् शायद मिस कान्ति अस्वस्थ हो गईं, और दो दिनों तक अपनी केबिन से बाहर नहीं दिखाई दीं। कप्तान को भी इससे चिन्ता हुई और उन्होंने जब टेलीफोन से पूछा तो मालूम हुआ कि वे बीमार हैं और डाक्टरी सहायता चाहती हैं। पड़ोसी और एकदेशीय होने के नाते मुझे भी कुछ चिन्ता हुई।"

"ठीक है, चिन्ता होना स्वाभाविक है। फिर क्या हुआ ?"

"डाक्टर को लेकर जब कप्तान और मैं उनके कमरे के द्वार पर गए तो मिस कान्ति ने घोर अशिष्टता का परिचय दिया। मुझको और कप्तान को केबिन के आने से मना किया और केवल डाक्टर को प्रवेश करने की अनुमति दी। हम लोगों ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया और कप्तान मेरे कमरे में बैठे हुए डाक्टर की वापसी की प्रतीक्षा करने लगे। डाक्टर के आने पर उसने परीक्षाफल कप्तान को बताया। इन्फ्लूएंजा की बीमारी उसने बताई और एक नर्स का प्रबन्ध करने का उसने अनुरोध किया जो उनके परामर्श के अनुसार कप्तान ने तुरन्त कर दिया।"

"बिल्कुल उचित काम किया। फिर कुछ हुआ ?"

"जी हाँ, इसके बाद बिल्कुल अनावश्यक रूप से मेरी भर्त्सना की गई।"

"डाक्टर हाक की भ्रू-कुञ्चित हो गई। नेत्रों से आगे कहने के लिए संकेत किया।

इसके पश्चात् जब कप्तान और जहाज के डाक्टर चले गए, और नर्स उनके पास आ गई तो मिस कान्ति ने उसके द्वारा मुझे बुलवा भेजा। मेरे जाने पर उन्होंने अनर्गल प्रलाप आरंभ कर दिया, जिसका आशय था कि वे पुरुषों की अपेक्षा किसी भाँति न्यून नहीं हैं और वे अपनी रक्षा करने में सर्वथा समर्थ हैं। मैंने अपना अपराध जानने की बहुत अनुनय विनय की, किन्तु उन्होंने कुछ न बताया और यहाँ तक कह डाला कि अपराध अगर मुझसे हुआ होता तो कभी वे मेरी मरम्मत कर दिए होतीं। मैं तो उनकी गर्जना से इतना क्षुब्ध हो गया, और निरपराधी होते हुए डाट-फटकार मिलने से मुझे मार्मिक पीड़ा हुई।"

"यदि तुम्हारा कथन सत्य है तो किसी भी भद्र व्यक्ति को ऐसे व्यवहार से पीड़ा होगी ही।"

"मैं अक्षरशः सत्य कह रहा हूँ डाक्टर हाक, इसमें एक अक्षर भी मेरी ओर का नहीं है। यहीं तक यदि बात हुई होती तो गनीमत समझता; किन्तु इसके बाद उन्होंने आदेश दिया कि मैं कभी उनसे परिचित होने का दावा न करूँ और यदि अकस्मात कहीं भेंट भी हो जाय तो हमें नितान्त अपरिचित की भाँति रहना चाहिए। अपरिचित व्यक्तियों की भाँति सदैव व्यवहार मुझे करना चाहिए। यदि दृष्टि या शब्दों से मैं परिचितों जैसा व्यवहार करूँगा तो मुझे दण्ड दिया जायगा। इस भर्त्सना का परिणाम यह हुआ कि मैंने अपने को अपनी केबिन में कैदी बना लिया और जहाज में उसके सामने जाने या अनजाने न पड़ने का निश्चय कर लिया। बस इतनी ही मेरी कहानी है।"

"तब तो शिष्टता और भद्रता के विरुद्ध उनका ही आचरण सिद्ध होता है।"

"एक मजेदार घटना और घटी, उसको इसी सिलसिले में बता देना उचित होगा। वह यह कि जब जहाज मोम्बासा बन्दर पर पहुँच गया, मैं अपने केबिन को बन्द किए बैठा हुआ मिस कान्ति के पहले उतर जाने की प्रतीक्षा कर रहा था। जब सब यात्री उतर गए तो उसी समय घूमते हुए वहाँ कप्तान आ गए और वे मुझे पहुँचाने के लिए नीचे कस्टम के कार्यालय तक आए। कप्तान मेरे जिले के पास के रहने वाले हैं, इसलिए कुछ घनिष्ठता हो गई थी वहाँ कस्टम कार्यालय में मिस कान्ति बैठी हुई थीं, क्योंकि उनका पासपोर्ट शीघ्रता में उनकी केबिन ही में गिर पड़ा था, जब वे उसे अपने कोट की जेब में रख रही थीं। पासपोर्ट न होने से कस्टम का अधिकारी उनको कहीं जाने की आज्ञा ही नहीं दे रहा था।"

"तब तो वे बड़ी कठिनाई में पड़ी हुई होंगी!" डाक्टर ने मन्द मुस्कान के साथ पूछा।

"जी हाँ, पहले कप्तान से उनकी शिनाख्त करवाई गई, और फिर पास-

विषमुखी

प्रथम भाग

पोर्ट ढूँढ़कर लाने के लिए मुझे भेजा गया। मैं जाने में हिचकिचाहट प्रकट करने लगा। मिस कान्ति ने स्वयं जाना चाहा किन्तु अधिकारी ने बड़ी नम्रता के साथ उसे अपने सामने से जाने की अनुमति नहीं दी। नितान्त, मैं जाकर पास-पोर्ट को ढूँढ़ लाया और जब उसको दिया तो अधिकारी ने छूट दी। मिस कान्ति इससे बड़ी विरक्त हुई और उस दिन के बाद आज ही मैंने यहाँ देखा। मुझको पहचानकर जैसा उसने व्यवहार किया, वह आपने देखा ही है। मुझे अभी तक मेरे अपराध का पता नहीं लग सका। यदि आपकी सहायता से उसका उद्घाटन हो सके तो मैं आपका उपकृत होऊँगा।"

"आपकी कहानी बड़ी मनोरञ्जक रही। वस्तुत: यदि यही बात है तो मुझे इस निर्णय पर पहुँचना पड़ता है कि मिस कान्ति बड़ी संवेदनशील और भावुक रमणी हैं। मैं उनसे इस विषय में अवश्य पूँछ ताँछ करूँगा आप दोनों को अब मिलाकर अनुसन्धान-कार्य करना है। यह अनावश्यक विराग तो किसी प्रकार समीचीन नहीं है। आइए, आपको इस अनुसन्धान—शाला का वह कमरा दिखा दूँ, जहाँ आपको कार्य करना है। दूसरे साथियों से परिचय भी करवा दूँ। आइए चलें।"

डाक्टर हाक के पीछे-पीछे विश्वनाथ उस विशाल अनुसन्धानशाला को देखने के लिए चले गए।

— १४ —

अनुसन्धानशाला के विस्तृत भवन को देखकर सुहासिनी ने कहा—"यह तो शायद नैरोबी के सबसे अच्छे भवनों में से एक है।"

डाक्टर आनन्द ने हँसकर कहा—"शिक्षा का प्रसार अफ्रीका में भी हो रहा है, बेटी! विज्ञान के आविष्कारों ने समय और दूरी की समस्याओं तथा कठिनाइयों को पहले की अपेक्षाकृत बहुत कम कर दिया है, इसलिए मानवों का आपसी संसर्ग उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। साधारणतया जब दो व्यक्ति मिलते हैं,

तब विचारों, भावों और सभी बातों का विनिमय होता है और उससे दोनों लाभान्वित होते हैं। आदान और प्रदान यह नैसर्गिक नियम है। इसी प्रकार जब दो विभिन्न जातियाँ अथवा विभिन्न देशों के लोगों का आपसी सम्पर्क स्थापित हो जाता है, तब उनकी सभ्यता, शिक्षा आदि में भी आदान-प्रदान स्वयमेव होता है और दोनों की सभ्यताएँ उससे लाभ उठाती हैं।"

"किन्तु पापा, अफ्रीका की सभ्यता यदि कोई थी, तो वह नितान्त जंगली थी। उनकी सभ्यता का विकास तो अब हो रहा है और वह भी योरोप के संसर्ग से। अन्यथा यहाँ के निवासी अत्यन्त असभ्य और बर्बर थे। वे एक-दूसरे को मार कर वन्य पशुओं की भाँति खा जाते थे। उन्होंने न विज्ञान में कभी उन्नति की और न किसी प्रकार की सभ्यता का परिचय दिया। वे छोटी-छोटी जातियों या टुकड़ों में बँटे हुए थे और सदैव एक दूसरे से लड़ा करते थे। उनमें से कितने ही पशुओं की भाँति नगे रहते थे और वैसे ही आचरण भी करते थे।"

"ठीक कहती हो सुहास, आधुनिक सभ्यता के समक्ष वह जङ्गली सभ्यता ही है। यह तो तुमको मानना पड़ेगा कि आवश्यकताएँ ही वैज्ञानिक अनुसन्धानों की जननी हैं। जब प्रकृति के सहज प्राप्य साधनो की कमी नहीं रहती, तब मानव कठिन अनुसन्धानों की ओर ध्यान नहीं देता। अफ्रीका इतना बड़ा विस्तृत क्षेत्र था, जहाँ मनुष्य को जीवन-निर्वाह के लिए कभी चिन्तित नहीं होना पड़ा। उनके प्रसार के लिए पर्याप्त क्षेत्र मिलता गया, और वे इस विशाल भूमि-खण्ड में स्वच्छन्द विचरण करते गए। इसके अतिरिक्त इस भूमि-खण्ड में सदैव घोर वृष्टि हुआ करती थी, जिससे अभेद्य जङ्गलों की वृद्धि होती गई। उसके साथ वन्य पशुओं में भी अधिकता हुई और यहाँ के आदिम निवासियों को उनसे क्षुधा-निवारण की सामग्री प्रचुर मात्रा में मिलती गई। वे उसी से सन्तुष्ट रहे। इसी कारण से उन्होंने प्राकृतिक शोषण की ओर ध्यान नहीं दिया, बल्कि उसके साथ अनुकूल रहने में ही अपना कल्याण समझा।"

"इसीलिए वे कूप-मण्डूक की भाँति रहे और उन्नति नहीं कर सके।"

यह कहना कि उन्होंने उन्नति नहीं की, गलत होगा। उन्नति करना प्रत्येक मानव का सहज धर्म है, और वह उन्नति करता है अपने वातावरण से। देखो

इन्हीं जङ्गली जातियों में ऐसी अनेक बातें हैं, जिनका रहस्य बावजूद इतने वैज्ञानिक अनुसन्धानों के अभी तक नहीं खुल सका है।"

"मेरी समझ में तो ऐसा कोई रहस्य देखने या सुनने में नहीं आता। मुझे तो उनकी हर बात में घोर अशिक्षा और मूर्खता के ही प्रमाण मिलते हैं।"

"पश्चिम की दृष्टि में उनका सारा कार्य-कलाप ही मूर्खतापूर्ण है। परन्तु ईश्वर की सृष्टि में यही सब कुछ ठीक नहीं है, जो हमें पश्चिम से प्राप्त होता है। हमें सहिष्णुता के साथ इन प्राचीन जातियों की सभ्यता का निरीक्षण करना चाहिए। जब हम अपने गुरूडम को छोड़कर शिक्षार्थी की भाँति इनमें प्रवेश करें तो हमें अवश्य इनकी सभ्यता के चिन्ह देखने को मिलेंगे। किन्तु, जैसा मैं कह चुका हूँ, उनकी सभ्यता प्रकृति के साथ-साथ चलने वाली होगी, उसमें उसके शोषण की प्रवृत्ति नहीं मिलेगी।"

"प्रकृति के गर्भ से अनुसन्धान करके उसके गुप्त तत्वों को ढूँढ़ निकालना क्या शोषण कहा जायगा। वाष्प, बिजली, पेट्रोल की शक्ति को खोज निकालने से मनुष्य का कितना कल्याण हुआ है। हमारे जीवन की कठिनाइयाँ दूर हो रही हैं और हम सभ्यता के ऐसे मध्य-बिन्दु में पहुँच रहे हैं, जहाँ सुख के सभी साधन उपलब्ध हो जायँगे। अब तो अणु-शक्ति प्राप्त करके आज का मनुष्य कहाँ पहुँचेगा, इसकी भी कल्पना करना एक कठिन बात हो रही है। भला बताइए, इस अफ्रीकी सभ्यता से मानव-जाति का क्या कल्याण हुआ? मानव की किस शक्ति का विकास हुआ? वह तो घोर अविद्या, घोर अन्धकार में डूबा रहा हूँ।"

"बेटी, यह तो मैं पहले ही स्वीकार कर चुका हूँ कि आधुनिक सभ्यता के मुकाबिले में उनकी उन्नति कुछ नहीं हो सकी है, परन्तु उनको इस ओर ध्यान देने की कोई आवश्यकता ही अनुभव नहीं हुई। किन्तु उनमें थोड़ी बहुत अपनी आवश्यकता के अनुकूल विद्या की जानकारी तो हुई ही है। मैंने अपने जीवन में कुछ ऐसे चमत्कार देखे हैं जिनसे यह मानना पड़ेगा कि उनमें आधिभौतिक ज्ञान तो है।"

"यदि आप एक दूसरे की जान की प्यास को सभ्यता कहते हैं, तो वह निराली सभ्यता है। न उन्हें ईश्वर का कभी ज्ञान हुआ, न उनमें कभी नगर

बसाने का ज्ञान हुआ, न उनमें कला-विज्ञान का प्रसार हुआ, किस बात में उनकी सभ्यता आपने देखी है। मैं तो समझता हूँ, उनका जैसा बर्बर, जङ्गली, वहशी किसी देश का मानव नहीं होगा। आपने उनके कुछ असभ्य कार्य देखे होंगे, जो आपको समझ में न आए होंगे, और उनको आप अपने सीधे स्वभाव के कारण उनका आधिभौतिक ज्ञान मान बैठे।"

सुहासिनी का कण्ठस्वर घोर व्यंग्य की कठोरता से झंकृत हो गया। डाक्टर आनन्द को चुप हो जाना पड़ा। उनमें वाद-विवाद की अधिक क्षमता नहीं रह गई। वे एक आती हुई रमणी की ओर देखने लगे। सुहासिनी भी आज के पहले इतनी कटु कभी नहीं हुई थी। वह सदैव अपने पिता का आवश्यकता से अधिक सम्मान करती थी और प्रायः उनकी बात मान कर विवाद में नहीं पड़ा करती थी। उसे अपनी कटुता पर स्वयं पाश्चाताप होने लगा।

उसने अपने पिता की क्षुब्धता के निवारण करने के हेतु उस आगन्तुक रमणी की ओर देखते हुए कहा—"पापा, वह आने वाली युवती मुझे कोई भारतीय जान पड़ती है। उसकी वेश-भूषा तो शुद्ध भारतीय फैशन की है।"

डाक्टर आनन्द ने उत्तर दिया—"हाँ, मेरा भी यही ख्याल है। क्यों न इससे आलाप करके इसके विषय में जाना जाय, बेटी, जब मेरी दृष्टि किसी भारतीय पर पड़ती है तो मुझे ऐसा अनुभव होता है कि यह हमारे परिवार का है। तुम इसको जरा बुलाओ तो।"

"बुलाना उचित नहीं है पापा। हम लोग क्यों न उधर ही चलें। मैंने इसको अनुसन्धानशाला के मुख्य-भवन से निकलते देखा है, संभवतः यह भी किसी कार्य से यहाँ आई होगी। बड़े भैय्या तो अभी आए नहीं।"

"इतनी जल्दी वे कैसे आ सकते हैं। आज ही तो उनका प्रथम दिन है। डाक्टर हाक अनुशासन के घोर पक्षपाती हैं, वे उनसे इतनी देर हो जाने का कारण पूछेंगे और जब उनको सन्तोष हो जायगा, तब उनको छुट्टी देंगे। इसीलिए तो मैं उनके साथ जाकर हाक को सब सूचित कर देना चाहता था, किन्तु विश्वनाथ ने स्वीकार नहीं किया और अकेला ही चला गया। मेरे जाने से सब मामला सँभल जाता।"

"आपका अभी उनके साथ जाना उचित नहीं था। वे अकेले ही सब कह सुन लेंगे। हाँ, अगर कुछ गड़बड़ी हुई तो फिर आप हैं ही। व्यर्थ में क्यों डाक्टर का अहसान लिया जाय। उन्होंने कोई अपराध तो किया नहीं। यह कोई अपराध नहीं है कि निश्चित तारीख से कुछ देर में पहुँचे। देर में पहुँचने की सूचना तो वे दे ही चुके थे।"

"नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। मैं सिर्फ डाक्टर हाक के स्वभाव के बारे में सोचकर कुछ थोड़ा चिन्तित था। हमने तो सोचा था कि जब विश्वनाथ लौटेगा तो हम उसको यहाँ से अपने साथ लेकर घूमने चलेंगे।"

"हाँ, घूमने तो चलेंगे ही। अभी उनको गए हुए मुश्किल से आध घंटा हुआ होगा। इतनी जल्दी तो वे आ नहीं सकते।"

"क्या बताऊँ बेटी, यह लड़का मेरा सब कुछ हरण कर बैठा है। क्षण भर भी इससे विलग रहना मुझे सहन नहीं होता। यह भाई जगन्नाथ ही की तरह है। मै इसमें उन्हीं को देखता हूं।"

"आपसे कौन कहता है कि आप उन्हें किसी अन्य दृष्टि से देखें। देखिए, यह भारतीय युवती समीप आ गई है। मैं इसका परिचय पूछती हूँ।"

"जरूर पूछो, फिर एक दिन इसको अपने यहाँ निमन्त्रित करना भी न भूलना।"

युवती इनके समीप आ गई थी। सुहासिनी ने उसे हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए कहा—"बहिन, आपको देखकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है। आप भारतीय हैं न ?"

युवती जो वास्तव में कान्ति थी, और डाक्टर हाक के कमरे में विश्वनाथ को बैठे देखकर अनुसन्धानशाला के उद्यान में अपने मन को व्यवस्थित करने के लिए चली आई थी, एक वृद्ध तथा एक समवयस्क युवती को देखकर कुछ क्षणों के लिए ठिठक सी गई। फिर अपने विचारों को संयत कर प्रत्युत्तर में नमस्कार करती हुई बोली—"हाँ मैं भारतीय हूँ और भारत से आए हुए लगभग दो सप्ताह हुए होंगे। मैं क्या आपका परिचय जान सकती हूँ ?"

सुहासिनी ने उसके पास आकर कहा—"मेरा नाम सुहासिनी है और यह मेरे पिता डाक्टर आनन्द हैं। हम लोग यहाँ बसे हुए भारतीय हैं। मेरे पिता आज से कई दसाब्दि पूर्व भारत से कुली-प्रथा में मजदूर होकर लाए गए थे। बाद में मुक्ति मिलने पर वे यहीं बस गए। मेरा जन्म केनिया में हुआ है। हम लोग रहते तो हैं मोम्बासा में, किन्तु कुछ दिनों के लिए नैरोबी आ गए हैं।"

"मुझे आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।" फिर डाक्टर आनन्द को प्रणाम किया। वृद्ध डाक्टर आनन्द गद्‌गद हो गए। वे दोनों उसके समीप और आ गए।"

"शायद आप भ्रमण हेतु आई हुई हैं?"

"जी नहीं, मैं इस अनुसन्धानशाला में कुछ अनुसन्धान-कार्य से भारत सरकार द्वारा भेजी गई हूँ। इसी सिलसिले में भ्रमण भी कुछ न कुछ हो ही जायगा।"

"मेरे बड़े भाई भी इसी उद्देश्य से आज यहाँ आए हैं। हम लोग उनके लौटने की प्रतीक्षा में इस उद्यान में घूम रहे थे। सहसा आपसे मिलकर मुझको और मेरे पिता को बड़ी प्रसन्नता हुई है। आशा है कि आज सन्ध्या की चाय मेरी कुटीर में ग्रहण करेंगी। मेरे घर का पता यह है।"

सुहासिनी ने अपनी डायरी से एक पृष्ठ फाड़कर उसमें अपने नैरोबी वाले घर का पता लिख दिया। कान्ति ने उसे लेते हुए कहा—"विदेश में किसी भी स्वदेशी को देखकर मन को बड़ी स्फूर्ति मिलती है। उनके घर जाकर मन की विषण्णता, जो विदेश में होने से प्रायः हो जाती है, मिट जाती है। एक अपनत्व का वातावरण मिलता है। मैं अवश्य इस अवसर से लाभ उठाऊँगी और आज सन्ध्या समय आपके यहाँ आऊँगी।"

"हम लोगों को इससे बड़ा सन्तोष होगा, बेटी।" डाक्टर आनन्द ने अपने मन का भाव प्रदर्शित किया।

"मैं इस समय कुछ व्यस्त हूँ। सन्ध्या समय अवश्य आऊँगी।" कहती हुई कान्ति ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया।

डाक्टर आनन्द कुछ क्षणों तक उसकी ओर देखते रहे, फिर कहा—"अपना देश आदमी को कितना प्यारा होता है। शायद इस जन्म में मुझे अपनी जन्म-भूमि के दर्शन न होंगे।"

"क्यों पापा, हम स्वदेश बड़े भैय्या के साथ बड़े मजे से चल सकते हैं।"

"हाँ, किन्तु······।"

"आप तो हर बात में किन्तु-विन्तु लगाया करते हैं। हमारे सामने ऐसी कौन कठिनाई है, जो हमारे जाने में रुकावट उत्पन्न करेगी?"

"उन बाधाओं को तुम नहीं समझ सकती, बेटी! भारतीय हिन्दू समाज का यह सबसे बड़ा दोष है कि वह अब हमें अपने मध्य में स्थान नहीं देगा।"

"यह क्यों? बड़े भैय्या के पिता भी तो वापस गये थे, उनको तो वैसी कोई कठिनाई से सामना नहीं करना पड़ा, उन्होंने वहाँ विवाह भी किया और समाज में उनका प्रचलन हुआ।"

"किन्तु मैं जानता हूँ कि उनको भी जाति-च्युत किया गया था। उन्होंने अपना विवाह अपनी जाति में नहीं किया, बल्कि अनाथाश्रम की एक अनाथ बालिका से किया था।"

"तो क्या बड़े भैय्या की माता हिन्दू नहीं हैं?"

"नहीं, वे हिन्दू हैं, भारतीय हैं, किन्तु उस जाति-वर्ग की नहीं हैं, जिसके भाई जगन्नाथ थे।"

"इससे क्या हानि हुई?"

"हानि केवल इतनी हुई कि उनके पुराने सम्बन्धियों ने फिर उनसे सम्बन्ध कायम नहीं किया। जैसे यहाँ सबसे विलग रहे, वैसे ही वहाँ। बल्कि कुछ शर्मिन्दगी भी उठानी पड़ी। यहाँ पर जो प्रेम, आदर-सत्कार, भ्रातृ-भाव मिलता था, वहाँ मिलना दुष्प्राप्य हो गया। किन्तु जो प्रगतिशील सामाजिक संस्थाएँ थीं, वे अवश्य उनका सम्मान करती थीं।"

"आपका तात्पर्य यह है कि हम लोग स्वदेश जाकर अपने पुराने सम्बंधियों

में नहीं रहने पायेंगे और यहाँ की ही भाँति अलग रहेंगे। तो इसमें हमारी हानि क्या होगी? कोई हमें देश में रहने से तो नहीं रोक सकता।"

"हाँ, वह अधिकार तो कोई नहीं छीन सकता।"

"मैंने बड़े भैया से इस विषय पर बात की थी, तो उन्होंने बताया कि अब पहले की अपेक्षा बहुत कुछ परिवर्तन हो गए हैं। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के साथ भारत ने अन्य दिशाओं में भी प्रगति की है।"

"हाँ, अब तो अवश्य बहुत कुछ परिवर्तन हो गया होगा। रहते-रहते इस भूमि से भी प्रेम हो गया है। यहाँ से जाने में जो कठिनाइयाँ होंगी उनको विचार कर कभी-कभी मन हिचक जाता है।"

"मेरी इच्छा भारत देखने की बहुत है।"

"यदि तुम्हारी इच्छा स्वदेश चलने की है तो वह अवश्य पूर्ण करूँगा। मैं जब कभी वहाँ जाने की बात सोचता हूँ, तो वे सब भूले-बिसराए दृश्य आँखों के सामने आ जाते हैं, जो मेरी किशोरावस्था में घटित हुए थे। बेटी, हम लोग कानपुर जिले के बिठूर नामक ग्राम के रहने वाले हैं। यह वह स्थान है, जहाँ से ब्रह्मा ने सृष्टि का निर्माण आरंभ किया था। स्वच्छ पवित्रतोय जाह्नवी के तट पर बसा हुआ है। यहीं पर सन् १८५७ के देश-व्यापी विप्लव की योजना बनाई गई थी, उसी प्रकार, जैसे सृष्टि-निर्माण की योजना ब्रह्मा ने बनाई थी।"

"वह कौन था महापुरुष?"

"बेटी, वह पेशवा नानाराव थे। इनके पिता बाजीराव द्वितीय ब्रिटिश सरकार द्वारा पराजित होकर अपनी राजकीय सत्ता खो बैठे और उन्हें अपने देश से दूर बिठूर में रहने के लिए भेज दिया। गुजारे के लिए उन्हें मासिक पेंशन दी जाने लगी, किन्तु उनका पेशवा का पद अक्षुण्ण रखा गया। किन्तु उनके मरने के पश्चात् पेन्शन और पेशवा का पद उनके गोद लिए हुए पुत्र नानाराव से छीन लिया गया। इस समय समग्र देश में ऐसी ही नोचा-खसोटी की नीति लार्ड डलहौजी द्वारा बर्ती जा रही थी। इससे क्षुब्धता का वातावरण बनता गया। उसी समय के आस-पास अवध की नवाबी भी छीनी गई, झाँसी की रानी का

गोद लिया हुआ बालक भी झाँसी के राज्य का उत्तराधिकारी नहीं माना गया। इन सबका परिणाम यह हुआ कि जनता जो पहले ही विदेशी शासन से क्रुद्ध थी, इन क्षुब्ध राजाओं के उकसाने से अँग्रेजी शासन के विरुद्ध उत्तेजित हो गई और उसने विद्रोह कर दिया। वह विद्रोह इतना उग्र तथा देशव्यापी हुआ, जिसमें अंग्रेजों का राज चला गया होता, यदि कुछ देश के गद्दारों ने उनका साथ न दिया होता। इस विद्रोह को कुचला भी ब्रिटिश सरकार ने उस पाशविकता से, जैसा वह आजकल यहाँ के 'माओ-माओ' आन्दोलन को नष्ट कर रही है।"

"पापा, इस भारतीय विद्रोह की कहानी बड़ी भयंकर होगी। मैं इसको विस्तार से जानना चाहती हूँ।"

"विश्वनाथ से पूछना, वह इसको विस्तार से बताएगा। मैंने इस विषय पर कुछ पढ़ा नहीं है, केवल किम्बदन्तियाँ सुनी हैं। इस विषय पर तुम पुस्तकें क्यों नही मँगा लेतीं।"

"हाँ बड़े भैया से पूछकर अवश्य इसका साहित्य प्राप्त करूँगी। देखिए, वे बड़े भैया आ रहे हैं, उनके साथ एक अँग्रेज भी है।"

"डाक्टर आनन्द ने उस अँग्रेज को देखते ही पहचान लिया और कहा—"यही डाक्टर हाक हैं। अब तो उनसे मिलना ही पड़ेगा। चलो उनसे मिलें।'

सुहासिनी अपने पिता के साथ उनसे मिलने के लिए चल दी।

— १५ —

डाक्टर आनन्द के बँगले 'मे विला' में सन्ध्या समय चाय-पार्टी का आयोजन था। यद्यपि पार्टी में आमन्त्रित-जन की संख्या केवल एक थी; किन्तु उत्साह अधिक था। विश्वनाथ को आमंत्रित अतिथि के विषय में कुछ विशेष परिचय नहीं दिया गया था, क्योंकि सुहासिनी उनको उनके एक सहकारी से मिलाकर

विस्मित करना चाहती थी। डाक्टर आनन्द भी उसके इस कौतुक में सहयोगी हो गए थे।

सन्ध्या के पाँच बज रहे थे। सूर्य क्षितिज के कुछ ऊपर था। डाक्टर आनन्द के साथ विश्वनाथ डाक्टर हाक के सम्बन्ध में बातें कर रहे थे। उन्होंने उनके सौजन्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करके कहा—"जो कुछ मैंने देखा, उससे यह मैं कह सकता हूँ कि डाक्टर हाक को विषों के सम्बन्ध में जानकारी बहुत अधिक है। यदि यह कहूँ कि इस विषय में उनके समान चतुर व्यक्ति संसार में बहुत कम होंगे तो किसी प्रकार अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनके परीक्षणालय में ऐसे-ऐसे विषैले जन्तु देखने को मिले हैं, जिनकी मैंने कभी कल्पना नहीं की थी। उनके ऊपर अनेकानेक परीक्षण किए गए हैं, और किए जा रहे हैं।"

"हाँ बेटा, उनका ज्ञान इस विषय में बहुत चढ़ा-बढ़ा है। देखा होगा तुमने कि वे कितनी लगन से इस कल्याण-कार्य में जुटे हुए हैं।"

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे बड़े परिश्रम से इस लोकोपकारी काम में संलग्न हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि भगवान ने इस सृष्टि में विष को क्यों उत्पन्न किया है।"

"इनकी भी एक विशेष उपयोगिता है। संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसकी उपयोगिता न हो। विषों में साधारण वस्तुओं की अपेक्षा अधिक शक्ति होती है, इसलिये उनका जब उपयोग किसी नियम के अनुसार होता है, तो उसकी प्रतिक्रिया अधिक शक्तिशाली होती है। देखो हमारी डाक्टरी में जितनी इन्जेक्शन की औषधियाँ हैं, वे प्रायः सभी विष हैं। ये औषधियाँ हमारे शरीर के विष को दूर कर हमें स्वस्थता प्रदान करती हैं।"

"यों तो प्रत्येक वस्तु में कोई न कोई गुण होगा ही परन्तु इससे प्राण-हानि भी तो होती है, मसलन् सर्पों से जितनी प्राण-हानि होती है, उतनी जीवन-रक्षा नहीं होती।"

"नहीं, ऐसी बात तो नहीं है, सर्पों के विष से ऐसी कई औषधियाँ बनती हैं, जिनके समकक्ष दूसरी उपकारी औषधियाँ नहीं हैं। लड़कपन में मैंने वैद्यों से

सुना था कि काले साँप के विष से बनाई हुई औषधि यक्ष्मा जैसे रोग के लिए रामवाण सिद्ध हुई है, किन्तु इन विषयों पर अभी तक अनुसन्धान बन्द था, अब इस दिशा में लोगों का ध्यान गया है, और निस्संदेह कई महान लोकोपकारी औषधियों का आविष्कार होगा।"

"विषों का उपयोग भी तो साधारण नियमों के अन्तर्गत नहीं हो सकता। डाक्टर हाक के संग्रहालय में अनेक जाति के सर्प हैं, किन्तु 'मोम्बा' जाति का सर्प नहीं है। मेरे पूछने पर उन्होंने बताया कि उसको जीवित पकड़ना एक प्रकार से असंभव है। वे प्रायः जोड़ों में रहते हैं नर और मादा दोनों साथ रहकर एक दूसरे की रक्षा करते हैं। विष उनका इतना संहारक होता है कि उनसे काटा हुआ मनुष्य क्षण मात्र भी जीवित नहीं रहता। इसलिए उसको वशीभूत करना अभी तक मनुष्य-साध्य नहीं हुआ।"

" 'मोम्बा' के विषय में मैंने अनेक अनूठी कहानियाँ सुनी हैं, यहाँ के आदिम निवासी 'मोम्बा' सर्प को देवता मानते हैं, और उसकी पूजा भी उसी भाँति करते हैं।"

"अच्छा, यह सर्प-पूजा यहाँ भी प्रचलित है। मेरा तो अनुमान था कि यह भारत ही में प्रचलित है। उनके आघात के विरुद्ध जब मानव की बुद्धि किसी उपाय को खोजने में असमर्थ हो जाती है, तब वह उनकी पूजा करने के लिए उनको बाध्य करती है, ऐसा मेरा अनुमान है।"

"यह तो है ही, मनुष्य अपने त्राण के लिये अनेक उपाय सोचता है, और जब वे सब विफल हो जाते हैं तब वह अपनी हार स्वीकार करके उनकी पूजा करता है। वास्तव में पूजा भी एक प्रकार की आध्यात्मिक औषधि है, जिससे वह कम से कम हानि करता है। समग्र सृष्टि एक ही शक्ति से उत्पन्न होने के कारण सब जीवों की आन्तरिक शक्तियों में समानता है। जब तक विरोध का भाव रहता है, तब तक एक दूसरे का प्राण-हानि करने की चेष्टा करते हैं। पूजा से वह विरोधाभास दूर हो जाता है, और तब उनकी आन्तरिक शक्तियाँ एक दूसरे के समीप आ जाती हैं, इससे भय का भाव दूर होकर मित्रता का भाव

जन्म लेने लगता है। इस प्रकार मानव इस उपाय से अपनी रक्षा करने में समर्थ होता है।"

"किन्तु पिताजी, पूजा का यह रूप पश्चिम नहीं स्वीकार करता है।"

"वे स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि उनका सारा दृष्टिकोण केवल भौतिक है। भौतिक शक्तियाँ स्थूल शरीर की शक्तियाँ हैं। जिस प्रकार मानव के दो शरीर होते हैं, एक स्थूल, दूसरा सूक्ष्म, और मेरा ऐसा विचार है कि ये दो शरीर सभी प्रकार के प्राणियों के होते हैं। उसी प्रकार दो रूप की शक्तियाँ भी हैं, एक भौतिक या स्थूलिक और दूसरी आधिभौतिक अथवा सूक्ष्मिक। पश्चिमीय दृष्टिकोण अभी तक स्थूलिक है, क्योंकि स्थूल शरीर की शक्तियाँ उसकी इन्द्रियों द्वारा ज्ञात होने में समर्थ हैं। सूक्ष्म शक्ति की ओर उन्होंने अभी तक ध्यान नहीं दिया है। उनका ध्यान उस समय तक उस दिशा में नहीं जायगा, जब तक वे भौतिक या स्थूलिक शक्ति की असमर्थता जान नहीं लेते हैं।"

"किन्तु वैज्ञानिकों ने ऊर्जा या शक्ति का भौतिकीकरण तो कर डाला है, उन्होंने यह जान लिया है कि कितनी स्थूलिक शक्ति का समीकरण सूक्ष्मिक ऊर्जा को जन्म देगा। इसी सिद्धान्त का पता लग जाने पर ही तो अणु-शक्ति का आविष्कार हुआ है।"

"यह तो मैं पहले ही बता चुका हूँ कि समस्त प्रकार की शक्ति का उद्भव एक ही शक्ति से होता है, चाहे वह भौतिक हो या आधिभौतिक, केवल उनके रूप में विभिन्नता है। उसी प्रकार स्थूलिक शक्ति का एक विशेष अनुपात अवश्य ही सूक्ष्मिक शक्ति को उत्पन्न करेगा। अभी तक वह अनुपात ज्ञात नही था, अब निरन्तर खोज से वह ज्ञात हो गया। परन्तु मूलतः शक्ति का केन्द्र एक है।"

इसी समय सुहासिनी ने आकर कहा—"पापा को आजकल बहस करने का मर्ज हो गया है। बड़े भैया, आपने उनके इस मर्ज को और बढ़ा दिया है। हमारी अतिथि आ गई है, और आप दोनों को इसका कोई ध्यान नहीं है। चलिए वे ड्राइंग-रूम में बैठी हुई आप लोगों की प्रतीक्षा कर रही हैं।"

"उठो बेटा, इस नटखट छोकरी को हमारा वार्त्तालाप भी खलता है।"

कहते-कहते उठवे खड़े हुए। उनकी दृष्टि से अनन्त स्नेह उमड़ने लगा और उनका उपालम्भ उससे प्लावित हो गया। सुहासिनी की स्फूर्ति का ओर-छोर नहीं मिल रहा था।"

विश्वनाथ ने उत्सुक होकर पूछा—"कौन अतिथि अकस्मात आ गया?"

सुहासिनी ने कौतुक भरी दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए कहा—"अभी-अभी आपको मालूम हो जायगा। वह अतिथि केनिया निवासी नहीं है, जानते हो, शत-प्रतिशत भारतीय है, जैसे आप स्वयं हैं।"

"अच्छा, उस शत-प्रतिशत भारतीय जन्तु को कहाँ से पकड़ लाई? डाक्टर हाक के संग्रहालय से तो नहीं ले आई, क्योंकि उनके संग्रहालय में भारतीय तथा अभारतीय सभी प्रकार के जन्तु हैं।"

"आपका अनुमान ठीक है बड़े भैया। हमने उसे वहीं पकड़ा था, किन्तु सावधान रहिएगा, कहीं आप उससे भयभीत न हो जावें।"

"क्या बड़ा विषैला है?" कहते हुए विश्वनाथ हँस पड़े। डाक्टर आनन्द और सुहासिनी ने भी उसमें योग दिया।

"इसका परीक्षण तो आप ही कीजिएगा। क्योंकि आप विषों के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने के लिए ही भारत से अफ्रीका आए हैं।"

"चलिए, फिर आपके अतिथि से साक्षात कर उनके विष-मात्रा का परीक्षण किया जावे। क्यों पिता जी, ठीक है न?"

डाक्टर ने स्वीकृति में सिर हिलाया, और वे तीनों ड्राइंग-रूम की ओर अग्रसर हुए। सबसे आगे सुहासिनी, और उसके पीछे डाक्टर आनन्द, फिर विश्वनाथ थे। सुहासिनी ने बड़े उत्साह के साथ आगे बढ़ते हुए कहा—"हमारे पिता को तो आप जानती ही हैं, क्योंकि उनसे भेंट आज दोपहर को हो गई थी, किन्तु हमारे बड़े भैया से आप परिचित नहीं हैं।"

अतिथि कान्ति थी। उसकी पीठ द्वार की ओर थी। सुहासिनी के कथन का उत्तर देने के लिए वह उठ खड़ी हुई और कुछ नत नेत्रों से बोली—"अवश्य ही आपके बड़े भैया से मिलकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी। विदेश में तो प्रत्येक स्वदेशवासी आत्मीय होता है।"

डाक्टर आनन्द एक ओर हट गए। विश्वनाथ की दृष्टि कान्ति की ओर गई। दोनों में पुनः दृष्टि-विनिमय हुआ और विश्वनाथ उलटे पैर लौटने को उद्यत हुए। कान्ति विस्फारित नेत्रों से उनकी ओर देखती हुई अवाक् रह गई। निमिष मात्र में यह सब घटित हो गया। सुहासिनी अपने परिचय के शब्दों को अपने ही मुँह में रोके हुए दोनों के नेत्र-मिलन की प्रतिक्रिया देखकर कुछ चकित सी स्तंभित रह गई। डाक्टर आनन्द ने कुछ लक्ष्य नहीं किया था। वे बिल्कुल निर्लिप्त भाव से खड़े हुए थे। विश्वनाथ को इस प्रकार उलटे पैरों जाते देखकर उन्होंने अनुमान किया कि वे शायद कोई भूली हुई चीज को उसके याद आ जाने पर पुनः लेने के लिए जा रहे हैं।"

कान्ति को मौन देखकर सुहासिनी ने पूछा—"आपको शायद बड़े भैया के व्यवहार से पीड़ा पहुँची है। मैं उनके इस प्रकार हठात् जाने का कारण नहीं समझ पाता। उनके इस अवज्ञापूर्ण आचरण की मैं कल्पना भी नहीं कर सकती थी। मैं उनकी ओर से क्षमा-प्रार्थी हूँ।"

कान्ति ने अपने मनोभावों को संवरण करते हुए कहा—"नहीं, ऐसी कोई विशेष बात नहीं है। मैं आपके बड़े भैया से कुछ-कुछ परिचित हूँ। हम दोनों ने एक ही जहाज में बम्बई से यात्रा की थी। किन्तु······।"

"किन्तु, क्या उनके द्वारा आपका कोई अपमान हुआ है?" कहते-कहते सुहासिनी के नेत्र कुछ रोष-पूर्ण हो उठे। फिर अपने पिता की ओर देखते हुए कहा—"पापा, आप जरा बड़े भैया के पास चले जाइए, मै आप लोगों की चाय वहीं भेजती हूँ।"

डाक्टर आनन्द इस आकस्मिक रहस्यपूर्ण प्रार्थना का अर्थ समझने में असमर्थ रहे। वे बिना किसी प्रतिवाद के कमरे के बाहर चले गए।

उनके जाने के पश्चात् सुहासिनी कान्ति के सम्मुख बैठ गई और उसको भी बैठने का संकेत करते हुए कहा—"बहिन जी, अब कृपा करके बताइए कि बड़े भैया ने क्या अपराध किया है। हम दोनों ही स्त्री-वर्ग की हैं, इसलिए खुलासा बातें करने में कोई कठिनाई नहीं होगी।"

कान्ति बड़े असमंजस में पड़ गई। उसकी समझ में नहीं आता था कि वह क्या कहे और कैसे कहे ? सुहासिनी अन्वेषक दृष्टि से उसके मुख का उतार-चढ़ाव देख रही थी।

"क्या कोई बहुत ही गम्भीर घटना घटित हो गई थी, जिसको व्यक्त करने में आपको मुझसे भी संकोच होता है ? बड़े भैया को यद्यपि मैंने बहुत दिनों से नहीं जाना है। हमारे परिवार के साथ उनका आलाप उतने ही दिनों का है, जितना आप दोनों को केनिया आए हुए हुआ है। किन्तु इतने दिनों में ही मैंने निरखा है कि वे एक उच्च चारित्रिक स्तर के संवेदनशील युवक हैं। उनमें वह रक्त प्रवाहित हो रहा है, जो किसी अपकार या दुष्कर्म करने की प्रेरणा नहीं दे सकता। उनके पिता मेरे पिता के अन्तरंग मित्र थे, और आज दिन भी वे उनके गुणों का बखान करते नहीं अघाते। उनका कहना है कि बड़े भैया प्रत्येक गुण, स्वभाव में अपने पिता के अनुरूप हैं। यदि उन्होंने आपका किसी प्रकार का अपमान किया है, तो मैं मारे शर्म के मर जाऊँगी अवश्य, किन्तु उसका प्रतिकार करने में कुछ उठा नहीं रखूँगी, चाहे इसके लिए मुझे पिता के कोप का भाजन ही क्यों न होना पड़े।" कहते-कहते उसके नेत्र धुचधुचा आए और कर्णमूल लाल हो गए। उत्तेजना से उसकी नाड़ियों में प्रवाहित होने वाला रक्त उत्तरोत्तर द्रुत होने लगा।

कान्ति नत नेत्रों से बैठी हुई अपनी मन:स्थिति की मीमांसा कर रही थी, वह स्वयं न जान पाती थी कि वह क्या उत्तर दे। सुहासिनी ने उसको मौन देखकर कहा—"बोलती क्यों नहीं आप ? यह आपका मौन मेरे मन की विकलता पल-पल बढ़ाता जा रहा है। आप स्पष्ट क्यों नहीं उनका अपराध बयान करतीं ? आपको क्या संकोच है ?"

"उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है, और न उनके किसी आचरण के लिए मैं उन्हें दोषी ठहरा सकती हूँ। वे वस्तुत : एक महत्हृदय हैं, किन्तु ?" कान्ति ने ऐसे कहा मानों कोई जलपूरित कुंभ से सहसा पानी उँडेल दे। सुहासिनी के कम्पित हृदय का उद्घात कुछ कम हुआ और वह कुछ तीव्रता से बोली—"किन्तु क्या ? कहिए, किन्तु उन्होंने क्या किया ?"

"उन्होंने नहीं, मैंने किया। मैं परम्परागत विचारों की अपेक्षा कुछ भिन्न विचार रखती हूँ। मैं नारी हूँ अवश्य, किन्तु अपने को पुरुषों से हीन नहीं समझती। पुरुष जाति आज तक शताब्दियों से हमारी जाति की दुर्बलता से अनुचित लाभ उठाती चली आ रही है। वह हमें अबला और निर्वीर्य, भीरु और दुर्बलमना समझने का आदी हो गया है, उसको अपनी बुद्धि का अहंकार है, उसको अपनी शक्ति का दर्प है, उसको अपनी पाशविकता का अभिमान है। मैंने उसकी उद्धत भावना को, उसके दर्प को और उसके अहंकार को नष्ट करने का बीड़ा उठाया है। मैं उन्हें बता देना चाहती हूँ कि यह बीसवीं शताब्दि पुरुषों के अत्याचार उत्पीड़न, अनधिकार चेष्टाओं को प्रोत्साहन नहीं देगी। स्त्री जाति का व्यक्तित्व उतना ही ऊँचा है, जितना पुरुषों का। मैं उनके किसी अहसान के बोझ से दबना नहीं चाहती।"

"ठीक है, ऐसा ही लगभग मेरा भी मत है, किन्तु बड़े भैया ने आपके साथ कौन दुर्व्यवहार किया है, यह जानने के लिए मैं उत्सुक हूँ।"

"मैंने आपसे पहले ही बता दिया है कि उन्होंने मेरे साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं किया, वे अगर करते भी तो मैं प्रतिकार और प्रतिशोध लेना भी भली प्रकार जानती हूँ।"

"फिर आप लोग एक दूसरे को देखकर क्यों इस प्रकार अपदस्थ हो गए और वे क्यों आपके सम्मुख से हठात चले गए।"

"मेरी ही इच्छा से!"

"आपकी इच्छा से? इसका रहस्य कुछ समझ में नहीं आया।"

"देखती हूँ कि आपको सारी घटना आदि से अन्त तक बताना होगा। अपनी यात्रा की बात करते हुए क्या उन्होंने आपसे किसी तूफान का वर्णन किया था?"

"बातों ही बातों में उन्होंने यह एक बार कहा था कि जब जहाज बम्बई से चला था तो मार्ग में एक भयंकर तूफान आया था, जिसमें पड़कर जहाज डूबते-डूबते बचा था।"

"उन्होंने मुझसे सम्बन्धित किसी घटना का वर्णन नहीं किया।"

"नहीं, आपको मैं उस समय नहीं जानती थी, इससे नहीं कह सकती थी, कि उन्होंने कुछ आपके सम्बन्ध में भी कहा था। जहाँ तक स्मरण है, उन्होंने किसी स्त्री या पुरुष का कोई जिक्र नहीं किया। आप ही बताइए कि कौन घटना आप से सम्बन्धित घटी थी?"

"घटना कोई असाधारण नहीं थी। उस घनघोर आपत्तिकाल के अनुसार वह बहुत स्वाभाविक और साधारण थी, जिसके लिए कोई उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।"

"शीघ्र कहने की कृपा कीजिए, मेरी उत्सुकता प्रबलतर होती जा रही है।"

"इतना अधीर न होइए। आपके बड़े भैया का कोई अपराध नहीं है और न उनका कोई अशिष्ट अथवा अभद्र व्यवहार ही है, जिससे आपको चिन्तित होना पड़े। उसका सम्बन्ध केवल मेरे व्यक्तित्व से है, और मैं ही उसके लिए उत्तरदायी हूँ।"

"आपके इस कथन से मैं बड़ी आश्वस्त हुई, किन्तु तो भी इस विचित्रता का कारण जानने के लिए मैं उत्सुक हूँ।"

"बात यह है कि जिस रात्रि को तूफान आया था, आपके बड़े भैया और मैं दोनों नृत्यशाला में नृत्य देख रहे थे। तूफान का आगमन सहसा हुआ था और किसी यात्री को उसकी सूचना पहले से नहीं थी, यद्यपि जहाज के अधिकारियों को इसका ज्ञान था, किन्तु शायद उन्होंने उसे साधारण समझकर हमें निरर्थक भयभीत करना उचित नहीं जाना। तूफान का पहला ही आक्रमण इतना भीषण था कि जहाज वृक्ष की गिरी हुई पत्ती की भाँति समुद्र के वक्ष पर अवश होकर घूमने, डूबने उतारने लगा। नृत्यशाला के सभी व्यक्ति पहले ही झोंके में गिर पड़े। और जहाज का तीव्र हलकम्प उन्हें उठने की आज्ञा नहीं दे रहा था। घटना-चक्र ने आपके बड़े भैया और मुझको बिलकुल एक दूसरे के निकट ला दिया। जहाज का वैद्युतिक केन्द्र भी अस्त-व्यस्त हो गया, जिससे घनघोर अन्धकार छा गया। चारों ओर हाहाकार का रव छा गया; हम दोनों

लुढ़कते हुए एक दूसरे के पास गिर पड़े थे। उन्होंने मेरी सहायता करना चाहा, किन्तु मैंने किसी पुरुष की सहायता लेना अनुचित समझा। इसी बीच न-मालूम कौन सा वाद्य-यन्त्र ढुलकता हुआ हमारे सिर के समीप आ गया और उसके निरन्तर आघात हमारे दोनों के सिर-भागों पर होने लगे, जिससे हम दोनों मूर्छित हो गए। जब हमारी चेतना जागी तो मैं अपने शरीर के प्रत्येक अवयव में भयानक पीड़ा अनुभव कर रही थी, और शिर तो फटा जा रहा था। उस समय प्रातःकाल हो गया था और सूर्य क्षितिज पर निकल आया था। आपके बड़े भैया ने पुनः मेरी सहायता उस विपत्ति में करना चाहा, किन्तु मैं अपने को एक नवयुवक के समक्ष हीन दिखाकर अपनी परम्परागत भावना-नारी के अबलापन को दृढ़ बनाना नहीं चाहती थी। मैंने अस्वीकार कर दिया। उनके पूछने पर कि क्या वे मेरे लिए 'स्ट्रेचर' मगवा दें, तो मुझे अपनी अवस्था और कमजोरी पर बहुत क्रोध आया और अपने आप उठकर उनके व्यंग्य को अव्यर्थ कर देने का निश्चय किया, किन्तु मेरा सारा शरीर अकड़ गया था। स्ट्रेचर में जाने की अपेक्षा उनकी सहायता लेना ही—दो बुराइयों में से अपेक्षाकृत कम बुराई को वरण करना स्वीकार किया और उनकी सहायता से डेक पर आ गई। डेक पर खड़े हुए जब हम प्राकृतिक दृश्य देखकर बातें कर रहे थे, सहसा जहाज का कप्तान आ गया और बिना समझे-बूझे एक अभद्र बात कह बैठा।"

"उसने क्या कहा?" सुहासिनी ने उत्सुकता से पूछा।

"उसने मुझे आपके बड़े भैया की पत्नी बना डाला।"

"क्या कहा! बड़े भैया की पत्नी?" कहती हुई सुहासिनी ठठाकर हँस पड़ी। कान्ति के कपोल कर्णमूल तक लाल हो गए।"

"मैं उसकी भूल से बड़ी क्रुद्ध हुई और अपनी केबिन में चली गई। मैं इससे इतनी क्षुब्ध हुई कि दो दिन तक अपनी केबिन से बाहर नहीं हुई और प्रतिज्ञा कर ली कि मैं कभी आपके बड़े भैया की छाया तक से भेंट नहीं दूँगी, और सदैव उनसे दूर-दूर रहूँगी।"

"क्या कप्तान ने उस भयंकर भूल को सुधारा नहीं ?"

"नहीं, उस बेचारे ने लिखित क्षमा-याचना भी की थी, किन्तु मेरा मन इतना खिन्न हो गया था कि मैंने किसी नवयुवक से बात तक न करने की ठान ली, जिसमें आयन्दा किसी को भी वैसी भूल करने का अवसर न मिले।"

"यह तो बड़ी कठिन प्रतिज्ञा आप आजकल के संसार में कर बैठी थीं।"

"बाद में इसकी गुरुता को कई बार अनुभव किया, किन्तु उस समय जैसी विचित्र स्थिति मेरे मन की थी, वह सर्वथा उसके अनुकूल ही थी, पुरुष जाति के प्रति मेरा सारा दोष जाग पड़ा था और मैं किसी प्रकार उनके विद्रूप का शिकार न होना चाहती थी।"

"अच्छा, फिर क्या हुआ ?"

"दो दिन के पश्चात् मैंने जहाज के टेलीफोन से कप्तान को डाक्टर का प्रबन्ध करने के लिए सूचित किया, क्योंकि दो दिन तक मैं एक प्रकार से कुछ भावावेश, कुछ तूफान के कष्टों से पीड़ित रही, और इन्फ्लूएन्जा से आक्रान्त हो गई। डाक्टर को लेकर आपके भाई साहब और कप्तान आए। उन दोनों को एक साथ देखकर मेरे मन का विद्रोह सजग हो गया और मैंने उन दोनों को अपनी केबिन में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी।"

"आपकी अवस्था के अनुकूल ही आपका व्यवहार था। मैं इसके लिए आप को दोषी नहीं ठहरा सकती। फिर क्या हुआ ?"

"डाक्टर के जाने के पश्चात् मैंने नर्स के द्वारा आपके भाई साहब को बुलवा भेजा। बुलाने का कारण यह था कि वे मेरे पास ही की केबिन के यात्री थे, और उनका कुछ झुकाव अपनी ओर लक्ष्य किया, चाहे वह भारतीय होने के कारण हो, अथवा किसी अन्य कारण से हो। मैंने अनुभव किया कि जब तक उन्हें स्पष्ट रूप से रोका नहीं जायगा, वे शायद आलाप अथवा सहायता करने की चेष्टा से विरत नहीं होंगे। उनके आने पर मैंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि वे कभी मुझसे परिचित होने की बात न करें और न कोई ऐसा आचरण ही, संकेत अथवा बातों में करें जिससे किसी को अनुमान करने का अवसर मिले कि

हम दोनों में थोड़ा सा भी परिचय है। मैं स्वीकार करती हूँ कि मेरा व्यवहार अत्यन्त अशोभनीय था परन्तु मेरी भावनाओं की रक्षा का दूसरा कोई उपाय भी न था। मैंने उनको अपने सामने कभी न होने का आदेश तक दे डाला। मैं समझती थी कि हम दोनों न मालूम कहाँ के जाने वाले यात्री हैं, जो घटना-चक्र से एक साथ हो गए हैं, और यह साथ केवल जहाज की यात्रा तक ही सीमित रहेगा। उनसे या यों कहिए कि अपने विचारों से पीछा छुड़ाने के लिए बिल्कुल अपरिचितों जैसा व्यवहार करने के लिए कहा।"

"तो क्या उन्होंने आपके कथन को कभी अमान्य किया ?"

"नहीं, बल्कि वे आज तक उसका पालन कर रहे हैं। अपनी स्वेच्छा से वे कभी मेरे सामने नहीं पड़े, बल्कि जब-जब घटना-चक्र उन्हें मेरे समीप या मेरे सामने ले आया तो वे मेरे सामने से बिल्कुल अपरिचितों की भाँति हट गए। एक बार तो उनको अपनी इच्छा न रहते हुए भी मेरी सहायता करनी पड़ी।"

"वह कैसे ?" सुहासिनी ने सन्तोष की गहरी साँस लेकर कहा।

"जब जहाज मोम्बासा पहुँचा तो मेरी असावधानता से पास-पोर्ट मेरे कोट की जेब से बाहर गिर पड़ा। कस्टम के कर्मचारियों ने मेरे सम्बन्ध में कप्तान से पूँछ-ताँछ करने के लिए मुझे रोक लिया। उसी समय कप्तान के साथ आपके बड़े भैया भी आ गए, और मुझे वहाँ देखकर वहाँ से जाने लगे; किन्तु उन्हीं को पासपोर्ट ढूँढ़ने के लिए मेरी केबिन में भेजा गया। इससे मुझे बड़ा दुख और पश्चात्ताप हुआ, किन्तु मैं निरुपाय थी। उन्होंने मेरा पासपोर्ट मेरी कैबिन से लाकर मुझे दिया, तब जाकर मेरी निष्कृति हुई।" कहकर कान्ति हँसने लगी। सुहासिनी ने भी उसमें योग दिया।

"फिर आज दोपहर को जब आपसे भेंट हुई थी, तब उसके पहले एक घटना और हो गई, जिसके विषय में अपना आगामी व्यवहार निश्चय करने के लिए एकान्त में अनुसन्धानशाला के उद्यान में आई थी।"

"वह क्या घटना थी ?" सुहासिनी की उत्सुकता पुनः जाग्रत हुई।

"यहाँ आकर मुझे डाक्टर हाक से मालूम हुआ कि भारत से मेरी भाँति

अनुसन्धानशाला में विष पर अनुसन्धान करने के लिए एक अन्य भारतीय आने वाले थे, जो अभी तक नहीं आए हैं। डाक्टर हाक ने उनके विषय में पूछा, किन्तु जब मैं उन्हें कोई समुचित उत्तर नहीं दे सकी तो उन्होंने बड़ा विस्मय प्रकट किया और कहा कि यह कैसे संभव है कि मुझको उनकी कोई जानकारी नहीं है जबकि यात्रा एक ही जहाज से करवाने का प्रबन्ध विश्व-संघ द्वारा किया गया था और उनकी केबिनों का संख्यांक ९९ तथा १०० था। तुरन्त मेरे मस्तिष्क में यह विचार आया कि मैंने जिनके साथ इतनी कटुतापूर्ण अभद्र व्यवहार अनावश्यक रूप से किया था, वह भी मेरी ही इस अनुसन्धान-शाला के छात्र थे। इससे मुझे मर्माहत दुःख हुआ। मैं बार-बार सोचती थी कि अब जब वे भी यहाँ आ जायँगे तो मेरे सम्बन्ध में वे क्या सोचेंगे? किन्तु जब दो सप्ताह तक वे नहीं आए तब मन कुछ आश्वस्त हुआ कि वे कोई दूसरे व्यक्ति हैं। एक प्रकार से मैं निश्चिन्त हो गई। मेरे मन से विगत घटनाओं की छाया तक मिट गई और पश्चात्ताप की जो भावना उदय हुई थी, लुप्त हो गई। मैं अपने काम में दत्तचित्त होकर व्यस्त हो गई।"

"आपका मनस्ताप मिट जाना बिल्कुल स्वाभाविक था" सुहासिनी ने प्रोत्साहित करते हुए कहा।

"हाँ, मेरे मन की सारी दुश्चिन्ताएँ मिट गई थीं, किन्तु आज जब एक विषय पर परामर्श करने के लिए डाक्टर हाक के कमरे में गई तो वहाँ पर एक पुरुष को बैठे देखकर वापस लौटने लगी, तब डाक्टर हाक ने बुलाते हुए कहा कि लौटने की कोई जरूरत नहीं है और वे व्यस्त नहीं हैं। मैं वापस उनके कमरे में गई और जब उस व्यक्ति ने पीठ फिराकर मुझे देखा तो उसका चेहरा देखने को मिला। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही, जब मैंने उस व्यक्ति को पहचाना कि वे मेरे वही सहयात्री हैं जिनको मैंने अपने सामने कभी पड़ने के लिए रोका था—अर्थात् वह आपके बड़े भैया थे। मैं इतनी घबरा गई जितना कोई किसी भयंकर जन्तु के सामने पड़ जाने से घबरा सकता है। उलटे पैरों मैं वहाँ से भागी और विचारों को संयत करने के लिए उद्यान में चली गई।"

"किन्तु नियति ने वहाँ पर भी आपको जा घेरा। हम लोग वहाँ इस प्रकार

मिल गए जैसे पहले से ही एक चतुर खेलाड़ी ने खेल जमा रखा हो। आपको भारतीय वेश में देखकर आपसे मिलने, तथा घनिष्ठता बढ़ाने की प्रवृत्ति उदय हुई, और आपको घेर-घार कर यहाँ लाने में सफल हुई। कहिए, इसे नियति न कहिएगा तो फिर क्या कहिएगा?"

"अब तो यही बाध्य होकर कहना पड़ता है कि आदि से अन्त तक नियति मेरे साथ कुचक्र रचती रही है। मैं स्वप्न में कभी कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि घटना-चक्र मुझे इस प्रकार फिर अपदस्थ करने के लिए यहाँ घसीट लावेगा।"

तो यह कहिए कि आप जितना बड़े भैया से दूर भागती गईं, नियति उतना ही आपको उनके समीप घसीटती गई। कहिए, अब आपका क्या विचार है?"

"कैसा विचार?"

"वह यह कि क्या अब भी उनकी छाया से दूर रहेंगी, अथवा मन से झिझक दूर कर सहकारी की भाँति मिलेंगी? दूसरे शब्दों में, क्या आप अब भी अपना पुराना आदेश बनाए रखना चाहती हैं, अथवा उनको अपने सामने आने के लिए उसमें संशोधन कर अनुमति प्रदान करती हैं?"

"जिन परिस्थितियों के कारण मैंने वे सब बातें कही थीं, वे तो अब परिवर्तित हो गई हैं, इसलिए……।"

"ठीक है, आप उनको अपने सामने आने की अनुमति देती हैं, इसके लिए मैं धन्यवाद देती हूँ। अब जाकर उन्हें बुला लाऊँ?" सुहासिनी ने उठते हुए कहा।

कान्ति ने कोई उत्तर नहीं दिया और सुहासिनी ने विश्वनाथ के पास जाकर कहा—"आइए बड़े भैया, कान्ति जी ने अपने पुराने आदेश में संशोधन करके आपको उनके सामने आने की अनुमति प्रदान कर दी है। इतना बड़ा रहस्य आप छिपाए बैठे थे?"

विश्वनाथ ने झेंपते हुए कहा—"मेरे अपराध का पता लगा? डाक्टर हाक

को भी उनके इस प्रकार के अद्भुत व्यवहार से मेरी चारित्रिक निर्मलता के सम्बन्ध में सन्देह हो गया था।"

"अब सब निवारण हो जायगा। आपका सबसे बड़ा अपराध यही था कि आप पुरुष हैं, और पुरुष अनादि काल से स्त्री-जाति के अधिकारों को कुचलता आया है। इसी भावना की प्रतिकूलता में, अथवा स्त्री-जाति की भी सत्ता स्थापित करने के प्रयत्न में आपको ऐसा दंड दिया गया था।"

"किन्तु अब भी तो वही परिस्थिति है जो पहले थी, उसका कोई मोचन तो हुआ नहीं।"

"अब मान-अभिमान की बातें न कीजिए। जहाज के कप्तान महाशय कौन सज्जन थे, जिन्होंने इतनी भयंकर भूल की थी।"

"वे भी कानपुर जिले के रहनेवाले हैं, अब जब उनका जहाज मोम्बासा आयेगा, तब उनसे भेंट करने के लिए हम सब लोग चलेंगे। पिताजी से उनका साधारण परिचय तो मैंने उसी दिन करवा दिया था, जब मैं जहाज से उतर कर पिताजी के चिकित्सालय में गया था। अब जब तुम्हारी भी उनसे मिलने की इच्छा है, तो अवश्य मिलाऊँगा।"

"हाँ, मैं भी मिलने के लिए आतुर हूँ। उन्हें सभ्यता तो सिखानी ही पड़ेगी। आइए चलें, इस झकझक में चाय भी ठंडी हो गई होगी। दुबारा बनाना पड़ेगा।'

"क्या बात है, यह गड़बड़झाला और गोलमाल कुछ समझ में नहीं आता।" डाक्टर आनन्द ने कुछ खिन्न होकर पूछा।

"पीछे सविस्तार बताऊँगी। अभी चालिए, हम लोग सम्मानित अतिथि के साथ चाय पिएँ।" कहती हुई वह विश्वनाथ को ढकेलती हुई ले चली।

— १६ —

कान्ति और सुहासिनी की घनिष्ठता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। दोनों की भेंट प्रायः नित्य हुआ करती थी और वे दोनों एक दूसरे के समीप आ रही थीं।

विश्वनाथ अब भी उससे दूर ही रहने की चेष्टा करते थे। वे दोनों इसको लक्ष्य करती थीं, किन्तु इस विषय पर उनका आलाप नहीं होता था।

एक रविवार को प्रातःकाल सुहासिनी कान्ति को भोजन का निमन्त्रण देने के लिए उसके आवास-स्थान पर जाने का विचार करने लगी। विश्वनाथ के कमरे में जाकर उसने कहा—"भैया, आइए, चलिए घूम आवें।"

विश्वनाथ अपने परीक्षणों का निष्कर्ष लिखने में व्यस्त थे, उन्होंने उसकी ओर बिना देखे हुए कहा—"मैं अभी कहीं न जा सकूँगा। देवराज और पिता जी को अपने साथ क्यों न ले लो।"

"आखिर इतनी तल्लीनता से क्या लिख रहे हो?"

"यदि बाहर घूमने जाने का विचार छोड़ सको तो मैं बताऊँ कि क्या लिख रहा हूँ। एक बड़ी मनोरंजक घटना है।"

"वह क्या? अब तो सुनकर ही मैं जाऊँगी। कान्ति को भोजन का निमंत्रण देने जा रही थी और आपको साथ ले जाना चाहती थी।"

"तब तुम निमन्त्रण दे आओ, मैं दो-तीन घन्टे तक कहीं नहीं जा सकूँगा।"

"क्या तुम्हारा लिखना दो-तीन घन्टे तक रहेगा?"

"हाँ, संभव है, इससे भी अधिक समय लग जाय।"

"तब मैं जाकर निमंत्रण दिए आती हूँ।"

"पिता जी को अपने साथ क्यों नहीं ले जाती?"

"पापा एक रोगी को देखने गए हैं। यहाँ पर भी उन्हें मरीजों से पीछा छुड़ाना कठिन हो गया है। जब देखो, तब कोई न कोई बुलाने के लिए आ जाता है।"

"तब तो 'ब्यूक कार' वे ले गए होंगे। मेरी गाड़ी ले लो।"

"वह तो ले लूँगी, किन्तु उसके चलाने की अभ्यस्त नहीं हूँ।"

"चलाते-चलाते अभ्यस्त होगी। गाड़ी नई है, नदी में जिस प्रकार नाव

जाती है, उसी प्रकार तो वह सड़कों पर तैरती हुई निःशब्द जाती है । फिर तुमको आपत्ति क्या है ?"

"आप भी चलते तो ज्यादा अच्छा होता । कान्ति जी से आपका पुराना परिचय है, आपके अनुरोध को वह अवश्य मान लेतीं ।" कहती हुई सुहासिनी मुस्कराई ।

"इस विषय में तुमको अब शिकायत तो न होना चाहिए । मुझसे अधिक तुम्हारे साथ घनिष्ठता हो गई है ।"

"किन्तु आपके स्थान पर मैंने अधिकार नहीं जमाया है । वह उसी तरह सुरक्षित है । हाँ, जब वे मेरी भाभी हो जायँगी, तब जरूर अधिकार जमाने की चेष्टा करूँगी । अभी दाल-भात में मूसरचद नहीं बनूँगी ।"

"कैसी बातें बकती हो । पुरुषों से घृणा करनेवाली स्त्री से कौन विवाह करके अपनी मिट्टी पलीद कराना चाहेगा ?"

"जिसकी मिट्टी पलीद नहीं है, वही । आज के भोज में यह बात निश्चित कर लेना चाहती हूँ ।"

"तब मेहरबानी करके उन्हें निमंत्रित करने का कष्ट न उठावें ।"

"क्यों, क्या विवाह नहीं करना चाहते ?"

"आजकल तुमको क्या हो गया है ? जब देखो, तब विवाह की झकझक लगाए रहती हो ।"

"भई, मेरा क्या अपराध ? सबसे पहले तो आपके बन्धुवर कप्तान सुरेश चन्द्र ने ही कान्तिजी को आपकी मिसेज बनाया था । मैंने माना कि वह उस समय भूल थी; किन्तु क्या भूल को वास्तविकता में परिणत नहीं किया जा सकता ? आपको क्या आपत्ति है ?"

"तुम मुझे पढ़ने-लिखने नहीं दोगी । मैं छात्रालय चला जाऊँगा ।"

"शुकदेव मुनि की भाँति क्या संसार से वैराग्य लेने का विचार कर रहे हैं; किन्तु मुझे भय है कि कहीं कान्तिजी वहाँ भी रंभा की भाँति न पहुँच जायँ ।"

"तुम मुझे नहीं लिखने दोगी ?"

"रविवार छुट्टी का दिन होता है। उस दिन तो कम से कम अवकाश ग्रहण करना चाहिए। चलिए शुकदेव मुनि, हम लोग रंभा के घर हो आवें।"

"तुम जब नहीं पढ़ने-लिखने दोगी, तब...।"

"हाँ, अब आप ठीक बातें कर रहे हैं। चलिए।"

"विश्वनाथ ने लेखनी रख दी और उठते हुए कहा—"चलो, शैतान से कहीं पिंड छूटता है।"

"कितनी जल्दी तैयार हो गए ! आज पापा से कहकर सब निश्चय कर डालूँगी। बगैर भाभी के घर सूना-सूना मालूम होता है।"

"देखो ऐसी कोई दुष्टता न कर बैठना। यदि कहीं तुम्हारे मनोभावों का कुछ भी आभास उसको मिल गया, तो इतना जान लो, मित्रता से हाथ धो बैठोगी।"

"क्या कान्तिजी विवाह नहीं करेंगी ? हाँ यदि जन्म-भर कुमारी रहना चाहें, तो दूसरी बात है, नहीं तो मेरे बड़े भैया से अधिक उपयुक्त वर उन्हें नहीं मिलेगा; यह मैं शर्त लगा सकती हूँ।"

"शर्त में बुरी तरह हारोगी। बहिन की दृष्टि में भाई का मूल्य सबसे अधिक होता है। वह संसार के किसी मनुष्य को अपने भाई से अधिक योग्य नहीं जानती।"

"ऐसा पक्षपात मैं नहीं करती। हीरा सदैव हीरा ही कहा जायगा, चाहे उसको कोई मूर्ख न पहचाने।"

"अच्छा भई, चलती हो या खड़े-खड़े बहस करोगी ?"

"अच्छा आइए।"

सुहासिनी और विश्वनाथ घर से निकलकर गैरेज तक आए और गाड़ी निकालते हुए विश्वनाथ ने कहा—"तुम गाड़ी चलाओ, मैं शोफर नहीं बनूँगा।"

"दुलहन के घर दूल्हा कहीं शोफर बनकर जाता है ?" गाड़ी तो मुझे चलाना ही होगा, यह पहले से मैं जानती हूँ।"

"देखो, मैं पुनः सावधान करता हूँ कि कहीं अनजाने ऐसी कोई बात उसके सामने मुँह से निकल गई तो···।"

"रहने दीजिए, मैं उसका दण्ड भुगत लूँगी। अब आप पर कोई आँच नहीं आने पावेगी।"

कहते हुए सुहासिनी ने स्टियरिंग सँभाला और विश्वनाथ उसके समीप वाली सीट पर बैठ गए। मोटर निःशब्द आगे बढ़ी।"

प्रायः देखा गया है कि नई गाड़ी चालक को तेज चलाने के लिए उत्साहित करती है। यद्यपि अभी तक राज्य-पथ पर अधिक भीड़ नहीं थी, तथापि सर्वथा जन-शून्य नहीं था। रविवार होने से ईसा मतावलम्बी ठाठ-बाट से गिरजाघरों को जा रहे थे। इसी समय एक गली से एक साइकिल सवार तेजी से निकला। सुहासिनी की दृष्टि उस पर पड़ी। उसको बचाने के लिए उसने मोटर को एक ओर झटके के साथ मोड़ा, किन्तु एक पथारोही से वह टकरा गई। सुहासिनी ने तुरंत ब्रेक लगाया, गाड़ी उसी ठौर स्थिर हो गई, किन्तु पथारोही उसकी लपेट में आ ही गया था। सुहासिनी और विश्वनाथ उतर कर उस अभागे दबे हुए पथिक को बाहर निकालने की चेष्टा करने लगे। मोटर का पिछला पहिया उसके शिर के समीप जम जाने से उस पर से पार तो नहीं हुआ था, किन्तु वह रक्त से लथ-पथ अचेत हो गया था। पलक मारते भीड़ इकट्ठा हो गई और प्रायः सभी लोग उसको बुरा-भला कहने लगे। विश्वनाथ ने उसके हृदय की धड़कन की परीक्षा की और उसे जीवित पाकर वे कुछ आश्वस्त हुए और उन्होंने अन्य पथिकों की सहायता से उसे पिछली सीट पर लेटाकर सुहासिनी से उसकी देख-रेख करने के लिए कह स्वयं मोटर लेकर अस्पताल की दिशा में अग्रसर हुए। उनके जाने के पश्चात् पथिक अमीरों की आलोचना में व्यस्त हो गए।"

अस्पताल जाते-जाते पथिक की चेतना जाग्रत हुई और उसने सुहासिनी की ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा। वह दुख और क्षोभ से मृत-प्राय हो रही थी। वह दृष्टि न मिला सकी और न कुछ पूछने का साहस कर सकी।

अस्पताल पहुँच कर उसकी परिचर्या का प्रबंध किया गया। परीक्षण मे ज्ञात हुआकि उसके अधिक चोट नहीं लगी, और न कोई हड्डी टूटी है। दाहिनी पखौरा और दाहिनी जाँघ पर रगड़ने से घाव हो गए थे। घावों को साफ कर पट्टियाँ बँध जाने पर विश्वनाथ ने डाक्टर से कहा—"ईश्वर को धन्यवाद है कि ज्यादा चोट नहीं आई। आपका क्या अनुमान है कि वह कितने दिनों में स्वस्थ हो जायगा।"

"अधिक से अधिक एक सप्ताह में।"

"इस रोगी के सम्बन्ध में जो व्यय होगा, वह हम लोग देंगे। मैं डाक्टर हाक की अनुसन्धानशाला का विद्यार्थी हूँ, और मोम्बासा के डाक्टर आनन्द के साथ हम लोग यहाँ रहते हैं।"

"डाक्टर आनन्द के आप कौन हैं?" डाक्टर ने आदर की दृष्टि से देखते हुए पूछा।

"ये उनकी पुत्री हैं और मैं उनके मित्र का पुत्र हूँ।"

"इसी बहाने आपसे मिलने का सौभाग्य हुआ। डाक्टर आनन्द के सम्बन्ध में हम लोग बहुत दिनों से सुनते आ रहे हैं, किन्तु मिलने का कोई अवसर नहीं आया। हमारे अस्पताल से निराश रोगी प्राय: उनकी शरण में जाते हैं और आश्चर्य की बात यह है कि उनमें से अधिकांश अच्छे हो जाते हैं। उनकी उपचार विधि जानने के लिए हम सभी उत्सुक हैं।"

"जब आपको सुविधा हो तब आप उनसे मिल सकते हैं। यहाँ पर आकर भी उन्हें अवकाश नहीं मिलता।"

"यहाँ के लोग, विशेषकर आदिम निवासी तो उन्हें जादूगर मानते हैं। शायद आपको ज्ञात होगा कि यहाँ के निवासी आधिदैविक बातों पर अधिक विश्वास करते हैं और कभी-कभी तो यह मालूम होता है कि उनके कथन में सत्यता है।"

"आपका कथन शायद यह है कि वे आधिभौतिक और आधिदैविक बातों का प्रदर्शन भी करते हैं।"

"हाँ, कुछ ऐसा ही है। जिन घटनाओं का वैज्ञानिककरण समझ में न आवे, उन्हें आधिभौतिक अथवा आधिदैविक ही कहना पड़ेगा।"

"आप तो यहाँ के निवासी हैं, ऐसी आधिभौतिक या आधिदैविक बातें अवश्य देखी-सुनी होंगी।"

"हाँ, सुना अवश्य है, किन्तु अभी तक देखा नहीं है। मेरा मित्र कोलूलू यहाँ के आदिम निवासियों की एक जाति का पुरोहित या उनका डाक्टर है। वह यंत्र-तंत्र में विश्वास करता है, और उसमें कुछ अधिकार भी रखता है। वह 'मोम्बा' जाति के सर्पों के सम्बन्ध में एक अनोखी कहानी बताता है।"

"मोम्बा जाति के सर्पों के विषय में?"

"जी हाँ, 'मोम्बा' जाति के सर्प को यहाँ के निवासी देवता मानते हैं और उसकी पूजा करते हैं। मेरा मित्र कोलूलू इन्हीं मोम्बा सर्पों का पुजारी है।

"वह कैसे उनकी पूजा करता है?"

"वह तो अनेक प्रकार के उपाख्यान बताता है, और कहता है कि किसी दिन पूर्णिमा की रात्रि को उसके गाँव चलकर अपनी आँखों उनके आश्चर्यजनक व्यवहार को हम देख सकते है।"

"वह क्या?"

"विस्तार के साथ वह कुछ नहीं बताता, सिर्फ यह कहता है कि स्वयं चलकर देख लो।"

"आखिर वह क्या दिखलाने को कहता है?"

"अपनी पूजा की क्रिया और यह कि उसके गाँव के निवासी कैसे सामूहिक रूप में मोम्बासा सर्पों की पूजा करते हैं।"

"यह तो बड़ी विचित्र बात होगी। अवश्य ही मैं देखना चाहूँगा। मैं इस जाति के सर्पों का अध्ययन कर रहा हूँ। अभी तक इसके सम्बन्ध में अन्वेषण नहीं हो सके हैं, क्योंकि इसको जीवित पकड़ना एक प्रकार से असंभव हो रहा है।"

"नहीं, ये जीवित नहीं पकड़े जा सकते। प्राय: ये अपनी दम्पति के साथ ही देखे जाते हैं। इससे इनका पकड़ना साक्षात् मृत्यु से खेलने की भाँति है।"

"इनके काटे हुए केस आपके अस्पताल में परिचर्या के लिए आते हैं?"

"इनसे काटा हुआ व्यक्ति तत्क्षण मर जाता है। इसलिए यहाँ उपचार के लिए आने का प्रश्न ही नहीं उठता।"

"आपने इस सर्प से डसा हुआ कोई केस देखा है?"

"हाँ, एक-आध देखने में आया है। अभी तीन-चार वर्ष पहले ही देखा था। वह हमारे बड़े साहब का खानसामाँ था। वह यहाँ का आदिम निवासी था और उसके पिता ईसाई हो गए थे। ईसाई हो जाने से वह उन बातों पर विश्वास नहीं करता था, जिन पर उसकी जाति के लोग करते हैं। यहाँ के निवासी कभी 'मोम्बा' सर्प को देखकर उसके मारने का प्रयत्न नहीं करेंगे, वरन् उसको देखते ही भूमिष्ठ दण्डवत् करते हैं। बड़े आश्चर्य की बात यह है कि उनके ऐसा करने पर वे उसे नहीं काटते। अधिकतर तो वे अपनी राह चले जाते हैं और कभी-कभी वे उसके समीप आकर उसके साथ खेलने लगते हैं। उसके शरीर पर कुछ देर रेंगते रहते हैं। कभी उसका सिर सूँघते हैं, कभी उसके पैर चाटते हैं, किन्तु काटते नहीं, और फिर इस प्रकार खेलकर चले जाते हैं।"

"उस बेचारे की भय से बड़ी बुरी हालत होती होगी।"

"यह तो निश्चय है कि वह उस समय साक्षात् मृत्यु से खेलता है।"

"निस्सन्देह जब सुनने मात्र से ही हमें रोमाञ्च हो रहा है, तब उसका क्या हाल होता होगा, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती।"

"कोलूलू कहता था कि ऐसा अवसर आ जाने पर निश्चेष्ट पड़े हुए एक यंत्र का जप करने से 'मोम्बासा' उससे प्रभावित होकर काटने में असमर्थ हो जाता है।"

"हाँ, शायद यह विश्वास ही उस समय काम देता है। हाँ, आप अपने

बड़े साहब के खानसामों की बात बता रहे थे। उसको शायद वह मंत्र नहीं मालूम होगा, इसलिए उसको मोम्बासा ने डस लिया।

"जो कुछ भी बात हो, वह तो मालूम नहीं, किन्तु ऐसा सुना है कि वह उसके मारने की चेष्टा कर रहा था। एक सर्प को अकेले घूमते देखकर अपने मालिक की बन्दूक ले आया और उस पर आक्रमण किया। वह सर्प मर गया अवश्य, किन्तु बन्दूक चलाने के शब्द के साथ ही उसका साथी, जो न-जाने नर था या मादा थी, न-मालूम कहाँ से सहसा प्रकट हो गई और मारने वाले को डस लिया। उसके डसने से ही वह एक चीत्कार के साथ गिरा तथा तत्क्षण मर गया।"

"उसको काटने के पश्चात् वह दूसरा सर्प कहाँ गया ?"

"सुनते हैं कि वह कुछ देर तक वहाँ रहा, और बार-बार अपने साथी को सूँघता, और एक विचित्र प्रकार का भयावना शब्द करता था। बँगले के सभी निवासियों का भय से बुरा हाल था। महा अनिष्ट की आशंका सभी कर रहे थे। तब एक दूसरे आदिम निवासी ने बताया कि यदि इसको भी मारा न जायगा तो वह इस बँगले के सभी रहने वालों को यथा अवसर काटेगा। किन्तु मारने के लिए कोई तैयार न होता था। अन्त में बड़े साहब ने स्वयं उसे मारा।"

"उसके मरने पर कोई दूसरा सर्प नहीं आया?"

"नहीं, प्रायः ये दो ही एक साथ रहते घूमते देखे गए हैं।"

"उन मरे हुए सर्पों को फेंक दिया गया होगा?"

"नहीं, उनके शव यहाँ के अजायबघर में रखवा दिए गए हैं।" केवल एक यही जोड़ा उसमें है, क्योंकि इनको मारने का साहस कोई नहीं करता।"

"और उस मारने वाले खानसामा के शव को क्या परीक्षण के लिए अस्पताल नहीं लाया गया?"

"लाया गया था, किन्तु एक बड़ी आश्चर्यजनक बात देखने में आई थी।"

"वह क्या?"

"यह सदैव देखा जाता है कि सभी प्रकार के विषों की प्रतिक्रिया शरीर को काला कर देती है। यह मैं पहले ही बता चुका हूँ कि यह खानसामाँ यहाँ का आदिम निवासी होने के कारण मेरी ही भाँति श्यामांग था। इतने विषैले सर्प का विष उसके शरीर में प्रवेश होने से उसका शरीर अधिक कृष्णांग होना स्वाभाविक होता, परन्तु उसका शरीर घोर काला होने के स्थान पर कुछ-कुछ गौर वर्ण का हो गया था, और दंशस्थान के आस-पास का हिस्सा तो श्वेतांगों की भाँति श्वेत हो गया था।"

"श्वेत हो गया था?"

"हाँ बिल्कुल श्वेत हो गया था।"

"यह तो बड़ी आश्चर्यजनक घटना है। उसके शव परीक्षण से और क्या ज्ञात हुआ?"

"उसका शव परीक्षण मैंने ही किया था। दंश स्थान को चीर-फाड़ करते समय उससे जल की छीटें इस प्रकार बिखरी जैसे किसी पानी भरे स्थान काटने से उड़ती है। एक-दो बूँदे उछलकर मेरे रबड़ के दस्तानों के ऊपर खुली हुई चमड़ी पर गिर गई। उस समय मैंने न उनको गिरते देखा, और न कोई ध्यान दिया। थोड़ी देर में जहाँ बूँदें गिरी थी, वहाँ चुन-चुनाहट मालूम हुई। पहले तो साधारण रूप से उस स्थान को खुजलाया, किन्तु जब खुजलाहट बढ़ती गई तो कई प्रकार के लोशनों से धोया। फिर भी शान्ति नहीं मिली। उसी दिन शाम तक एक फफोला उठ आया, और दो दिन बाद वह फूट गया। उसके फूटने से काला पानी बहा, और वह स्थान श्वेत हो गया। देखिये, यहीं पर दो बूँदे गिरी थी। अभी तक त्वचा पर दो श्वेत विन्दु हैं।"

विश्वनाथ और सुहासिनी ने साश्चर्य देखा कि उस डाक्टर की कोहनी के ऊपरी भाग में दो श्वेत चिह्न हैं, यद्यपि उनके चतुर्दिक त्वचा श्याम रंग की है।

सुहासिनी ने पूछा—"आप इस रङ्ग परिवर्त्तन के विषय में क्या अनुमान लगाते हैं।"

"यह तो निश्चय है कि यह मोम्बासा के विष के प्रभाव से हुआ है, किन्तु यह चिह्न श्वेत क्यों है, इस सम्बन्ध में मैं कुछ अनुमान नहीं लगा सका हूँ। शायद विष के प्रभाव से यह परिवर्त्तन घटित हुआ है।

" है तो यह बड़ी विचित्र बात !"

"हाँ, निश्चय ही विचित्र बात है। समस्त संसार ही अद्भुत-अद्भुत बातों का संग्रहालय है। किसी बात का पता हम जब लगा लेते हैं, तब उसकी विचित्रता समाप्त हो जाती है, और जब तक उसका भेद नहीं मालूम होता, तब तक हम कभी उन्हें आधिभौतिक और कभी आधिदैविक, समझते रहते हैं।"

"हाँ, सत्य तो यही है। सभी वस्तुओं-चेतन तथा जड़ का निर्माण अणु परमाणुओं से होता है। अब मनुष्य विज्ञान के उस मोड़ पर पहुँच गया है, जहाँ से अणु शक्ति का चमत्कार प्रारम्भ होता है। यद्यपि यह सत्य है कि अभी उसने उसकी संहारक शक्ति को ही ग्रहण किया है, तथापि उसके निर्माण के तत्वों की ओर जब वह अपने अनुसंधान करेगा तो जो सृष्टि अभी तक गोपनीय बनी हुई है, अथवा जड़ तथा चेतन के बीच में दीवाल खड़ी हुई है, वह ढह जायगी। स्वयं मानव विधाता के रूप में अवतरित होगा। जिस स्वर्ग की कल्पना अभी तक मनुष्य करता आया है वह उसे साकार बनाकर इसी धरातल पर उतार लायेगा।"

"आपकी धारणाएँ कब साक्षात्कार होंगी, कौन कह सकता है।"

"ज्ञान की अन्तिम परिधि नहीं है। हमारे वैज्ञानिकों का कथन है कि प्रत्येक क्षण ब्रह्माण्ड का प्रसार हो रहा है। और उसी भाँति ज्ञान का प्रसरण भी हो रहा है। मेरा तो ऐसा विचार है कि मानव का मस्तिष्क भी उसी अनुपात से प्रसरित होता जायगा और वह एक से एक अद्भुत, अबोधगम्य बातों का रहस्य उद्घाटन करने में समर्थ होगा। काल और स्थान का भेद भी शायद मिटाने में उसे सफलता मिले।"

अस्पताल का चपरासी इसी समय वहाँ आया, और उसने कहा कि बड़े साहब उन्हें बुला रहे हैं। सन्देश सुनने के पश्चात् उसने बिदा लेते हुए

कहा—"आज संध्या समय मैं डाक्टर आनन्द से मिलने आऊँगा। आप लोगों से अनायास भेट हो जाने से मैं अपने को बड़ा भाग्यवान् समझता हूँ।"

विश्वनाथ और सुहासिनी ने उसको निमंत्रित करते हुए बिदा ली।

अस्पताल के बाहर आकर विश्वनाथ ने कहा—"क्या अब भी कान्ति जी को निमन्त्रित करने की इच्छा है!"

सुहासिनी ने मोटर पर बैठते हुए कहा—"अब कोई उत्साह इस समय नहीं है।

विश्वनाथ मुस्कराए और स्टीयरिंग सँभालते हुए उन्होंने गाड़ी घर की ओर मोड़ दी।

—१८—

जब डाक्टर आनन्द को मोटर दुर्घटना का हाल मालूम हुआ, तब उन्होंने आहत व्यक्ति को अपने घर लाकर उसके उपचार करने की उत्सुकता प्रकट की। सुहासिनी तथा विश्वनाथ को इसमें कोई आपत्ति नहीं थी। उसी संध्या को वे उसको अपने चिकित्सालय में उठा लाए। उसके साथ वह डाक्टर भी उनके घर आया जिससे प्रातःकाल सुहासिनी तथा विश्वनाथ का आलाप हुआ था। डाक्टर का नाम था ऐडम गामा को। अन्य आदिम निवासियों की भाँति वह भी ईसाई था, और तीन पीढ़ी पूर्व उसके प्रपितामह एक खदान में कुली का काम करते थे। धीरे-धीरे उसकी घनिष्ठता गोरों के साथ बढ़ती गई, और वह ईसा का अनुयायी होकर पश्चिमीय सभ्यता अपनाने लगा। उसके पुत्र, पौत्र ने क्रमशः उन्नति की, और प्रपौत्र ऐडत गोमाकोने इङ्गलैंड जाकर विद्याध्यान किया, तथा डाक्टरी की सर्वोच्च परीक्षा उत्तीर्ण कर नैरोबी के सरकारी अस्पताल में सहायक सार्जन होकर काम करने लगे।

आहत व्यक्ति ने अपना नाम बताया गोपाल को मीयाटा। यह नाम सुनकर विश्वनाथ को आश्चर्य हुआ। इस खिचड़ी नाम का कारण उनकी

समझ में नहीं आया। डाक्टर आनन्द से पूछने पर उन्होंने बताया कि शायद इसकी माता ने किसी भारतीय से प्रेम सम्बन्ध किया था, और उसी के परिणाम-स्वरूप इसका जन्म होने से यह खिचड़ी नाम दिया गया है। गोपाल कोमियाटा का चेहरा दाढ़ी मूँछ से भरा होने के कारण बड़ा रोबीला था, और उसके स्नायु भी मॉसल तथा हृष्ट-पुष्ट थे। पूँछने पर ज्ञात हुआ कि वह जीविका उपार्जन के लिए नैरोबी आया हुआ दो दिनों से नौकरी खोज रहा था। डाक्टर आनन्द ने उसको अपने यहाँ नौकर रखने के विचार से सुहासिनी और विश्वनाथ से पूछा—"यदि गोपाल को मियाटा अपने घर में नौकर रख ले तो कैसा रहेगा?"

सुहासिनी ने स्वीकारोक्ति में सिर हिलाया।

डाक्टर आनन्द ने विश्वनाथ का अभिमत जानने के उद्देश्य से कहा—"क्यों विश्वनाथ, तुम्हारा क्या विचार है? मैं समझता हूँ कि हमें कुछ प्रायश्चित करना चाहिए। वह हमारी मोटर से घायल हुआ है, इसलिए अपने यहाँ नौकर रख कर अपने अपराध का कुछ प्रायश्चित भी कर लेंगे, इसके अतिरिक्त हमें एक नौकर की आवश्यकता भी है।"

"इसमें मुझे क्या आपत्ति हो सकती है किन्तु इसके पास कोई प्रमाण-पत्र नहीं है।"

"इसका नाम ही प्रमाण-पत्र है। यह अर्ध भारतीय है। इसके अतिरिक्त न मालूम क्यों इसकी ओर मेरा मन आकृष्ट हो रहा है। ऐसा मालूम होता है कि यह हमारा पूर्व परिचित है। इसकी मुखाकृति कुछ-कुछ पहचानी मालूम पड़ती है, केवल घनी दाढ़ी और मूँछें धोखे में डालती हैं।"

"किसके धोखे में?"

"यही तो कह नहीं सकता। उसकी आँखों की चमक ठीक वैसी ही है, जैसी तुम्हारे पिता की थी।"

"पापा को तो सदैव सावन की हरियाली सूझती है।" सुहासिनी ने सव्यंग्य कहा।"

"इसी से तो मैं अपने विचारों को प्रकट करते हुए डरता हूँ। सुहास मेरा उपहास करने लगती है।"

"आप भी हर एक आदमी में अपने मित्र का रूप-रंग, आँखों की चमक आदि देखने लगते हैं। कोई भारतीय नाम जहाँ सुना आपकी कल्पना के घोड़े दौड़ने लगे। आधार और प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है आपके सामने। केवल आपका अन्तःकरण जो कुछ कह दे, वही सत्य है।"

डाक्टर आनन्द चुप होकर विश्वनाथ का मुख देखने लगे।

विश्वनाथ ने उनका पक्ष लेते हुए कहा—"पिता जी, सुहास यदि आप की बात पर विश्वास नहीं करती तो उसे न करने दीजिए। मैं आपका कथन बिल्कुल सत्य मानता हूँ। हर एक बात विज्ञान की कसौटी पर उस समय तक सही न उतरेगी जब तक सभी आवश्यक तत्वों की जानकारी नहीं हो जाती। बीच के बहुत से तत्व अभी तक परीक्षण नहीं किए जा सके, इससे यह द्विविधा है। अन्त:करण का निर्माण अत्यन्त सूक्ष्म तत्वों से होता है, जो स्थूल रूप से सदैव विभिन्न है। अभी तक विज्ञान केवल स्थूल तत्वों का ही निरूपण करने में समर्थ हुआ है, इसलिए उसका ज्ञान अधूरा है। जिस दिन विज्ञान इस ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म तथा अदृश्य शक्तियों के निरूपण करने की क्षमता प्राप्त कर लेगा, उस दिन हम उस प्रेरक शक्ति का भी विश्लेषण करने में समर्थ होंगे जो हमारे अन्तःकरण का निर्माण करती है।"

"बस, सहारा लेने लगे आधिदैविक बातों का इसके अतिरिक्त आपके समक्ष कोई उपाय नहीं है।"

"जो अभी बोधगम्य नहीं है, वह सदैव इसी भाँति अबोध बना रहेगा, यह प्रगतिशील व्यक्तियों की उक्ति न होना चाहिए। ज्ञान का भंडार भी तो ईश्वर की भाँति अनन्त है। शनैः-शनैः ज्ञान का विकास हो रहा है, और शायद तुम भी यह स्वीकार करोगी कि मानव अभी तक ज्ञान सागर के तटस्थ कुछ कंकर-पत्थर ही चुगने में समर्थ हुआ है। उसमें भी उसे पूर्ण सफलता मिल गई है, यही कौन कह सकता है?"

"बस, यदि यह स्वीकार कर लेने से यह विवाद समाप्त हो जाय कि गोपाल कोमियाटा आपका बड़ा भाई है, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं स्वीकार किए लेती हूँ।"

"यह प्रश्न नहीं है। मैं भी इसे कभी स्वीकार नहीं कर सकता कि वह मेरा बड़ा भाई है, किन्तु मैं तो यह कह रहा था कि विज्ञान का ज्ञान अभी तक अपूर्ण है। अतएव इस अधूरे ज्ञान के बल पर हम स्वयं पूर्णता का अभिमान नहीं कर सकते।"

"मैं स्वीकार करती हूँ कि ज्ञान की चरम सीमा पर हम अभी तक नहीं पहुँचे हैं, किन्तु बहुत-सी बातों का रहस्य हम जानने लगे हैं, इसी प्रकार उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए हमारा ज्ञान कोष बढ़ता ही जायगा।"

"मैं भी यही कह रहा हूँ। दुनिया की बहुत-सी बातें ऐसी हैं जिनका कारण तो समझ में नहीं आता किन्तु वे घटती हैं। हमारे देश के कुछ भू-भाग में चिड़ियों की बोली से शकुन देखने की प्रथा प्रचलित है। विज्ञान उस पर विश्वास नहीं करता। वह उसे जड़ता, अन्धविश्वास कह कर पुकारता है। परन्तु आश्चर्य का विषय है कि उन पक्षियों की बोली से जो निष्कर्ष निकाले गए हैं, वे बहुधा सत्य उतरते हैं।"

"यह तो अन्धविश्वास के अतिरिक्ति कुछ नहीं है।"

"शायद यही हमारी गलती है। वैज्ञानिक रूप से बिना परीक्षण किए हम अपना अभिमत तुरन्त प्रकट कर देते हैं। जरा थोड़ी देर के लिए सोचिए, यह ब्रह्माण्ड एक व्यवस्थित प्रबन्ध है। इसमें जो घटित होता है वह भी किसी व्यवस्था के अनुसार ही होता है। हम उस घटना का रहस्य जान पावें या न जान पावें, यह अपने निजी ज्ञान की बात है, किन्तु हमारे ज्ञान तथा अज्ञान से उस घटना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसी प्रकार पक्षियों की बोली का हमको यदि अभी तक ज्ञान नहीं हुआ है, तो इसके यह अर्थ कदापि नहीं हो सकते कि वे कुछ बातें जानने में असमर्थ हैं, जिनको हम नहीं जान सकते। इस ब्रह्माण्ड के प्रत्येक जाति एवं प्रत्येक जीव का ज्ञान कोष उसी प्रकार भिन्न

है, जिस प्रकार उनकी आकृति आदि में विभिन्नता है। इसी पृथ्वी पर जन्मी किसी भी दो वस्तुओं में सर्वथा एक सी अनुरूपता नहीं है। उसी प्रकार दो वस्तुओं के ज्ञान कोषों में अनुरूपता कैसे होगी ? अब रहा प्रश्न उनकी श्रेष्ठता का, यह तो मनुष्य की जोर-जबरदस्ती का दावा है। उसमें अधिक शक्ति है, इसलिए वह उसके दुरुपयोग से अपनी सत्ता जमाने लगता है।"

"यह तो आप भी स्वीकार करते हैं कि जीव विकास का अन्तिम रूप मानव में हुआ है ?"

"इसमें किसी की आपत्ति क्या हो सकती है। परन्तु इसके यह भी अर्थ नहीं हैं कि उसमें सर्वांगीण पूर्णता आ गई है। इस पृथ्वी तल पर अभी तक विकास की यह अन्तिम कड़ी अवश्य है, किन्तु अन्य लोकों में जीव का विकास किन रूपों में हुआ है, इसका ज्ञान हमको नहीं है।"

"दूसरे लोकों से हमें कोई सम्बन्ध नहीं है, हम क्यों अनावश्यक उसके गड़बड़झाले में पड़ें।"

"ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु अन्योन्याश्रित है, उसी भाँति यह पृथ्वी भी अन्य शक्ति पर अवश्य आश्रित है। वैज्ञानिक दूसरे लोकों की खोज में हैं, और संभवत: यह अणु शक्ति हमें इस सत्य की खोज में सहायता देगी।"

डाक्टर आनन्द ने जब उसमें विवाद बढ़ते देखा, तो वे बोले—"तुम दोनों अबोध बालकों की भाँति प्रत्येक बात पर लड़ते हो। इस विवाद को बन्द करो। मुख्य बात है गोपाल कोमियाटा को नोकर रखना। इस पर हम सब लोग सहमत हैं। वह आज से इस घर का सदस्य हो गया, और यह विशेष रूप से विश्वनाथ की सेवा में रहेगा।"

डाक्टर आनन्द अपना निर्णय देकर चले गए। उनके जाने के पश्चात् विश्वनाथ ने कहा—"सुहास अभी कुछ देर पहले डाक्टर ऐडम गोमा को पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि उनका मित्र कोलूलू नैरोबी में आ गया है, और वह हम सब को अपने गाँव ले जाने को तैयार है।"

"कोलूलू शायद वही व्यक्ति है, जो अपने को मोम्बा सर्पों का पुजारी बताता है।"

"हाँ, जो यहाँ की एक जाति का पुरोहित है, और जिसके गाँव में सर्पों की पूजा होती है। दो दिन बाद पूर्णिमा भी है।"

"हाँ, मैं जरूर चलूँगी। पापा और देवराज को यहीं छोड़ जायँगे।"

"उनको भी साथ लेने में क्या हर्ज है ?"

"कान्ति से भी पूछूँगी, शायद वह भी साथ चलने को राजी हो जाय !"

"नहीं, वह नहीं जायगी। अभी तक उसकी झिझक मिटी नहीं।"

"यह क्यों नहीं कहते कि आपकी झिझक नहीं मिटी। शायद आप दोनों के विवाह के पश्चात् ही यह झिझक मिटेगी ?"

"देखो जब तुम यह प्रसंग उठाती हो, तभी कोई न कोई दुर्घटना होती है। उस रविवार को भी जब तुमसे वह दुर्घटना हो गई थी, तब भी तुम इसी प्रसंग पर बात कर रही थी। उसका स्मरण ही अनिष्टकारक है, इसलिए हमको व्यर्थ की बात नहीं करना चाहिए।"

"वाह, क्या बहाना ढूँढ़ निकाला है। जैसे भी हो उनको मैं अपनी भाभी बनाकर ही मानूँगी।"

"किसको भाभी बनाओगी सुहासिनी बहन।" कहती हुई कान्ति ने प्रवेश किया।"

उसको देखते ही दोनों घबड़ाकर एक दूसरे का मुख देखने लगे। दोनों को कप्तान सुरेशचन्द्र की भूल याद आ गई। विश्वनाथ शीघ्रता से कमरे के बाहर चले गए, और सुहासिनी एक क्षण भर के लिए स्तब्ध हो गई।

कान्ति भी कुछ संकुचित हो गई। उसने अनुभव किया कि बिना सूचना के चले आने से उनके आलाप में व्याघात हुआ है, वह लौटती हुई बोली—"क्षमा कीजिएगा। मैं समझती थी कि आप अकेली हैं। ?"

"अकेली न भी थी, तो क्या हुआ। अब तुम जाती कहाँ हो ?" कहते हुए सुहासिनी ने उसे पकड़ लिया।

"आप लोग पारिवारिक बातें कर रहे थे, उसमें मेरे आने से बाधा पहुँची।"

"हम दोनों इसी प्रकार लड़ा-झगड़ा करते हैं।"

"तो क्या विवाह के पश्चात् भी इसी प्रकार आप दोनों लड़ा करेंगे ?"

"इसके क्या अर्थ ?"

"आप क्रोध न कीजिए, मैं अपनी ओर से कुछ नहीं कह रही हूँ। मैं तो उसी आधार पर कह रही हूँ, जो कुछ मैंने आज डाक्टर हाक और आप के पिता के आलाप में सुना था।"

"वह क्या ?" सुहासिनी के स्वर में भय तथा आशंका थी।

"आपके पिता आज डाक्टर हाक से कह रहे थे कि उन्होंने आपका विवाह डाक्टर विश्वनाथ से करना निश्चय कर लिया है, और आधी सम्पत्ति आप दोनों के नाम लिख रजिस्ट्री कराने वाले हैं। डाक्टर हाक ने इसका सहर्ष अनुमोदन किया, और सगाई का दिन शीघ्र से शीघ्र निश्चित करने का आग्रह किया।"

सुहासिनी अवाक् होकर उसका मुख देखने लगी। उसने इसकी कभी कल्पना नहीं की थी।

"इसी से तो मैं पूँछ बैठी कि अब किसको अपने आसन पर बैठाने का विचार कर रही हो ? ये क्या बात है, तुम्हारा मुख क्यों विवर्ण हो रहा है ?"

सुहासिनी ने अपने को संयत करते हुए कहा—"कुछ नहीं, मुझे इसकी कोई सूचना नहीं है।"

"सत्य ?"

"हाँ, बिल्कुल सत्य ! मैने इस विषय पर कभी सोचा ही नहीं।"

"अब सोच लेना। मैं तो आपके पिता के प्रस्ताव का अनुमोदन करती हूँ। मैं तो घर से बिल्कुल इरादा करके चली थी कि जाकर पहले शिकायत करूँगी, और फिर मिठाई मागूँगी।।"

"किन्तु क्या तुम सच कह रही हो, या मेरी बात का बदला ले रही हो ?"

"कैसा बदला ?"

"बुरा न मानो तो कहूँ !"

"नहीं, मैं विश्वास दिलाती हूँ कि मैं कुछ भी बुरा न मानूँगी।"

"देखो, कप्तान सुरेशचन्द्र की भाँति मुझे भी दण्ड न देना। मैं तुम्हारे आने

से पहले भैया से कह रही थी कि तुम्हारे साथ उनका विवाह कराकर तुम्हें अपनी भाभी बनाऊँगी।" कह कर वह हँसने लगी।

कान्ति का मुख विवर्ण हो गया। उसके कपोलों पर लालिमा छा गई।

"क्यों बुरा मान गई न।" सुहासिनी ने दुलराते हुए कहा।

"नहीं, मैं बुरा नहीं मानती। सिर्फ सोचती हूँ कि क्या तुम इतना बड़ा त्याग कर सकोगी?"

"सच, तुम मेरी भाभी बनने को तैयार हो? अगर तुम यह स्वीकार कर लो, तो फिर मेरे मन की अभिलाषा पूर्ण हो जाय। याद रखो, भैया जैसा सुयोग्य वर तुम्हें नहीं मिलेगा?"

"यही तो मैं भी कहती हूँ कि उनका जैसा सुयोग्य वर तुम्हें नहीं मिलेगा यही बात तुम्हारे पिता और डाक्टर हाक भी कहते थे।"

"तुम तो मजाक करती हो।"

"इसमें मजाक की क्या बात! विवाह जैसे गम्भीर विषय पर मजाक नहीं करना चाहिए! मैंने तो विवाह न करने का निश्चय कर लिया है, क्योंकि मुझसे किसी पुरुष की गुलामी नहीं होगी।"

"विवाह गुलामी तो नहीं है।"

"अपनी स्वतन्त्रता, अपना व्यक्तित्व सभी तो उसमें सो जाता है।"

"या दोनों के मिश्रण से एक नया व्यक्तित्व स्थापित होता है।"

"यह तो मन के समझाने की बातें हैं। वास्तविकता कुछ भिन्न है। वस्तुतः विवाह एक कठिन संघर्ष है, जिससे जीवन की मिठास नष्ट हो जाती है।"

"किन्तु स्त्री का चरमोत्कर्ष तो मातृत्व में होता है।"

"अब तो विज्ञान के द्वारा वह भी संभव हो जायगा। हम बोतलों में बालकों को उत्पन्न करेंगे, जिस भाँति हमारे महर्षि विश्वामित्र ने मनुष्य की उत्पत्ति वृक्षों से की थी, जिसका नारियल आज दिन तक प्रमाण है। महर्षि विश्वामित्र शायद बड़े भारी वैज्ञानिक थे, जिन्होंने वैज्ञानिक प्रणाली से सृष्टि प्रसूत करने का आविष्कार किया, किन्तु वह सिद्ध नहीं हो सका। अब आजकल

के वैज्ञानिक दूसरी रीसि से इसमें अनुसन्धान कर रहे हैं। एक दिन निकट भविष्य में वे अवश्य सफल होंगे।"

"यह असंभव है। जीव का उत्पादन दो जीवों के संयोग से होता है, यही प्राकृतिक नियम है।"

"अणु शक्ति के विकास के साथ हम वह भी करने में समर्थ होंगे। आज का विज्ञान उस मोड़ पर खड़ा है जहाँ वह स्थूल को सूक्ष्म में परिणत करना जान गया है। जब इस शक्ति का पूर्ण या इससे अधिक विकास हो जायगा, तब हमारा सारा दृष्टिकोण ही बदल जायगा, बल्कि सारी सृष्टि ही बदल जायगी।"

इसी समय गोपाल कोमियाटा, जो अब पूर्ण स्वस्थ हो गया था वहाँ आया, और उसने कहा—"सरकारी अस्पताल के डाक्टर साहब आए हैं, बड़े साहब आपको बुला रहे हैं।"

कान्ति ने उसको देखकर उसका परिचय पूछा। सुहासिनी ने सब घटना बताकर कहा—"यह अर्ध भारतीय है। केनिया में इस प्रकार अर्ध भारतीय बहुत मिलेंगे। कुली-प्रथा के समय अनेकों भारतीयों ने यहाँ की जातियों की स्त्रियों से विवाह सम्बन्ध कर लिए हैं।

"हाँ, इसके नाम से तो यही मालूम होता है। यह अपने पिता का नाम क्या बताता है?"

"कहता है कि जब वह गर्भ में था तभी उसका पिता उसकी माता को छोड़कर भारत चला गया था। वह उसका नाम नहीं जानता, और न उसकी माँ इस विपय में कोई बात कहती है।"

"पुरुप ने तो सदैव स्त्रियों के भोलेपन से अनुचित लाभ उठाया है। मोम्बा का काटा हुआ तुरन्त मर जाता है किन्तु पुरुष जाति की अकृतज्ञता का विष उससे भी भयंकर होता है, जो नारी को कुढ़ा-कुढ़ा कर मारता है। इन्हीं कारणों से तो मैं पुरुष जाति के सम्पर्क में आना नहीं चाहती।"

"ठीक है, पुरुष तथा नारी के विषमता की कहानी अनन्त है। चलो, अब

तुम्हें एक अद्भुत व्यक्ति से मिलावें, जो अपने को मोम्बा सर्पों का पुजारी बताता है।"

सुहासिनी यह कह कर कान्ति को घसीटती हुई, बैठक में ले गई।

— १६ —

कोलूलू की बातों ने सबको प्रभावित किया, और दूसरे दिन प्रातःकाल उसके साथ जाने का कार्य-क्रम बनाया। डाक्टर आनन्द ने कान्ति से भी चलने के लिए आग्रह किया, किन्तु वह सहमत नहीं हुई, और कहा—"मुझे सर्पों से बड़ा भय लगता है। मैं नहीं जाऊँगी।"

सुहासिनी ने उसके कान में कहा—"सर्पों से भय लगता है या भैया से?"

कान्ति का मुख लाल हो गया, और उसने अपने पैर से उसके पैर को दबाते हुए कहा—"चुप रहो, बेवक्त की शहनाई अच्छी नहीं लगती।"

उनको फुसफुसाते देखकर डाक्टर आनन्द ने पूछा—"क्या बात है बेटी?"

"कुछ नहीं पिता जी।" कान्ति ने उत्तर दिया। वह भी डाक्टर आनन्द को 'पिताजी' कह कर पुकारती थी।

"तुम्हें अपने साथ इसलिए ले जाना चाहता था, क्योंकि तुम विष पर अनुसन्धान कर रही हो, और मोम्बा साक्षात् विष का अवतार है।"

"मैं आप लोगों से सुनकर सब बातें जान लूँगी जिस चीज के देखने से ही आँखें बन्द हो जाती हैं, उसको देखूंगी किस तरह! नहीं पिताजी मैं नहीं जाऊँगी।"

विश्वनाथ किसी बहाने से कान्ति के आने के साथ ही चले गए थे। जिसको डाक्टर आनन्द ने पहले लक्ष्य नहीं किया था, अब उनको न देखकर पूछा—"विश्वनाथ भैया कहाँ गए?"

सुहासिनी ने उत्तर दिया—"वे तो बड़ी देर हुई जब चले गए थे। कहते थे कि डाक्टर हाक ने उन्हें बुलाया है।"

डाक्टर हाक का नाम सुनते ही डाक्टर आनन्द ने कहा—डाक्टर हाक को भी यदि साथ ले लिया जाय तो बड़ा आनन्द रहेगा। पश्चिमीय विद्वान इस देश की संस्कृति को जाहिलों की संस्कृति बताकर उसकी उपेक्षा करते हैं। उन्हें अब विश्वास करना पड़ेगा कि अफ्रीका की असभ्य कही जाने वाली जातियों की एक प्रकार की संस्कृति है जो शुद्ध प्राकृतिक सर्ग से उत्पन्न हुई है, और उसका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसकी उपेक्षा करना नितान्त असंगत है।"

"कान्ति बहिन, पापा को अफ्रीकनों की संस्कृति बहुत प्रिय है। ये तो उनको देवता बनाकर पूजना चाहते हैं मगर मेरी वजह से उनकी यह इच्छा पूर्ण नहीं होती।"

"क्यों?"

"मैं जो इनका विरोध करती हूँ! भला तुम्हीं बताओ इन जंगलियों की कोई सभ्यता हो सकती है?"

"अगर केवल सभ्यता का प्रश्न है तो मैं कहूँगी कि प्रत्येक देश की कोई न कोई सभ्यता होती है। हाँ, वह उन्नत है य अवनत, यह दूसरा प्रश्न है। आजकल के दृष्टिकोण से वह अफ्रीका में अपनी आदिम अवस्था में है, जब कि वैज्ञानिक अनुसन्धानों ने सभ्य संसार में उसे बहुत आगे बढ़ा दिया है।"

"मेरा कहना है बेटी, वैज्ञानिक अनुसन्धानों से केवल भौतिक उन्नति हुई है, मनुष्य को विश्राम मिला है, उसके सुख के साधनों में वृद्धि अवश्य हुई है, किन्तु उसके साथ ही अनेक प्रकार के रोगों, तथा विषों का भी जन्म हुआ है। अनेकानेक विषमताओं का भी उद्भव हुआ है, क्योंकि इन अनुसन्धानों ने प्रकृति को अपनी दासी बनाने की चेष्टा की है, उसको इन्होंने सहचारिणी बनाया। दास तथा सहचारी की वृत्तियों में अन्तर होना स्वाभाविक है।"

"हाँ, और अफ्रीका की जंगली जातियों ने प्रकृति को सहचारी बनाकर इन्द्रासन को पा लिया है न?" सुहासिनी ने सव्यंग्य कहा।

"इन्द्रासन अर्थात् सर्वोत्कृष्ट आलस्य को प्राप्त करना ही तो मानवता का उद्देश्य नहीं है?"

"नहीं, उसका उद्देश्य मनुष्य को मार कर खा जाना है, नगे रहना है, एक

जाति का दूसरी जाति से वैमनस्य है ? सुहासिनी का व्यंग्य कटुतर हो गया।

"उफ ! मेरी बात ही नहीं तुम समझ पाती। जितनी बातें तुम गिना गई हो, क्या सभ्य कहलाने वाली जातियों में उनकी कमी है ? मेरा तो ऐसा विचार है कि वे इनसे अधिक हैं। जंगली जातियाँ तो केवल अपने शारीरिक बल तथा परिश्रम पर निर्भर रह कर युद्ध करती हैं, जिनसे जन हानि अपेक्षाकृत कम होती है। क्या सभ्य कही जाने वाली जातियों में युद्ध नहीं होते, क्या उनमें मृत-व्यक्तियों की संख्या में कमी होती है ? इतने बड़े-बड़े आविष्कारों के उपरान्त भी क्या अन्न और वस्त्र की समस्या समष्टि रूप से हल हो गई है ? जंगली जातियों में यदि कबीलों-कबीलों में वैमनस्य है तो क्या सभ्य जातियों में देश-देश को लेकर वैमनस्य नहीं है। मानव जाति को अभी तक अपने इन शत्रुओं से त्राण नहीं मिला है, केवल मानव की परिस्थितियों के साथ वे भी बदलते गए हैं।"

"सुहासिनी बहिन, पिताजी के विचारों में सत्यता तो मालूम होती है। बावजूद इतने आविष्कारों के मानव के मूल भावों में परिवर्त्तन तो नहीं हो सका। हाँ, इन आविष्कारों ने मानव को दूसरे मानवों के शोषण का मार्ग अवश्य प्रशान्त किया है। जंगली जातियाँ एक दूसरे का शोषण तो नहीं करतीं। छल, कपट का जाल तो नहीं बिछाती।"

"तुम्हारे ऊपर भी पापा का जादू चल गया शायद ! शोषण करना तो मानव-स्वभाव है। प्रकृति में भी और मानवों में भी, शक्तिमान सदैव निःशक्त को दबाता है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। देखो, पापा स्वयं शोषण वृत्ति से खाली नहीं हैं। उनका पद हम लोगों से बड़ा है, इसलिए वे मुझको दबाकर अपना अनुयायी बनाना चाहते हैं।"

"नहीं सुहासिनी यह तुम्हारा अन्याय है, वे अपनी स्थिति का सहारा नहीं ले रहे हैं, वे तो अपने विचार विवेक और अनुभव हमारे सम्मुख रखते हैं।"

"देखो बेटी कान्ति, सुहास इसी भाँति मेरे साथ अन्याय करती है। मेरे कथंन का उद्देश्य यह है कि श्वेत जातियों को काली जातियों से घृणा न करना

चाहिए। हमारे मन में घृणा का भाव किसी न किसी रूप में तब तक वर्त्तमान रहेगा, जब तक हम उन्हें जंगली असभ्य समझते रहेंगे। बराबरी का भाव कदापि उदय न होगा। जब तक बराबरी का भाव उत्पन्न नहीं होता तब तक श्वेतांगों और कृष्णांगों में सन्धि न होगी।"

"ठीक है पिताजी, आज दिन सभ्य संसार अपनी शक्ति के अभिमान से मदहोश है वह काली जातियों को बर्बर तथा असभ्य कहकर उनको सदैव गुलाम बनाए रखना चाहता है। यहाँ तक कि उन्हें वे अधिकार नहीं देना चाहते, जिनको वे स्वयं भोग रहे हैं। उन्हीं की भूमि पर अपना अधिकार केवल पाशविक बल से जमाकर उनको समूल नष्ट करना चाहते हैं।"

"हाँ, यही तो इस केनिया में हो रहा है, दक्षिण अफ्रीका में हो रहा है, और सम्पूर्ण अफ्रीका में हो रहा है। वे सभ्य बनते हैं केवल अपने स्वार्थ साधन के लिए वे सभ्य बनते हैं केवल अपने अधिकार को सुरक्षित रखने के लिए। वे बल के साथ कपट नीति का भी प्रयोग करते हैं, और बल प्राप्त करते हैं अपने वैज्ञानिक आविष्कारों से।"

"क्या वे उन्हें सभ्य बनाने, शिक्षा देने के उपाय नहीं करते? डाक्टर एडम गोमा को आज पश्चिमीय शिक्षा प्राप्त करके ही तो सभ्य हुए हैं।" सुहासिनी ने अधीरता के साथ कहा।

"ठीक है, किन्तु क्या उन्हें वे सब अधिकार हैं जो अंग्रेजों को प्राप्त हैं? वे अपना सारा जीवन सहायक डाक्टर के रूप में ही व्यतीत करेंगे? क्या यह स्वार्थ नीति नहीं है। श्वेतांग कभी कृष्णांग को वे सुविधायें नहीं देगा, जो स्वयं भोग रहा है। भारतीयों को ही ले लो। हमें कुली बनाकर कौन लाया था? हमारे साथ छल कपट किसने किया था? हमको केवल गुलाम कौन बनाए था, यही श्वेतांग महाप्रभु तो, या और कोई? आज दिन भी योरोप, अमरीका, आस्ट्रेलिया में कालों का प्रवेश होटलों तक में निषिद्ध है, जहाँ केवल पैसा ही प्रवेश कराने के लिए पर्याप्त है। क्या कोई श्वेतांग पुरुष अपनी श्वेतांग नारी का विवाह किसी काले के साथ करने की अनुमति देगा?"

"ठीक कहते हैं पिता जी, अमरीका में अभी तक "लिंचिंग" होता है, जो अपने को मानव अधिकारों का घोर हिमायती बताने का ढोंग रचता है। अभी-अभी हाल में ही वहाँ काले छात्रों के गोरे छात्रों के साथ बैठ कर शिक्षा प्राप्त करने के विरुद्ध देश व्यापी आन्दोलन श्वेतांगों द्वारा छेड़ा गया था। क्या सुहासिनी बहिन इससे इनकार कर सकती हैं। क्या इसी अफ्रीका के एक देशी शासक के साथ श्वेतांगिनी के विवाह के विरुद्ध इंगलैंड में आन्दोलन नहीं चला था? उसको स्वदेश लौटने की आज्ञा नहीं मिली थी। उसके विरुद्ध क्या षड़यन्त्र रचकर उसको राज्यच्युत नहीं कराया गया? क्या माओ-माओ आन्दोलन जो केवल अपने वैध मानवी अधिकारों को प्राप्त करने के लिये है, उसे ब्रिटिश सरकार घोर दानवीय पाशविकता से नहीं कुचल रही है? सुहासिनी बहिन क्या तुम इससे भी इनकार कर सकोगी।"

"आप लोग तो संस्कृति और सभ्यता की बात कहते-कहते न-मालूम कहाँ बहक गए। आपके कथन से भी पश्चिमीय सभ्यता की श्रेष्ठता प्रतिपादित हो जाती है। अपने देश, अपने राष्ट्र का ज्ञान किस सभ्यता ने दिया है?"

"अपनेपन का ज्ञान तो जन्म-जात है। शिशु जब अपनी माँ का दुग्धपान करता है, तभी वह अपने और विराने का भेद समझ जाता है। जंगली जातियों में भी अपनी जाति और भूमि से प्रेम होता है, तभी तो उसके लिए अपने प्राणों की बलि चढ़ाता है बहिन!"

"बेटी कान्ति, सुहास ने अपनी शिक्षा इगलैण्ड में पाई है, इसलिए उसकी आँखों पर पश्चिमीय श्रेष्ठता का चश्मा चढ़ा हुआ है। सच्ची शिक्षा वही है जो भेद-भावों को भुलावे; बड़े-छोटे के भेद को दूर करे। समत्व का ज्ञान ही सर्वोत्कृष्ट ज्ञान है। वह ज्ञान पश्चिम में नहीं पूर्व में, हमारे देश में है, आर्य संस्कृति में है। आर्य जाति ने भारतवर्ष में विजेता होकर प्रवेश किया। वहाँ के भी आदिम निवासी काले थे—लगभग इसी अफ्रीका की जातियों के तुल्य थे। पश्चिम की भाँति वे भी मूल निवासियों से घृणा और द्वेष करते थे। उनको काले रंग से घृणा थी। उस घृणा का परिचय मिलता है हमें उनके द्वारा चित्रित अपने शत्रुओं से, जिनको यद्यपि वे भी फारस आदि देशों के रहने

वाले उन्हीं की भाँति श्वेतांग थे, सदैव दनुज-दानव कहकर श्यामांग ही बताया है।"

"हाँ, पिताजी, मैं स्वीकार करती हूँ कि आर्यों ने अपने श्रुतिग्रन्थों में उनको कृष्णांग ही कहा है, और अपने देवता रुद्र को हिम के समान श्वेतांग बताया है।"

"ठीक है, जब कृष्णांगों के प्रति विद्वेष की भावना चरम सीमा को पहुँच गई, और भयानक नर-संहार होने लगा, तब मनीषियों की आत्मा कराह उठी, और उन्होंने एक ऐसा उपाय ढूँढ निकाला जिससे घृणा का भाव नष्ट हो जाय।"

"वह क्या पिताजी ?"

"बेटी, घृणा का भाव उसके विरोधी भाव श्रद्धा और भक्ति के भाव उत्पन्न करने से ही दूर हो सकता है, इस तथ्य को उन्होंने पहचाना। सारे विरोध का मूल कारण रंग था। अतएव उस मूल बात पर आघात करने का निश्चय करके उन्होंने अपने इष्ट देवता के शरीर के रंग को काला रंग दे डाला। विष्णु, रामचन्द्र और कृष्ण, पुरुष अवतारों में और काली शक्ति के अवतार में, अर्थात् स्त्री-पुरुष दोनों स्वरूपों के अवतारों में वे श्याम रंग से विभूषित किए गए। इसका परिणाम यह हुआ कि आराधक के मन में बार-बार उनकी स्तुति के स्तोत्रों में श्याम रंग की बड़ाई पढ़ते-पढ़ते काले रंग के प्रति घृणा, क्रमशः श्रद्धा और भक्ति में परिवर्त्तित होती गई, और इस प्रकार उन मूल निवासियों को बराबरी का दर्जा मिला तथा विवाह सम्बंध, जो बराबरी के जीवन का सर्वोत्कृष्ट स्पष्टीकरण है, होने लगे।"

"सत्य ही पिताजी उनकी युक्ति बड़ी ही उपयुक्त तथा दूरदर्शी थी। आज कालों के प्रति हमारे मन में घृणा के भाव नहीं रहे, बल्कि यहाँ तक हम कहते हैं कि ये हमारे भगवान के वर्ण के हैं। क्या ऐसी कोई युक्ति आजकल नहीं सोची जा सकती !"

"क्यों न आप दोनों ईसा तथा ईश्वर को काले रंग का घोषित कर देवें। कान्ति बहन यह घोषणा करें कि उन्हें इलहाम हुआ था, और उन्होंने उस

अवस्था में ईसा मसीह और ईश्वर का दर्शन किया, और वे दोनों हब्शियों की भाँति काले, कुरूप और असभ्य थे।" सुहासिनी के तीव्र व्यंग्य से वह कमरा गूँज उठा, और कान्ति तथा डाक्टर आनन्द अप्रतिभ हो गए।

"आओ बेटी चलो तुम्हें पहुँचा आऊँ, यह तो सुहास है—अपनी बात पर ही अड़ी रहेगी।" कहते हुए वे कान्ति के साथ चले गए। सुहासिनी के व्यंग्य-पूर्ण हास्य की ध्वनि से वायुमंडल कम्पित होता रहा।

— २० —

हरे-भरे पहाड़ों की गोद में कोलूलू का गाँव बसा हुआ था। वह नैरोबी से लगभग बीस मील दूर था और रास्ता बीहड़ जंगलों के मध्य से गया था, जहाँ वन्य पशुओं की अधिकता से पथिकों का आवागमन केवल दिन में ही होता था। वृक्ष इतने सघन थे, जिनके कारण दिन में भी केवल इतना हल्का चाँदना रहता था, जिससे मार्ग का ज्ञान सुगमता से हो जाय। विश्वनाथ की बगल की सीट में बैठा हुआ कोलूलू मार्ग प्रदर्शन कर रहा था। मोटर की पिछली सीट पर डाक्टर आनन्द, सुहासिनी, देवराज तथा डाक्टर ऐडम गोमा को और नीचे फर्श पर गोपाल कोमियाटा बैठे थे। देवराज की उत्सुकता चरम सीमा को पहुँच गई थी, और वह प्राकृतिक दृश्यों को देख बार-बार मुदित होकर अपने प्रश्नों से डाक्टर आनन्द को तंग कर रहा था। सुहासिनी की डाँट से वह कुछ देर के लिए चुप हो जाता, परन्तु किसी अन्य पशु को देखते ही प्रश्न पूछना पुनः आरम्भ कर देता था।

कोलूलू केवल अपनी भाषा ही अच्छी तरह बोल सकता था, किन्तु टूटी-फूटी अंग्रेजी इतनी बोलता था, जिससे वह अपना आशय किसी तरह समझा सके विश्वनाथ के प्रश्नों का उत्तर देने की वह पूर्ण चेष्टा करता था, किन्तु आशय कभी स्पष्ट होता, और कभी न होता था। डाक्टर ऐडम गोमा को उनके मध्यस्थ होकर उनको उन बातों का उत्तर देते जिनको कोलूलू समझाने में असमर्थ होता।

डाक्टर आनन्द ने पूछा—"हम लोगों की रक्षा का भी कोई प्रबन्ध किया जायगा, या अन्य ग्रामवासियों की भाँति ही हमको रहना होगा ?"

ऐडम गोमाको ने कोलूलू से पूछ कर बताया—"यों तो विशेष रूप से रक्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आप लोग ग्रामवासियों के साथ रहेंगे, किन्तु कोलूलू यह भी कहता है कि यदि आप चाहेंगे तो आप लोगों के बैठने के लिए किसी ऊँचे पेड़ पर मचान बँधवा देगा, जहाँ आप अपने को सुरक्षित समझेंगे, और वहाँ से पूजा का दृश्य भी देख सकेंगे।"

"क्या मोम्बा पेड़ पर नहीं चढ़ सकते ?" सुहासिनी ने प्रश्न किया।

"चढ़ सकते हैं, किन्तु प्रायः चढ़ा नहीं करते। वे पृथ्वी तल पर ही वन-विहार करने के आदी होते हैं।"

"आप बताते हैं कि पूजा के समय एक-दो नहीं सैकड़ों की संख्या में मोम्बा इकट्ठे होंगे, तब उनमें से रेंगता हुआ कोई वृक्ष पर भी चढ़ सकता है।"

"हाँ, सुहास बहिन ठीक कहती हैं, शायद उनके मन में वन-विहार के स्थान पर वृक्ष-विहार की उमंग आ जाय तो क्या होगा ?"—विश्वनाथ ने हँसते हुए कहा।

"नहीं ऐसा आज तक नहीं देखा गया है।" गोपाल कोमियाटा, जो अंग्रेजी भली भाँति कह तथा समझ लेता था, बीच में बोल उठा।

"तुमको भी क्या कुछ मोम्बा सर्पों के विषय में ज्ञात है ?"

"जी हाँ, मैं भी कुछ दिनों तक कोलूलू जैसे सर्पों के एक पुरोहित के पास रहा हूँ, और उनको वशीभूत करने के मंत्र-तंत्र जानता हूँ।"

सुहासिनी ने प्रसन्न कंठ से कहा—"तब तो बड़ा अच्छा है। यदि मोम्बा हमारे पास आ जाय तो क्या तुम उसको अपने वश में कर सकोगे ?"

"जी हाँ, बखूबी। मैं इस प्रकार दिग्रक्षा कर दूँगा, जिसमें वह उधर आने का साहस नहीं करेगा जहाँ हम लोग होंगे।"

"मान लो, तुम्हारे मंत्र शक्ति को वह उल्लंघन कर जाय तो ?"

"एक तो वह उल्लंघन नहीं कर सकता, और यदि कदाचित वह कर भी लेवे तो वह मनुष्य पर कभी आक्रमण नहीं कर सकेगा।"

"तब तो तुम बड़े गुणी हो।" डाक्टर आनन्द ने आश्वस्त होकर कहा।

कोलूलू उनके आलाप का निष्कर्ष समझ गया था। उसने टूटी-फूटी अंग्रेजी में कुछ कहा जिसका आशय था—"लेकिन कोलियाटा मेरी बराबरी का नहीं है। मेरा घर मोम्बों का पुश्तैनी पुरोहित है। प्राय: सभी मोम्बे मुझे पहचान जाते हैं, जब मैं उन्हें बता देता हूँ।"

"तो क्या तुम मोम्बा की बोली समझते हो, और उनको बोली बोल सकते हो।" सुहासिनी के स्वर में आश्चर्य प्रकट हो रहा था।

ऐडम गोमाको ने कोलूलू से उत्तर जान कर कहा—"वह कहता है कि देवता ने हर एक प्राणी को अपने विचार प्रकट करने के लिए शब्द प्रदान किया है। जिस प्रकार प्राणियों में भेद होता है उसी प्रकार उनके शब्दों में भी अन्तर होता है। निम्न स्तर के प्राणी संकेतों द्वारा अपने आशयों को समझा देते हैं, और शब्द निकालते हैं उस समय जब वे अनुभव कर लेते हैं कि संकेतों से काम नहीं चलेगा। जब किसी घातक पशु के आने की सूचना एक पक्षी दूसरे को देता है तब वह देता है एक प्रकार के शब्द की झंकार से उसे यदि मनुष्य सुने तो वह भी कालान्तर में उसके अर्थ समझने लगता है। अधिकाधिक ध्यान देने से मनुष्य को उन शब्द-झंकारों के अर्थ बोधगम्य होने लगेंगे। इसी प्रकार पशु-पक्षियों की बोली समझी जाती है। सहवास, साहचर्य से भय दूर होता है, और एक दूसरे की बोलियाँ समझने की क्षमता प्राप्त होती है।"

"ठीक है, सरकस आदि खेलों में हम देखते हैं कि पशु-पक्षी मनुष्य के आदेश पर काम करते हैं। डाक्टर आन्दर ने कहा।"

"लेकिन पापा, सरकस के पशु-पक्षियों को सिखाया जाता है।"

"इतना तो इससे प्रमाणित हो ही जाता है कि मनुष्य के शब्द-झंकार उनके मस्तिष्क में वही कार्य करने की प्रेरणा उत्पन्न करते हैं, जैसा वह चाहता है।"

"किन्तु उसका क्षेत्र केवल उन सिखाई जाने वाली बातों तक ही सीमित है।"

"सुहास बहिन, ठीक कहती हैं, पिताजी ! वे हमारी तरह सब बातों को न समझ सकते हैं, और न उस प्रकार काम ही कर सकते हैं।" विश्वनाथ ने कहा।

"मस्तिष्क का विकास भी वातावरण पर निर्भर है। मनुष्य जैसे वातावरण में रहेगा, वैसा ही उसके मस्तिष्क का विकास होगा। मनुष्य यदि पशुओं के साथ अपने जन्म से रहे तो उसकी चेष्टाएँ, उसी वातावरण के तुल्य होगी। आजकल तो प्रायः ऐसी घटनाएँ देखने में आई हैं जब एक मनुष्य का पालन-पोषण भेड़ियों द्वारा हुआ, और उसमें वहीं चेष्टाएँ पाईगई जो भेड़ियों में होती हैं। अभी कुछ दिनों पहले मैंने एक भारतीय-पत्र में ऐसे ही एक व्यक्ति का हाल पढ़ा था, जो भारत के लखनऊ नगर में चिकित्सा के लिए अस्पताल लाया गया था, वह भेड़ियों द्वारा पाला गया था, और शायद नाम 'रामू' रखा गया था।"

"हाँ, वातावरण का प्रभाव तो बहुत व्यापक होता है। बालक जिस वातावरण में पलेगा, उसी के अनुसार वह प्रभावित होगा, और वैसी ही बोली सीखेगा।"

"ठीक है, वैसी बोली वह इसलिए सीखता है, क्योंकि शब्द-झंकार उसके मस्तिष्क को वातावरण के अनुसार प्रभावित करते हैं। मैंने कितने ही कुत्तों, और घोड़ों के सम्बन्ध में पढ़ा है, जो साधारण अंकगणित के प्रश्न तक हल कर लेते हैं। यही नहीं कि वे रटे-रटाए हों, बिल्कुल नवीन प्रश्नों को हल करते वे देखे गए हैं।"

"ऐसी घटनाएँ तो मैंने भी पढ़ी हैं।" सुहासिनी ने सोचते हुए कहा।

"इससे यह तो प्रमाणित हो ही जाता है कि मनुष्य से निम्न स्तर के प्राणियों में भी मेधा शक्ति होती है, उसका विकास भी हो सकता है, और उसके द्वारा सहायता भी प्राप्त की जा सकती है। मेधा ही विचार शक्ति की जन्म भूमि है। अतएव उनमें विचार शक्ति होती है, और वे मनुष्य की भाँति विचारते और काम करते हैं। जिस भाँति वनस्पति की जीव-शक्ति वैज्ञानिक उपकरणों से

प्रमाणित कर दी गयी है, उस भाँति उनके द्वारा यह भी प्रत्यक्ष करा दिया जायगा एक दिन कि पशु-पक्षियों का ज्ञान मानव के ज्ञान की ही भाँति है, और उसका भी विकास सम्भव है।"

"पापा की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि वे तिल का ताड़ बड़ी जल्दी बना लेते हैं?" सुहासिनी ने हँस कर कहा।

"कोलूलू कहता है कि उसकी बोली मोम्बा समझते हैं, और उसी के अनुसार काम करते हैं।"

"वह तो गप्पी है अपना प्रभाव डालने के लिए झूठ बकता है।"

"नहीं वह झूठ नहीं बकता, मोम्बाओं के वातावरण में रहते-रहते यदि एक दूसरे की बोलियों के आशय को वे समझ लेते हैं तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। सिद्धान्त के प्रतिपादित हो जाने पर उससे जितने निष्कर्ष निकलेंगे, वे भी उसी के अनुसार सत्य होंगे।" विश्वनाथ ने डाक्टर आनन्द के पक्ष में कहा।

"अच्छा कोलूलू से यह भी पूछिए कि क्या वह अन्य वन्य पशुओं की बोली समझता है।"

डाक्टर गोमाको ने कोलूलू से पूछकर कहा—"वह केवल सर्पों की बोलियाँ समझता है, क्योंकि उसका यह पारिवारिक धन्धा रहा है। उसके गाँव में कुछ ऐसे अन्य व्यक्ति हैं जो पक्षियों की बोली समझते हैं।"

"मै विश्वास नहीं करती।"

"नहीं, अविश्वास करने की कोई बात नहीं है। जंगल में रहनेवाला मनुष्य अपने जंगली वातावरण से अवश्य प्रभावित होगा, और वह उनमें रहनेवाले प्राणियों की बोलियां, सकेतों को अवश्य समझने लगेगा। मेरे जीवन में ऐसे अवसर कई बार आए हैं, जब इसके प्रमाण मिले हैं। एक बार मैं अपने सम्बन्धियों में गया हुआ था। दोपहर का सूर्य बड़ी प्रखरता से तप रहा था, पानी बरसने के कोई लक्षण नहीं थे। इतने में कोई पक्षी बोला। एक वृद्ध ने उसकी बोली सुनकर अपने घर वालों से कहा कि पांच-छः घंटों में बहुत जोर का पानी बरसने वाला है, शायद बाढ़ भी आ जाय, इसलिए पशुओं का पहाड़ी

पर ले जाओ। गांववालों से भी कह दो कि वे अपनी रक्षा का प्रबन्ध समय रहते कर लेवें, और मुझसे कहा कि मैं उसी समय नैरोबी के लिए रवाना हो जाऊँ। मैंने जब इसका कारण पूछा तो उसने बताया कि अमुक पक्षी, जिसका नाम मुझे स्मरण नहीं है, हमें सावधान कर रहा है। वह कह रहा है कि बहुत जोरों का पानी बरसने वाला है।"

"तो क्या आप उसके कहने के अनुसार चले आए, और क्या वैसा ही पानी बरसा?" सुहासिनी ने तीव्र उत्सुकता के साथ पूछा।

"हां, मिस, ऐसा ही हुआ। मै संध्या तक अपनी गाड़ी से नैरोबी आ गया, और वहां इतनी घनघोर वर्षा हुई कि गांव बह गया, और कई दिनों तक उन्हें पहाड़ी की कन्दराओं में जीवन व्यतीत करना पड़ा।"

"तब तो बड़ी हानि हुई होगी। उनकी झोपड़ियां बह गई होंगी।"

"जन तथा धन हानि तो नहीं होने पाई, क्योंकि गांव के निवासी सभी कन्दराओं में चले गए थे। फूस की झोपड़ियां थीं, जो दुबारा सहकारिता के सिद्धान्त के अनुसार बना ली गई। यदि मैं वहां से न चला आता तो कई दिनों तक मुझे भी उन्हीं के साथ रहना पड़ता, और मोटर शायद बह जाती या टूट-फूट जाती।"

"यह तो बड़े आश्चर्य की बात है!"

"इसमें आश्चर्य कुछ नहीं है। साहचर्य से एक दूसरे के शब्दों के अर्थों का ज्ञान क्रमशः हो जाता है। वैज्ञानिकों ने अभी तक इस ओर ध्यान नहीं दिया है। जब वे इसी दिशा में अन्वेषण करेंगे तो सभी भेद सहज ही प्रकट होने लगेंगे।" डाक्टर आनन्द ने सन्तोष के साथ कहा।

"पापा, बड़े प्रसन्न हैं, उनकी बात प्रमाणित होती है न।"

"मैं इसलिए प्रसन्न हूँ क्योंकि तुम्हारी कूपमन्डूकता दूर होती है। जिन वैज्ञानिक अनुसन्धानों पर मानव को गर्व है, वे अभी प्रारम्भिक अवस्था ही में है। ज्ञान अनन्त है। तपस्या, उद्योग, और लगन से ही उसका क्रमशः विकास होगा। भगवान ने प्रत्येक जीव को उसके अनुरूप सभी शक्तियां प्रदान की है। ज्ञान का ठेका केवल मनुष्य को ही नहीं दिया गया है। उसको

यदि श्रेष्ठता दी गई है तो उसका दुरुपयोग करने के लिए नहीं। वह अपने अन्य सहचारियों से समत्व स्थापित करे। समानता के स्तर पर ही आदान-प्रदान होता है।"

"बस पापा को व्याख्यान देने का अवसर मिल गया!" सुहासिनी ने हँस-कर कहा।

दूर पर पहाड़ी के ऊपर बसे हुए गांव को दिखाते हुए कोलूलू बोल उठा—"वह देखिए, मेरा गांव है। वह जहाँ से धुआँ निकल रहा है।"

सब लोगों की दृष्टि उधर ही घूम गई। रास्ता समतल भूमि पर था। विश्व-नाथ ने मोटर की गति द्रुत की। कोलूलू के मुख पर हर्ष की छटा छा गई।

—२१—

पूर्णिमा का चाँद अपनी सोलह कलाओं से पूर्व दिशा के वातायन से झाँकने लगा। कोलूलू के गाँव टोमो निवासियों में अद्भुत चहल-पहल दिखाई देने लगी। बड़े-बड़े ढोलों की ध्वनि से टोमो का वातावरण झंकरित होने लगा। गाँव के मुखिया अथवा शासक के विशाल प्राङ्गण में टोमो निवासी एकत्रित होने लगे। ढोल का शब्द ज्यों-ज्यों गम्भीर होता था त्यों-त्यो भय से सुहासिनी का हृदय काँपता था। यद्यपि उस समारोह में टोमो की नारियाँ भी अपने विचित्र शृङ्गारों के साथ सम्मिलित थीं, और वे हर्ष से नाच-गा रही थीं, तथापि उससे उसके मन को शान्ति नहीं मिलती थी। डाक्टर आनन्द, विश्वनाथ, और देवराज बड़े कौतुक से उस दृश्य को देख रहे थे। डाक्टर गोमाको और कोलियाटा गाँव निवासियों के समारोह में सम्मिलित हो गए थे। मचान पर देवराज, सुहासिनी, डाक्टर आनन्द और विश्वनाथ थे।

गाँव के सामने की भूमि समतल थी, और उनमें झाड़ी-झंखाड़ जो एक महीने की अवधि में उगे थे, आज प्रातःकाल काट कर साफ कर दिए गए थे। जिस स्थान पर मचान बँधा हुआ था, वह रंगभूमि के बिल्कुल समीप तो न था,

किन्तु उसका कोना-कोना और राज-भवन के सामने की भूमि भी साफ दिखाई पड़ती थी। मचान के खंभों के चारों ओर अग्नि जला दी गई थी, जिसको अतिक्रमण करके किसी जीव-जन्तु का ऊपर चढ़ जाना असंभव हो। यह दिग्रक्षा सुहासिनी के भय को दूर करने के लिए डाक्टर गोमाको के परामर्श के अनुसार की गई थी, और उससे उसको कुछ आश्वासन मिला था।

जब राज-प्राङ्गण के सामने जनसमूह एकत्रित हो गया, तो पूर्व दिशा से दूसरे ढोलों के बजने का शब्द सुनाई दिया, और उसके साथ ही वह तुमुल नाद जो वहाँ हो रहा था, थम गया। सब लोग पंक्तिबद्ध होकर खड़े हो गये, और पूर्व दिशा से आते हुए जुलूस की प्रतीक्षा करने लगे। जुलूस के आगे एक बारह वर्ष की बालिका चल रही थी, जो अपनी जाति-प्रथा के अनुसार पूर्ण शृङ्गार किए थी, किन्तु उसका शरीर वस्त्रहीन था। यौवन का आगमन अभी नहीं हुआ था, किन्तु वह बाल्यकाल की अन्तिम सीमा पर पहुँच गई थी। उसके शरीर पर खड़िया पुती थी, और उस पर अनेक काले-लाल रंगों में सर्पों के चित्र अङ्कित थे। जुलूस के आगे-आगे वह नत दृष्टि और धीर पदों से चल रही थी। स्त्री या पुरुष जो कोई उसके सामने आता वह भूमिष्ट होकर उसे प्रणाम करता, और तब तक जुलूस आगे न निकल जाता, वह उसी भाँति दृष्टि नत किए पड़ा रहता था।

धीरे-धीरे जुलूस राज प्राङ्गण के समीप आ गया। उस समय जितने नर-नारी वहाँ एकत्रित थे, सब भूमिष्ट हो गए, केवल ढोल तथा अन्य वाद्य बजाने वाले व्यक्ति खड़े रहे, और वे पूर्ण शक्ति से ढोलों पर थापें देने लगे। बालिका सीधे राजद्वार पर जाकर खड़ी हो गई। उसी समय टोमो का शासक अपनी आठ पत्नियों के साथ बाहर आया। बालिका उसके समीप गई, और जब उनके बीच केवल एक व्यक्ति के भूमिष्ट होने का अन्तर रह गया, वह ठहर गई। राजा अपनी पत्नियों के साथ भूमि पर लेट गया, और बालिका ने उसके सिर को अपने चरणों से छू दिया। राजा उठकर खड़ा हो गया, और उसने एक सेवक की ओर देखा। सेवक एक कटोरे में एक प्रकार का तरल पदार्थ लिए हुए था, जिसे लेकर बालिका को पीने को दिया। बालिका उसे तुरन्त पी गई। राजा ने

उससे कुछ पूछा, और स्वीकारोक्ति संकेत मिलने पर उसने दूसरे सेवक के हाथ से वैसा ही कटोरा लेकर उसे पुनः पीने को दिया। इस प्रकार बालिका ने एक के पश्चात् एक करके पाँच प्याले पिए। पाचवाँ प्याला पीते ही बालिका चञ्चल हो गई, और बड़े वेग से गाँव के बाहर वाले मैदान की ओर भागी। भागती हुई वह उस मञ्च के समीप जिस पर डाक्टर आनन्द आदि थे, आकर ठहरी, और ऊपर झाँकती हुई सुहासिनी को देखने लगी। उसके नेत्रों से एक प्रकार की भयावनी ज्योति निकल रही थी। सुहासिनी का हृदय काँपने लगा, और देवराज डरकर विश्वनाथ से चिपट गया। कोलूलू और डाक्टर गोमाको वहाँ दौड़ते हुए आये, और कोलूलू ने अपनी भाषा में उससे कुछ कहा, जिसको सुनकर बालिका भयानक शब्द के साथ हँसने लगी। कोलूलू ने भूमिष्ट होकर उससे फिर कुछ कहा, और इस बार वह चुपचाप आगे बढ़ गई।

उसके आगे जाते ही सुहासिनी ने डाक्टर गोमाको को बुलाया। उसके आने पर उसने शंकित स्वर में पूछा—"यह सब क्या है, और वह बालिका यहाँ खड़ी होकर क्या देखती थी?"

"आप भयभीत न हों। यह मचान पहले-पहल यहाँ पर गाड़ा गया है, इसलिए वह पूछती थी कि ऐसा क्यों किया गया है? बात यह है कि उस पर मोम्बा देवता का आवेश आ गया है। आपने देखा होगा कि इस गाँव के राजा ने उसे पाँच प्याले पीने को दिए थे। उन प्यालो में इसी जंगल में उगने वाली एक लता का रस था। उसके प्रभाव से एक प्रकार का आवेश चढ़ जाता है, और कहते हैं कि उसका रस पीने से मोम्बा सर्प का विष चढ़ता नहीं। अभी आप देखेंगी कि मैदान में उसी रस से भरा हुआ एक घड़ा पहुँचाया जायगा। देखिए राजा स्वयं उसे उठाए हुए आ रहा है। बालिका इस समय देवी के रूप में प्रतिष्ठित है। उसको अपने घर आदि का कोई ज्ञान नहीं है, यहाँ तक कि अपने माता-पिता को भी वह नहीं पहचानेगी।"

"उस लता का रस क्यों मैदान में पहुँचाया जा रहा है?"

"इसका कारण नहीं जानता। कोलूलू से पूछने पर मालूम होगा।"

"इस मैदान में क्या होगा?"

"यहाँ पर अभी थोड़ी देर में मोम्बा सर्प आयेंगे, और उस बालिका की पूजा करेंगे।"

"पूजा करेंगे ! यह कैसे संभव है ?"

"मेरा भी इस उत्सव को देखने का पहला अवसर है। सब बातें नहीं जानता।"

"अच्छा, उस बालिका से कोलूलू ने क्या कहा था जिसे सुनकर वह हँसी थी ?"

"उसने कहा था कि यह लोग हमारे मेहमान हैं, और तुम्हारी पूजा देखने आए है। देवी प्रसन्न होकर हँसी, और फिर कोलूलू ने सविनय कहा कि उनको कोई हानि न होनी चाहिये, जिसे उसने स्वीकार किया, और अभय देकर चली गई।"

"इसका यह अर्थ है कि मोम्बा यहाँ नहीं आ सकेंगे ?"

"हाँ, अभय देने से तो यही आशय निकलता है।"

"कोलूलू को जरा बुलाइये।"

"इस समय वह नहीं आ सकेगा। पुरोहित होने के कारण उसे मैदान में जाना पड़ेगा।"

"क्या वह भी बालिका के साथ वहाँ रहेगा ?"

"यह भी नहीं बता सकता। देखिये बालिका मैदान के बीचो-बीच पहुँच गई। राजा भी उसके समीप लता के रस का घड़ा लिए खड़ा है। वह पत्थर का लम्बा टुकड़ा जो आप देख रही हैं, मोम्बा सर्पों की आकृति है। देखिये, बालिका नहीं देवी उसके समीप बैठ गई। अब कोलूलू जा रहा है। उसने राजा के हाथ से उस रस-कलश को ले लिया। कोलूलू अब एक पात्र उस रस से भर कर बालिका को दे रहा है। बालिका उसे पी गई। अब दूसरा पात्र भर कर वह राजा को दे रहा है। देखिये राजा भी उसे पी गया। अब तीसरा पात्र भर कर वह स्वयं पी रहा है।"

"राजा भी क्या वहाँ ठहरा रहेगा ?"

"नहीं, देखिये राजा वापस आ रहा है। वह शायद वहाँ नहीं रहेगा। देखिये ढोल बजने लगे।"

"ढोल क्यों बजने लगे ?"

"अब शायद पूजा का पहला भाग समाप्त हो गया। अरे यहाँ के सभी निवासी उस रस को पियेंगे, देखिए राज-प्रसाद से वे लोग घड़े पर घड़े ला रहे हैं। आज दिन-भर जितनी लता मिल सकी काट कर लाई गई और उससे रस निकाला गया था। अरे! राजा तो इधर ही आ रहा है। देखूँ वह इधर क्यों आ रहा है ?"

यह कह कर वह मचान के नीचे उतरने लगा, किन्तु सुहासिनी ने उसके कोट का एक सिरा पकड़ते हुए कहा—"आप कहीं न जाइये। गोपाल कोमियाटा कहाँ है, उसे भी बुला लीजिये।"

डाक्टर गोमाको ने उसको आश्वासन देते हुए कहा—"आप घबड़ाइये नहीं। आपका या किसी का भी कोई अनिष्ट नहीं होगा। मैंने सब प्रकार से जान लिया है। देखिए, राजा मुझे नीचे आने का संकेत कर रहा है। मैं अभी मिलकर आता हूँ। देखिये गोपाल कोमियाटा गाँव निवासियों के आगे की पंक्ति में खड़ा हुआ रस पी रहा है। मैं नीचे जाकर उसको सबसे पहले आपके पास भेजता हूँ। आप बिल्कुल निश्चिन्त रहिए।"

राजा बड़ी अधीरता से डाक्टर गोमाको के आगमन की प्रतीक्षा में खड़ा था। वह तुरन्त ही मचान से उतर कर उनके पास गया। राजा ने वह पात्र जिसे वह अपने हाथ में लिए था, उसको देते हुए कुछ अपनी भाषा में कहा, जिसे सुनकर उसने स्वीकारोक्ति में शिर नत किया। गोमाको रस से परिपूर्ण पात्र लिए मचान के ऊपर आया, और सुहासिनी से बोला—"लीजिए राजा ने यह प्रसाद आपके पीने के लिए भेजा है।"

सुहासिनी ने शिर हिलाकर अपनी असम्मति प्रकट की, और कहा—"न-मालूम इसका कैसा प्रभाव हो मैं नहीं पिऊँगी।"

इसी समय गोपाल कोमियाटा एक छोटा सा घड़ा लिए हुए मचान के

ऊपर आया, और उसने डाक्टर आनन्द से कहा—"कम से कम एक-एक प्याला आप सब लोग देवी का प्रसाद पीने की कृपा करें। राजा ने कहलाया है कि बिना इस प्रसाद को लिए आप लोग पूजा नहीं देख सकेंगे।"

विश्वनाथ ने प्रश्न किया—"क्यों, हम लोग तो विदेशी हैं, इस प्रकार की पूजा पर विश्वास नहीं करते।"

डाक्टर गोमाको ने उत्तर दिया—"विदेशी होने से क्या हुआ? हम लोग पूजा तो देख रहे हैं। मेरा ऐसा अनुमान है कि जो मनुष्य इस लता का रस पी लेते हैं, उस पर मोम्बा के विष का प्रभाव नहीं होता, यदि कदाचित कोई सर्प काट भी लेवें।"

"दूसरा कारण शायद यह भी हो सकता है कि इस रस के पीने वाले को मोम्बा काट नहीं सकता। संभव है कि वह इसकी गंध से दूर भागता हो। भारत के मरुभूमि प्रदेशों में एक प्रकार का सर्प होता है, जिसे वहाँ के निवासी "पीवन साँप" कहते हैं, वह उनके समीप तक नहीं जाता जो कच्चा लहसुन और प्याज खाते हैं। खाने वाले मनुष्यों के मुँह और शरीर से ऐसी गन्ध निकला करती है, जिससे पीवन साँप दूर भागता है।"

देवराज ने उत्सुकता से पूछा—"पीवन साँप कैसा होता है?"

"पीवन साँप लगभग दस-बारह इंच से अधिक लम्बा नहीं होता। रंग इसका मटियाला होता है और बड़ा शीघ्रगामी है। इसको मारना कठिन है। यह मनुष्य पर तभी आक्रमण करता है, जब वह चित सोया हुआ होता है। साँप आकर उस सोये हुए व्यक्ति की छाती पर बैठ जाता है, और मनुष्य की निश्वासों के साथ अपनी प्रश्वासों द्वारा विष प्रवेश करता है। जब विष की कुछ मात्रा उस व्यक्ति में प्रवेश कर जाती है, तब वह उसे अपनी पूँछ से मारकर जगा देता है। उसके जागते ही एक शब्द द्वारा अपने घात की सूचना देता है, और अदृश्य हो जाता है। सूर्योदय के पहले यदि उसका उपयुक्त उपचार हो गया तो उसकी प्राण रक्षा हो जाती है, नहीं तो सूर्य की प्रथम किरण निकलते ही वह प्राण विसर्जन करता है।"

डाक्टर आनन्द—"क्या यह सत्य है ?"

विश्वनाथ—"जी हाँ, विष अनुसन्धान के सिलसिले में मैंने जोधपुर-जैसलमेर और बीकानेर की यात्रा की थी, और वहाँ के निवासियों से इस सर्प के विषय में सुना था। उसके पकड़वाने की बहुत कोशिश की, किन्तु सफल नहीं हुआ। विष उसके किसी दाँत में नहीं, वरन् श्वास में होता है। यह एक नए प्रकार का विषमुख है।"

डाक्टर गोमाको—"अब बातो में समय नष्ट न कीजिए। जिस सर्प पूजा को देखने के लिए आप लोग आए हैं, उसे देखिए। कृपा करके आप सब लोग एक-एक पात्र इस औषधि का पी लीजिए। इसको पहले पी लेने की इसलिए आवश्यकता है, कि मोम्बा के विष का प्रभाव न हो सके। वह इतना विषैला सर्प है कि उसके काटने के पश्चात् कोई उपचार नहीं हो सकता, क्योंकि उसकी तुरन्त मृत्यु हो जाती है। अतएव उसका उपचार पहले ही होना संभव है।"

विश्वनाथ—"निस्सन्देह हमें जब आज की रात्रि सर्पों के मध्य बिताना है, तब इस औषधि को अवश्य पी लेना चाहिए। मै तो कहूँगा, कि एक दूसरा घड़ा भी मँगवा लिया जाय, जिसमें से हम लोग बीच बीच में पीते रहेंगे।"

डाक्टर गोमाको ने गोपाल कोमियाटा को इसका एक घड़ा और लाने का आदेश दिया, फिर वह एक-एक पात्र सबको पीने के लिए देने लगे। राजा का का दिया हुआ पात्र सुहासिनी पीने में आगा-पीछा करने लगी। उसको पीने के लिए उत्साहित करने के उद्देश्य से विश्वनाथ ने पहला पात्र स्वयं पिया।

सुहासिनी ने पूछा—"कैसा स्वाद है ?"

"कुछ-कुछ तिक्त है। तुम भी पी जाओ। पिताजी, आप भी पीजिए।"

विश्वनाथ के उत्साहित करने से सबों ने एक-एक प्याला उस औषधि का पी लिया। उसके पीने के पश्चात् एक प्रकार की स्फूर्ति उनके शरीर में दौड़ने लगी और चित्त प्रसन्न हो गया। सुहासिनी के हृदय में जो भय छाया हुआ था, क्रमशः कम होने लगा, और वह मुदित उत्सुकता से उस मैदान की ओर देखने लगी, जहाँ कोललू विविध मंत्रों का उच्चारण करता हुआ, बालिका का पूजन कर रहा था।

सुहासिनी ने गोमा को से पूछा—"कोलूलू वहाँ क्या कर रहा है?"

"वह उस बालिका की पूजा करके उसे देवी के रूप में प्रतिष्ठत कर रहा है। इस गाँव में यह प्रथा प्रचलित है कि यहाँ की अविवाहित कन्याओं में से एक को देवी के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए वरण किया जाता है। यह चुनाव महीने में एक बार बारी-बारी से होता है। मनोनीति लड़की को तपस्या करना पड़ता है। एक महीने तक उन्हें माँस और अन्न खाने के लिए नहीं दिया जाता। जङ्गल के फल-फूल और दूध खा-पीकर वे रहती हैं। भोजन और तपस्या का यह क्रम पूर्णिमा के बाद की प्रतिपदा से आरंभ होकर पूर्णिमा तक रहता है। इस प्रकार प्रत्येक पूर्णिमा को एक नई बालिका देवी के पद पर प्रतिष्ठित की जाती है, और उसकी अवधि केवल एक मास तक रहती है। कहते हैं कि उसके देवी पद प्राप्त करने से उसमें इतनी शक्ति आ जाती है कि मोम्बा उसके आदेशों का पालन करने के लिए बाध्य हो जाता है। पूजा इसीलिए की जाती है कि वह सभी इस उत्सव में भाग लेने वालों सर्पों को आदेश दे कि वे इस गाँव के किसी भी निवासी को कभी न डसे।"

"क्या वे इसका आदेश पालन करते हैं?"

"कहते तो यही हैं यद्यपि यहाँ मोम्बा भरे पड़े हैं, तथापि कभी किसी ग्राम निवासी को उन्होंने काटा नहीं है। अभी तक तो ऐसी कोई घटना सुनी भी नहीं गई। यदि कदाचित कहीं मोम्बा निकल आता है तो देवी वहाँ पहुँच कर उन्हें तुरन्तु आदेश देती है, और वह उसकी आज्ञा पालन करता है।"

"यह तो बड़े आश्चर्य की बात है?"

डाक्टर आनन्द ने मुस्कराते हुए कहा—"आश्चर्य कुछ नहीं, केवल तपस्या और मानसिक बल से ऐसा होता है। भारतीय मुनि और महर्षियों के आश्रमों में भी ऐसा होता था। उनके तपोबल के प्रभाव से हिंसक और विषमय प्राणी निरीह हो जाते थे। यह केवल कपोल-कल्पना मात्र नहीं है। सूक्ष्म शक्तियाँ तो स्थूल शक्तियों से अधिक प्रभावशाली होती हैं, और वे ऐसा करने में असमर्थ हैं।" यह शक्ति निरन्तर अध्यवसाय और स्थूल शक्तियों को नष्ट करने प्रास से होती हैं।"

"पापा को तो अपनी बात जमाने के लिए कोई अवसर चाहिए। वे कभी न चूकेंगे।" सुहासिनी ने सहास्य कहा।

"तुम्हें यही सब दिखाने के लिए ही तो अपने साथ लाया हूँ। अभी तुम देखोगी कि किस प्रकार मनुष्यों के हृदय से भय दूर किया जाता है। जो वस्तु अनजान रहती है, उसी से भय लगता है, और जाने पहचाने व्यक्तियों अथवा वस्तुओं से कोई भय नहीं खाता। यह प्रदेश मोम्बा सर्पों की वासस्थली है, इसलिए उसके भय को दूर करने के लिए विचारकों तथा तत्व ज्ञानियों ने यह उपाय ढूँढ़ निकाला है। महीने में एक दिन उनको देखकर, उनसे मिल-जुल कर वे उभय पक्षों के हृदय से भय दूर कर देते हैं। मोम्बा यहाँ के मनुष्यों न डरता है, और न मनुष्य उससे। वे एक प्रकार से सह अस्तित्व का सिद्धान्त पालन करने लगते हैं। या यों कहो कि वे स्वयं जीवित रहते हैं तथा दूसरों को भी जीवित रहने देते हैं। यदि मनुष्य संसार का सर्वोत्कृष्ट प्राणी है तो केवल इसलिए कि वह सह अस्तित्व के सिद्धान्त को अपने कार्य कलापों से प्रतिपादित करने की सामर्थ्य रखता है। प्रकृति ने उसे किसी भी प्राणी का खाद्य नहीं बनाया है, जिससे सहज वैर की कल्पना की जा सके। जैसी प्रवृत्ति बिल्ली आदि मांसाहारी जीवों में अन्य प्राणियों जैसे चूहे आदि को नष्ट करने की होती है, वैसी कोई प्रवृत्ति मानव में नहीं है। वह केवल अज्ञानतावश दूसरे जीवों को अपना खाद्य बनाता है। जैसा खाद्य होता है वैसे ही मन के संस्कार बनते हैं। जब मानव अन्य जीवों को अपना खाद्य बनाता है, जिनमें भय की मात्रा होती है, क्योंकि वे एक दूसरे के आहार होते हैं, इसलिए मनुष्य में भी भय उत्पन्न हो जाता है। नहीं तो कोई कारण नहीं है कि मनुष्य के मन में अन्य प्राणियों से भय उत्पन्न हो, यदि वे उसी खाद्य पर अपना जीवन निर्वाह करें जिसे प्रकृति ने उनके लिए बनाया है।"

"पापा की सूझ-बूझ निराली है।" यह कह कर सुहासिनी पुनः हँसी।

डाक्टर गोमाको, जो बड़े ध्यान से सुन रहे थे, बोले—"डाक्टर साहब, आपका कथन नितान्त उपेक्षणीय नहीं है। खाद्य का बहुत बड़ा प्रभाव हमारे ऊपर पड़ता है।"

"प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। हमारे शरीर में भोजन ही से ऊर्जा उत्पन्न

होती है। जिस प्रकार का भोजन होगा, उस प्रकार की ऊर्जा होगी। यदि भोजन की वे वस्तुएँ हों, जिन्हें प्रकृति स्वच्छन्द वातावरण में स्वयमेव उत्पन्न करती है तो उनसे उत्पन्न होने वाली ऊर्जा भी स्वच्छन्द होगी। भय, मोह, जड़ता आदि की भावनाएँ जन्म नहीं लेंगी।"

"शायद जंगली लोग इसीलिए इतने भयरहित होते हैं!"

"हाँ, यदि जगली मांसाहारी न हों। ऐसे जंगल के निवासी जो केवल वन्य फल-फूलों को खाकर जीवन धारण करते हैं, जैसे प्राचीन भारत के ऋषि-मुनि आदि करते थे, उनमें तामसिक भावनाएँ पैदा न होंगी और संस्कार गत भावनाएँ उसके प्रभाव से नष्ट हो जायगी। हमारे पूर्वजों ने इसीलिए भोजन को भी तीन विभागों में बाँटा था, सात्विक, राजसिक, और तामसिक। प्रकृति जिन्हें स्वयमेव प्रदान करती है वह सात्विक भोजन है, और जिन्हें मनुष्य अपनी शक्ति तथा साधनों जैसे खेती आखेट आदि से प्राप्त करता है, वह राजसिक है, तथा सात्विक एवं राजसिक के बिगड़े रूप तामसिक है।"

"लेकिन खाद्यों का विटामिन आदि द्वारा वर्गीकरण भी तो होता है।"

"हाँ, वह वर्गीकरण स्थूल शक्ति का है, सूक्ष्म ऊर्जा शक्ति का नहीं। अभी तक पश्चिम का दृष्टिकोण स्थूलिक है, अथवा यदि हम इसको यान्त्रिक युग कहें तो ठीक होगा। जिस प्रकार सूक्ष्म शक्ति का सम्बन्ध मनोबल अर्थात् मन्त्रों से है, उसी प्रकार स्थूल शक्ति की उत्पत्ति का आधार यन्त्र हैं, तथा मन्त्र अर्थात् शिव और यन्त्र अर्थात् शक्ति का सम्मिश्रण तन्त्र है।"

सुहासिनी ने ऊबकर कहा—"डाक्टर गोमाको, कृपा करके पापा को भी सर्प-पूजा देखने दीजिए, और मुझको समझाते जाइए। यदि आप बहस करते जायगें तो पापा न स्वयं कुछ देखेंगे, और न दूसरों को देखने देंगे। उनके भंडार में अनोखो और सिद्धान्तहीन बातों की कमी नहीं है। देखिए कोलूलू अब उठ खड़ा हुआ। क्या पूजा समाप्त हो गई?"

"जी हाँ, मालूम तो ऐसा ही होता है। देखिए राजभृत्य बहुत से घड़े लिए हुए रंगशाला में जा रहे हैं। न-मालूम इनमें क्या है?"

"संभव है कि इनमें भी लता का रस हो, किन्तु इतने रस का क्या होगा! यह सर्पों को तो नहीं पिलाया जायगा!"

"हाँ, शायद यही बात है। देखिए, कुछ लोग सैकड़ों कटोरे लिये जा रहे हैं।"

"तब तो अवश्य सर्पों के भोज का प्रबन्ध हो रहा है।"

"उन भृत्यों ने कटोरों को घड़ों के पदार्थ से भरना आरम्भ कर दिया। यह तो दूध की तरह श्वेत है। चाँदनी ने यद्यपि उसके रंग को छिपा लिया है, तथापि दूध के अतिरिक्त वह कुछ नहीं हो सकता। लता का रस तो मनुष्यों के पीने के लिए था। सभी प्रकार के सर्प दूध पीने के लिए उत्सुक रहते हैं। बेशक यह दूध ही है। प्यालों में दूध भर-भर कर देवी के चारों ओर राजभृत्य रख रहे हैं। एक चोड़े मुँह का घड़ा और प्याला देवी के बिल्कुल निकट रख दिया गया है, जो शायद प्यालों का दूध निःशेष होने पर बड़े घड़े के दूध से भरती जायगी। आस-पास दूसरे घड़े भी रख दिए गए हैं।"

"शायद इनसे उस समय दूध लिया जायगा, जब बड़े घड़े का दूध समाप्त हो जायगा!"

"आप का अनुमान सही है। अब कोलूलू देवी की परिक्रमा कर रहा है। मालूम होता है कि अब पूजा समाप्त हो गई है।"

इसी समय गाँव के ढोल तुमुल नाद से बज उठे। ग्राम निवासी अपने-अपने स्थानों पर टोलियां बनाकर नाचने लगे। गाँव भर में हर्ष का एक वातावरण छा गया।

— २२ —

कोलूलू की परिक्रमा समाप्त होते ही ढोलों का बजना थम गया। नरसिंगे के आकार के वाद्य को चार व्यक्ति चारों दिशाओं की ओर बजाने लगे। गोपाल कोमियाटा जो उनके समीप बैठा हुआ वहाँ के दृश्य देख रहा था, बोला—

"मिस साहिबा, ये लोग सापों के आने के लिए निमंत्रण दे रहे हैं। इनको एक विशेष रीति से बजाया जा रहा है, जैसा कि प्रायः नहीं बजाया जाता।"

गोमाको—"हाँ, कोमियाटा का अनुमान ठीक मालूम होता है। देखिए वे बजाने वाले उत्तरोत्तर अपनी-अपनी दिशाओं में बढ़ते जाते हैं, जिससे दूर-दूर तक शब्द व्याप्त हो जाय।"

सुहासिनी—"क्या साँप इस शब्द को सुनकर जान जाते हैं कि उनको निमंत्रित किया जा रहा है। यह कैसे संभव है?"

डाक्टर आनन्द—"असंभव कुछ नहीं है। कुत्ता, बिल्ली, गाय, घोड़े आदि पालतू जानवर जिस प्रकार मानवों के शब्द संकेतों को सुन और समझ लेते हैं, उसी प्रकार दूसरे प्राणी भी समझ लेते हैं, मगर शर्त यही है कि वे कभी-कभी साथ रहें।"

विश्वनाथ—"लेकिन उन शब्द संकेतों को कुछ दिनों तक समझाना पड़ता है।"

डाक्टर आनन्द—"मनुष्य शीघ्र से शीघ्र उनसे अपना काम लेने के लिए उद्देश्य से उन्हें सिखाता-पढ़ाता है। बारम्बार कोई काम एक ही रीति से करने पर उसकी परम्परा बन जाती है, जो स्वयं शिक्षक का रूप धारण करती है। सापों के आवाहन करने का यह क्रम वर्षों से चला आता है। पहले कुछ दिनों तक कठिनाई हुई होगी, किन्तु परम्परा बन जाने से वह अब दूर हो गई। जब इस विशेष प्रकार के शब्द को साँप सुनते हैं, तो उन्हें पुरानी परम्परा के आधार पर ज्ञात हो जाता होगा कि अब गाँव-निवासी हमें निमंत्रित कर रहे हैं।"

सुहासिनी—"साँपों के कान तो होते नहीं!"

डाक्टर आनन्द—"हां, प्रकट रूप में हमारे कानों की भाँति तो उनके शरीर पर नहीं दिखाई पड़ते, किन्तु उनमें सुनने की शक्ति है। संस्कृत भाषा में साँप का एक नाम चक्षुःश्रवा है, जिसके अर्थ हैं,—आंखों के द्वारा सुनने वाला। संभव है कि वह चक्षुओं से श्रवणेन्द्रिय का भी काम लेता हो।"

"सुहासिनी—"तब तो इसका अर्थ यह है कि वह सुन तभी सकेगा जब वह देख भी सकता हो।"

डाक्टर आनन्द—"सुनने के लिए देखना आवश्यक नहीं है, किन्तु सुनने के समय जब चक्षुओं का भी योग होता है, तब शब्द अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। वक्ता का मुख देखने का प्रयत्न प्रत्येक श्रोता करता है। इससे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि सुनने और देखने में एक सम्बन्ध है। यह भी देखा जाता है कि अन्धों की श्रवण शक्ति बड़ी तीव्र होती है, अतएव वे अवश्य परस्पर सम्बन्धित हैं।"

सुहासिनी—"पापा, आपकी यह बात तो सच मालूम होती है, कम से कम इसमें कल्पना नहीं है।"

विश्वनाथ—"जो बात आपके मस्तिष्क में बैठ जाय वह सही है, शेष सब विचार चाहे वे जितने युक्ति संगत हों, आपकी दृष्टि में कपोल-कल्पित हैं।"

जबसे कान्ति के द्वारा सुहासिनी को ज्ञात हुआ कि उसके पिता उसका विवाह विश्वनाथ से करने का विचार रखते हैं, तबसे वह एक प्रकार से उनसे खिंची-खिंची-सी रहती थी। भाई के रूप में जिसे पाकर उसके मन का संचित स्नेह उमड़ा पड़ता था, इस प्रसंग से उसमें एक बाधा उत्पन्न हो गई थी। अपने पिता से इस विषय में वह बात करना चाहती थी, किन्तु उनको जो धक्का पहुँचेगा, उससे डरकर वह प्रसंग छेड़ने में विलम्ब कर रही थी। अभी तक उसने विवाह के सम्बन्ध में कभी सोचा ही न था और वह इसको सदैव टालती रहती थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कान्ति के द्वारा अपने विवाह की बात सुनकर वह इस विषय पर सोचने के लिए बाध्य हुई थी, परन्तु वह अपना कोई निश्चित मत स्थिर नहीं कर पाती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि आजकल उसकी वाचलता गंभीरता में बदल रही थी, और विश्वनाथ से बहुत कम बोलती थी। विश्वनाथ भी उनकी गंभीरता देखकर बहुत कम सीधे-सीधे उसको सम्बोधित कर बात करते थे, यद्यपि उसकी ओर से यह व्यवहार अकारण ही था। संभवतः वे उसकी गंभीरता की रक्षा करना चाहते थे।

सुहासिनी ने विश्वनाथ की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उसने रंगभूमि की ओर देखते हुए कहा – "देखिए डाक्टर गोमाको, अब कोलूलू उस देवी बालिका को क्या पिला रहा है?"

"यह तो दूध का पात्र मालूम होता है। संभव है कि लता का रस हो!"

"जी नहीं, यह दूध ही है। रात्रि उसे साँपों के साथ व्यतीत करना है, इसलिए उसे खिलाया-पिलाया जा रहा है।"—गोपाल कोमियाटा ने कहा।

"कोमियाटा का अनुमान सत्य है। देवी, अब कोलूलू के चौथे पात्र को पीने से इनकार कर रही हैं। अब वे उस सर्पाकार पत्थर की मूर्त्ति पर बैठ गई हैं। नरसिंगा बजाने वाले भी लौटकर अपने-अपने स्थानों की ओर शीघ्रता से आ रहे हैं। देखिए बाजे बजने बन्द हो गए हैं। कोलूलू उठ कर चारों ओर देख रहा है, जैसे किसी के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा हो।

"अब मोम्बों के आने की प्रतीक्षा कर रहा है। भला इतनी छोटी बालिका कैसे साँपों के समूह में अकेली रहेगी?" सुहासिनी ने पूछा।

डाक्टर आनन्द ने उत्तर दिया—"आत्म विश्वास सूक्ष्म शक्ति का सबसे प्रबल बल है। इस बालिका के मन में एक महीने की तपस्या से यह धारणा बद्ध मूल कर दी गई है कि वह मोम्बा साँपों की देवी है, और वे सब उसके अनुचर हैं। उसमें उनको आदेश देने की क्षमता है, और वे उसकी आज्ञाओं का पालन करेंगे। इस आत्म विश्वास के बल पर उसके मन का भय दूर हो गया है। साँप उसके लिए क्रीड़ा के साधन बन गए हैं। जिस प्रकार बालक अपने खिलौनों से नहीं डरता, उसी प्रकार वह उनसे नहीं डरती। जब एक पक्ष में भय नहीं होता तो दूसरा पक्ष भी उसे त्यागने के लिए बाध्य होता है। साँप या कोई भी पशु मनुष्य पर इसलिए आक्रमण करता है, क्योंकि उससे उसके मन में भय उत्पन्न होता है। यदि भय उत्पन्न न हो तो वह कभी उसी प्रकार आक्रमण नहीं करेगा, जैसे वह लता, पेड़, झंखाड़ आदि पर नहीं करता, क्योंकि उसे ज्ञात है कि उनसे उसकी कोई हानि नहीं होगी।"

डाक्टर गोमाको ने उनकी बात का समर्थन करते हुए कहा—"हम

आत्म रक्षा के लिए ही दूसरों पर अक्रमण कर उनको नष्ट कर देने का प्रयास करते हैं। मनुष्य आक्रमण उन्हीं पर करता है जिससे स्वरक्षा में आशंका होती है।"

डाक्टर आनन्द—"तभी तो सह-अस्तित्व के लिए आवश्यक है पारस्परिक विश्वास उत्पन्न करना, और भय का सर्वथा निराकरण करना!"

सुहासिनी ने प्रश्न किया—"किन्तु आत्म-रक्षा का सिद्धान्त तो प्रकृति दत्त है।"

"हाँ, किन्तु उसकी पृष्ठ भूमि में परम्परा निहित है। परम्परा से भी प्रकृति का बनना स्वाभाविक होता है। अब यदि हम नई परम्परा चलावें, तो उसके बनने में समय अवश्य लगेगा, किन्तु जब वह बन जायगी, तब वह स्वभाव में परिणत हो जायगी। गाय, बैल इत्यादि पशुओं से भय उत्पन्न नहीं होता क्योंकि परम्परा उनसे भय उत्पन्न न होने की है।"

इसी समय एक तीव्र चीत्कार से वातावरण गूँज उठा। सुहासिनी ने पूछा—"यह कैसा शब्द है?"

गोपाल कोमियाटा ने उत्तर दिया—"यह मोम्बा के स्वर की भाँति है। मैंने कोम्बों को इसी प्रकार का शब्द करते सुना है। कोलूलू ही यह शब्द कर कर रहा है, शायद वह अब मोम्बों को बुला रहा है। वह इसी प्रकार का शब्द घूम-घूमकर बार-बार कर रहा है। अरे, वह देखिए, चारों दिशाओं से सर्प ही सर्प उमड़े पड़ रहे हैं। सभी दो-दो के जोड़ों में हैं। देखिए कोलूलू अब वहाँ से चल दिया।"

"बालिका को वह अकेली छोड़कर आ रहा है!" भय जड़ित् स्वर से सुहासिनी ने कहा।

डाक्टर गोमाको ने उत्तर दिया—"अब उसके वहाँ रहने में कोई सार्थकता न होगी। मोम्बा अपनी देवी और अपने बीच किसी अन्य की आवश्यकता न समझते होंगे।"

"अथवा वह स्वयं वहाँ रहने में डरता हो?" सुहासिनी ने उसमें योग दिया।

"आपका अनुमान शायद ठीक नहीं है। लता के रस के कारण मोम्बा के विष का असर न होगा, यह तो पक्की बात है, तब वह निर्भय होकर वहाँ विचर सकता है। देखिए साँपों के झुंड के झुंड चले आ रहे हैं। चाँदनी रात में वे पृथ्वी तल पर इस प्रकार लहराते चल रहे हैं, जैसे सुन्दर युवतियों के चेहरों पर कुन्तल राशि लहराती है। ज्यों-ज्यों वे आते-जाते हैं, त्यों-त्यों वे दूध से भरे पात्रों में मुँह लगाते और पीने लगते हैं। देखिए देवी के चारों ओर लम्बे-लम्बे मोम्बा ही मोम्बा दिखाई पड़ते हैं। कितने ही उसके शरीर पर स्वच्छन्दता से रेंगते हैं, जिन्हें वह झटक कर फेंक देती है। वह देखिए कई खाली पात्रों में वह दूध भर रही है।"

"अरे, उसको बिल्कुल भय नहीं लगता। इतनी दूर और इतने सुरक्षित स्थान पर रहते हुए भी मेरे रोंगटें खड़े हो रहे हैं। यह तो साक्षात् मौत से खेलना है।"

"हाँ, किन्तु मृत्यु ने यहाँ अपना भय रूप खो दिया है। वह कौतुकमयी क्रीड़ा में परिवर्तित हो गया है। मोम्बा और बालिका दोनों एक दूसरे से भयभीत नहीं है, इसलिए आत्म रक्षा की कोई आवश्यकता महसूस नहीं करते।"

"देखिए, वे तो उसके गले, भुजाओं, और सिर पर चढ़ रहे हैं। उनमें से कितने ही गुँडली होकर उसकी भुजाओं तथा पैरों में लिपट गए हैं, ठीक उसी भाँति जैसे भगवान शंकर के चित्रों में देखे जाते हैं।"

"सुहास, शाबाश! तुमने शिव भगवान के उस रूप को स्मरण करके सारी शंकाओं का समाधान कर दिया है। सर्प उनके शरीर पर भी इसी भाँति लिपटे रहते हैं, किन्तु उनकी हानि नहीं करते, क्योंकि दोनों में बन्धुत्व है। इस भाँति शिव के स्वरूप की कल्पना शायद मनुष्यों के मन से सर्पों से उत्पन्न होने वाले भय को दूर करने के लिए ही की गई है। भगवान शिव के आराधक उनके अनुचरों से भयभीत न हों, इसलिए उनको भुजंगधारी आराध्य देवता बनाया है।"

"पिता जी, यहाँ की इस प्रथा में और भगवान् शंकर के उस रूप में कितना साम्य है!"

"वह तो होगा ही, क्योंकि दोनों सूक्ष्म तत्वों के पोषक होकर स्थूल या भौतिक भय को दूर करने का प्रयत्न करते हैं।"

इसी समय गाँव के ढोल तुमुल नाद से बजने लगे। ग्रामवासियों में नृत्य आरम्भ हो गया। ढोल के शब्द का प्रभाव सर्पों पर भी पड़ा। वे भी अपने फणों को उठा तथा खोल कर झूमने लगे, और ढोल के सम पर अपने-अपने फण हिलाने लगे। नृत्य का समाँ दोनों ओर बँध गया। संगीत ध्वनि ने उनको एक सूत्र में बाँध दिया। दूध के पात्र दूध से भरे थे, किन्तु अब कोई मोम्बा पी नहीं रहा था। उनकी सारी गतिविधि नृत्य की दिशा में थी। बीच-बीच में वे भी शब्द करते जाते थे, मानों वे सम का समर्थन कर रहे हो। इधर गाँव निवासी भी उल्लास में डूबे हुए थे। केवल आश्चर्य की बात यह थी कि दोनों—मनुष्य और मोम्बा अपनी-अपनी परिधि में थे। वे रंगभूमि से दूर गाँव की ओर प्रवेश नहीं कर रहे थे। डाक्टर आनन्द आदि सभी उन दोनों वन्य प्राणियों का अद्भुत समारोह देख रहे थे।

यह क्रम लगभग रात्रि के प्रथम प्रहर के पश्चात् आरंभ हुआ था, और अबाध गति से अन्तिम प्रहर तक चलता रहा। बीच-बीच में दोनों कुछ काल के लिए विश्राम लेते थे, और ढोलों पर थाप के साथ पुनः नृत्य रत हो जाते। सुहासिनी देखते-देखते थक कर सो गई थी। पौ फटने के समय मोम्बों ने पुनः पय पान किया, और जब प्रकाश पूर्व के वातायन से झांकने लगा तो डाक्टर आनन्द ने सुहासिनी को जगाते हुए कहा—"देखो, अब बिदाई का दृश्य भी देख लो।"

सुहासिनी उठकर बैठ गई, और वह दृश्य देख कर बोली—"देखिए देवी बालिका उन्हें जाने का संकेत करती हुई कुछ कह रही है।"

डाक्टर गोमा को, जो अब तक बिल्कुल सोये नहीं थे, बोले—"जी हाँ, वे अब विदा हो रहे हैं। देखिए अब प्रायः सभी उसके पैरों पर लोट कर अपनी अधीनता प्रदर्शित कर रहे हैं। ज्यों-ज्यों देवी उनको जाने का आदेश देती है, त्यों-त्यों वे अपने-अपने जोड़ों के साथ विभिन्न दिशाओं में जा रहे हैं। देखिए

गाँव में किसी की हानि नहीं हुई। हमारे मंच की छाया तक उन्होंने नहीं भेटी। सबेरे तक यह स्थान बिल्कुल साँपों से साफ हो जायगा।"

"सूर्य निकलने की कौन कहे, अभी सब न-मालूम कहाँ अदृश्य हो गए।" विश्वनाथ ने जम्हाई लेते हुए कहा।

"वास्तव में, ऐसे अद्भुत दृश्य की मैं स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकती थी।"

इसी समय वाद्य पुनः बजने लगे। राजा अपनी आठों रानियों के साथ रंगभूमि की ओर मन्थरगति से अग्रसर हुआ। उनके पीछे-पीछे ग्राम निवासियों का झुन्ड था। उनमें से कितने ही चलते हुए नाच रहे थे।

सुहासिनी ने पूछा—"अब ये लोग कहाँ जा रहे हैं?"

गोपाल को मियाटा ने बताया—"अब देवी की वन्दना करके उसे गाँव में ले आएँगे। आज से उसका सन्मान देवी की भाँति होगा। उसकी सभी इच्छाएँ तत्क्षण पूरी की जायगी, और वह भी गाँव की रक्षा सब प्रकार से करेगी।"

"वह उसकी रक्षा मोम्बाओं से करेगी, अथवा किसी अन्य प्रकार से भी?"

"मनुष्य और पशुओं को रुग्णता में भी वह अपनी झाड़-फूँक से सहायता करेगी। यह देवत्व एक महीने तक बना रहेगा, और इस बीच गाँव में कोई दैवी प्रकोप घटित नहीं होने पाएगा।"

"क्यों डाक्टर गोमाको, क्या ऐसा ही होता है?"

"मैं इस विषय में कुछ नहीं जानता। परन्तु होता अवश्य होगा, नहीं तो यह प्रथा क्यों जारी रहती?"

"यदि ऐसा होता तो इस गाँव के लोग कभी न बीमार होते, और न कभी मरते।"

"हमारे यहाँ इतनी उन्नत चिकित्सा होते हुए बीमारियाँ आती हैं, और लोग मरते हैं, किन्तु इससे चिकित्सा शास्त्र के प्रति अविश्वास तो नहीं जन्म लेता, और न उन्हें कोई निरर्थक ही कहने को तैयार है। जीवन, मरण पर विज्ञान की प्रभुता अब तक स्थापित नहीं हुई है। इसी प्रकार यह पूजा भी एक प्रकार की चिकित्सा का रूप है। इसकी पृष्ठि भूमि में सूक्ष्म-शक्ति का बल है,

और वनस्पतियों तथा अन्य धातुओं से निर्मित औषधियों में स्थूल शक्तियों का बल होता है।" डाक्टर आनन्द ने सुयोग पाते ही कहा।

डाक्टर गोमाको ने कहा—"उधर देखिए, राजा अपनी रानियों समेत उस बालिका के सामने भूमिष्ठ हो प्रणाम कर रहे हैं। अरे अब तो सारा गाँव भूमिष्ठ हो गया।"

सुहासिनी ने भीतस्वर में पूछा—"क्या हमको भी इस प्रकार प्रणाम करना होगा?"

"प्रणाम करने में तो कोई हानि नहीं है। गोपाल कोमियाटा और मुझको तो करनt ही पड़ेगा, क्योंकि हम लोग यहाँ के निवासियों के साथ रक्त से सम्बन्धित हैं। आप लोग अपनी रीति से देवी को प्रणाम कीजिएगा। इसमें आपका कुछ अनिष्ठ नहीं होगा, वरन ग्राम निवासियों की श्रद्धा आप सहज ही प्राप्त कर सकेंगी। मैं उनको समझा दूँगा कि आपके यहाँ सम्मान करने की ऐसी ही प्रथा प्रचलित है। देखिए अब पुनः देवी को सबसे आगे लेकर वे गाँव की ओर आ रहे हैं। हम लोग मंच के नीचे जाकर उनका स्वागत कर प्रणाम करेंगे।"

गोपाल कोमियाटा के साथ डाक्टर गोमाको मंच के नीचे उतर गए। प्रभात काल की सुखद बयार अनेक पुष्पों के सुगन्ध भार से इतराती हुई उनमें नव जीवन सञ्चार कर रही थी।

थोड़ी ही देर में जुलूस उनके सामने आया। उन दोनों ने भूमिनत होकर प्रणाम किया। देवी मंच के समीप खड़ी हो गई, और राजा को संकेत करते हुई बोली, जिसको सुनकर उसने भूमिष्ठ डाक्टर गोमा को और कोमियाटा को उठाकर कहा—"देवी पूछती हैं कि उन्होंने पूजा देखली?"

उन्होंने सिर हिलाकर स्वीकोरोक्ति प्रकट की। देवी मुस्कराती हुई आगे बढ़ गई। चारों दिशाएँ ढोलों तथा अन्य वाद्यों के नाद से मुखरित होने लगी। वन्दना के स्तोत्रों से वायुमंडल गूँजने लगा।

विषमुखी

द्वितीय खण्ड

— १ —

गोपाल को मियाटा ने रात्रि की आई हुई डाक लाकर विश्वनाथ के सामने रख दिया। वे उस समय अपने परीक्षणों के परिणाम लिखने में व्यस्त थे, उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। कोमियाटा के पीछे-पीछे डाक्टर आनन्द ने कमरे में झाँका, और विश्वनाथ को व्यस्त देखकर वे लौटने वाले थे कि उनकी दृष्टि उन पर पड़ गई और उन्होंने पूछा—"पिताजी आइए, आप लौटे क्यों जा रहे हैं?"

डाक्टर आनन्द लौट पड़े और बोले—"तुम लिखने-पढ़ने में व्यस्त हो, इसलिए उसमें बाधा डालना नहीं चाहता था। डाक में आज एक ही पत्र है। यह किसका है? क्या भारत से आया है?"

"अभी देखा नहीं पिता जी, अब खोलता हूँ। डाकखाने की मोहर देखने से मालूम होता है कि यह मोम्बासा से आया है।"

"मोम्बासा से! तब तो शायद मेरा ही होगा।"

"लीजिए, आपही खोल कर पढ़िए।"

"नहीं, नहीं तुम ही खोलो। सिरनामा तुम्हारे ही नाम है।"

विश्वनाथ ने पत्र पढ़कर कहा—"यह तो कप्तान सुरेश चन्द्र का है। उनका जहाज मोम्बासा लौट आया है। उसमें कुछ खराबी हो गई थी जिसकी मरम्मत हो रही है। आपको भी प्रणाम लिखा है।"

"अच्छा! उनको इस बूढ़े की याद है! चलो दो-एक दिन के लिए मोम्बासा हो आवें, और कप्तान से मिल आवें। तुम्हारी ही तरह वह भी बड़ी

मोह-माया वाला है। है भी वह मेरी जन्मभूमि के पास का रहने वाला। जब तुम मुझको अपने साथ ले गए थे और परिचय कराया था, तब अधिक बात-चीत न हो सकी थी, क्योंकि तुम्हें लेकर मुझे शीघ्र से शीघ्र घर पहुँच कर सुहास को सूचित करना था। अब चलो, विस्तार से आलाप होगा! क्यों क्या इरादा है?"

"मैं तो स्वयं उनसे मिलने के लिए आतुर हूँ, किन्तु डाक्टर हाक क्या इस समय छुट्टी देंगे? आजकल हम लोग एक बहुत गंभीर विषय पर गवेषणा कर रहे हैं।"

"वह क्या है?"

"जब से अणु-शक्ति ज्ञात हुई है, तब से एक महान परिवर्तन हमारी खोज में हो गया है। हमें सृष्टि के अनेक गुह्य तत्वों का पता मिल रहा है। विषों में भी बहुत तीव्र शक्ति भरी हुई है। वे मरात्मक हैं, केवल इसलिए कि मानव शरीर उस शक्ति को सहन करने में असमर्थ है। विष शक्ति को यदि हम उपयोगी बना लें तो वह कल्याणकारी सिद्ध हो सकता है। शरीर के अनेक प्रकार के रोग उसके द्वारा समूल नष्ट हो सकते हैं, और इसके लिए अणु-शक्ति हमारी सहायता करेगी!"

"इन्जेक्शन आदि इसी सिद्धान्त पर तो बने हैं।"

"जी हाँ, मूलत: सिद्धान्त तो वही है। हमारा परीक्षण उस दिशा में नहीं है। डाक्टर गोमाको की बाहु में दो श्वेत चिन्ह हैं, जो मोम्बा द्वारा दंशित स्थान के चीर-फाड़ से हुए थे। आपको तो पहले बता चुका हूँ कि सिविल सर्जन के बँगले में एक देशी नौकर ने एक मोम्बा को मारा था, जिसे उसके साथी दूसरे साँप ने काट लिया था। काटते ही उसकी मृत्यु तत्काल हो गई। उसका शरीर मृत्यु के पश्चात् श्वेत हो गया। उसकी त्वचा का जन्मतः काला रंग श्वेत रंग में परिवर्तित हो गया। ऐसा निश्चय ही मोम्बा सर्प के विष से हुआ। फिर जब गोमाको ने उसके उस स्थान को चीरा तो उसमें पानी निकला। इसका अर्थ यह हुआ कि उसके शरीर का रक्त पानी हो गया। यों तो साधारण

रूप में मृत्यु होने पर शरीर का रक्त, पानी हो जाता है, किन्तु इस प्रकार नहीं, जैसा उस सर्पदंश से हो गया था। इसके पश्चात् चीर-फाड़ में दो बूँदें गोमाको की भुजाओं पर गिर गई, जिससे उस स्थान की त्वचा का रंग भी श्वेत हो गया। इससे यह प्रमाणित होता है कि मोम्बा सर्प के विष में त्वचा का रंग परिवर्त्तित करने की शक्ति है।"

"यह परीक्षण का आधार तो बनाया जा सकता है।"

"जी हाँ, इसी आधार पर हमारा परीक्षण हो रहा है। क्योंकि मोम्बा का विष सहज प्राप्य नहीं है, इसलिए अनेक विषों के समिश्रण से उस विष को ढूँढ़ निकालने की चेष्टा हम कर रहे हैं, जो मोम्बा में पाया जाता है।"

"अब तो वह सहज ही प्राप्त हो सकता है। उस लता के रस को पीकर हम मोम्बा को हस्तगत कर सकते हैं।"

"किन्तु अभी उस लता के रस का वैज्ञानिक विश्लेषण तथा परीक्षण नहीं हुआ है।"

"उस लता का रस प्राप्त करने से उसका परीक्षण हो सकता है। लता के मिलने में कोई कठिनाई नहीं है कोलूलू उससे परिचित है। उसके द्वारा वह सहज ही प्राप्त हो सकती है।"

"कोलूलू अपने गाँव में है। जब वह आयगा तो वह लता मँगाई जायगी। किन्तु तब तक हम लोग दूसरी भाँति परीक्षण कर रहे हैं। हमारा अनुमान है कि पोटेशियम साइनाइड जैसा कोई भयङ्कर विष मोम्बा सर्प में होता है, क्योंकि तात्कालिक मृत्यु उसी के प्रभाव से होती है। किन्तु साइनाइड में त्वचा को बदलने की शक्ति नहीं है"

"ऐसी उसमें कुछ न कुछ शक्ति तो है ही, क्योंकि उसका व्यवहार धातुओं का रंग परिवर्तित करने में होता है।"

"हाँ, उसी आधार पर हम दूसरे विषों का संयोग उसके साथ कर परीक्षण कर रहे हैं।"

"किन्तु सबसे सहज उपाय है मोम्बा को प्राप्त कर उसका विष ले लिया जावे।"

"किन्तु केवल उतने से ही हमारी समस्या तो हल नहीं हो जावेगी। हमें उस विष को तो अन्य प्रकार से प्राप्त करना है। जब तक हम उसमें सफल नहीं होंगें, तब तक उसका व्यवहार हम किस प्रकार कर सकेंगे?"

"मेरा सुझाव है कि पहले मोम्बा का विष प्राप्त किया जाय, और उसका सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण कर उसके तत्व जाने जाँय, और फिर वैसे ही तत्वों को खनिज पदार्थों में ढूंढ़ा जाय। कोई न कोई मिश्रण हमारे काम का निकल ही आवेगा।"

"जी हाँ, हम वैसा ही कर रहे हैं। पहले कोलूलू की सहायता से लता को प्राप्त कर उसका विश्लेषण करेंगे कि उसके कौन से तत्व उस विष के प्रभाव को नष्ट करते हैं। जब यह ज्ञात हो जायगा, तब पहले उसको कृत्रिमरूप से बनाने की चेष्टा करेंगे। इसके पश्चात् मोम्बा को जीवित पकड़ने का प्रयत्न किया जायगा। बिना जीवित पकड़े उसका विष इकट्ठा नहीं किया जा सकता।"

"हाँ, यह तो ठीक है। यदि तुमको इसमें सफलता मिल गई तो फिर संसार का बहुत बड़ा कल्याण कर सकोगे। गोरों और कालों की समस्या का अन्त ही कर दोगे। वह लेप या घोल जो मोम्बा के विष जैसे उपकरणों से बनेगा, उसके व्यवहार से सभी काले गोरे हो जायँगे, फिर रंग भेद संसार से नष्ट हो जायगा।"

"आप तो बड़ी दूर की बात कह रहे हैं, किन्तु यह अभी तो असंभव मालूम पड़ रहा है।"

"संसार में असंभव कुछ नहीं है, परिश्रम करने से सभी प्राप्त हो सकता है।"

"जी हाँ, इस खोज में अणु-शक्ति हमारी बहुत सहायता करेगी।"

"निश्चय ही यह सबसे बड़ी शक्ति मनुष्य को ज्ञात हुई है। हमारे यहाँ सूर्य को जगत का "आत्मन" तत्व बताया है "सूर्य आत्मा जगतस्थु शश्च।" इस पृथ्वी पर जितने पदार्थ, जड़ या चेतन उत्पन्न हुए हैं, सब सूर्य के ताप के कारण उत्पन्न होते हैं। सूर्य ही समग्र ऊर्जा का घर है, अतएव किसी भी प्रकार की ऊर्जा को खोजने के लिए हमें सूर्य-शक्ति का आश्रय लेना चाहिए।"

"निस्सन्देह सूर्य समग्र शक्ति का केन्द्र है। वैज्ञानिकों ने उससे विद्युत-शक्ति प्राप्त कर ली है, किन्तु···।

"किन्तु-विन्तु के फेर में मत पड़ो। इसी को आधार मान कर आगे बढ़ो। देखो अग्नि एक प्रकार की शक्तिमान ऊर्जा है। उसका रंग यद्यपि लाल है, तथापि उसका धूम काला होता है। यह भी लक्ष्य करो, जहाँ-जहाँ काले रंग के मनुष्य पाए जाते हैं, उन प्रदेशों में सूर्य जो ज्वलित पुञ्ज है, की किरणें पूर्ण प्रखरता के साथ पड़ती हैं। उस अग्नि पुञ्ज के धूम का रूप वही प्राणी धारण करते हैं, इसी से काली जातियाँ उत्पन्न हुई हैं। केवल वे प्रदेश जो उष्ण कटिबन्ध से अनुपातत: जितने दूर हैं, उतना ही वहाँ के निवासियों की त्वचा का रंग श्वेत है।"

"यह तो स्वत: प्रमाणित बात है।"

"किन्तु थोड़ा और ध्यान देने से तुम्हें ज्ञात होगा कि यदि तुम कोई ऐसा द्रव बना सको, जिससे सूर्य-ताप के कारण उत्पन्न होने वाला श्याम रंग का प्रभाव नष्ट हो जाय तो इस प्रकार भी तुम अपने उद्देश्य में सफल हो सकते हो।"

"उस दिशा में कितने ही वैज्ञानिकों ने अपने परीक्षण किए हैं, किन्तु उन्हें सफलता अभी तक नहीं मिली है।"

"इससे निराश होने की बात नहीं है। मैं स्वयं विज्ञान से अपरिचित हूँ, इसलिए कोई समीकरण तो नहीं बता सकता, किन्तु चेष्टा करने से उसमें भी सफलता मिल सकती है जैसे आइन्सटीन को मिली थी।"

"हाँ, ऐसा हो सकता है। उनसे तो विज्ञान का बड़ा उपकार हुआ है। उनकी 'क्वान्टम थियोरी' से वैज्ञानिक परीक्षण का सारा धरातल ही बदल गया है। मैं भी उसी का सहारा लेना चाहता हूँ।"

इसी समय सुहासिनी ने वहाँ प्रवेश किया। पिता और विश्वनाथ को बहस करते देखकर कहा—"पापा, आप सब का इलाज करते हैं, किन्तु अपनी बकवासी आदत का इलाज नहीं करते।"

यह कहकर वह हँसने लगी, फिर कहा—"चाय बिल्कुल ठंडी हो गई, आप दोनों की प्रतीक्षा करते-करते मैं जब थक गई तब यहाँ देखने आई, तो क्या देखती हूँ कि आप दोनों वैज्ञानिक अनुसन्धानों पर बहस कर रहे हैं। चाय पी लीजिये, फिर बहस कीजिये।"

"अच्छा बाबा चलो। तू तो मेरे हर काम में नियंत्रण लगाती है। जानती हो, हम दोनों आज शाम की गाड़ी से मोम्बासा जा रहे हैं। तुमको और देवराज को यहीं छोड़ जायँगे।"

"ठीक है, जाइये! देवराज भले ही यहाँ रहे, मैं तो रहने की नहीं, साथ चलूँगी।"

"जो न ले जायँ तो?"

"आप न ले जायँगे, मत ले जाइये, किन्तु टिकट लेकर रेल में बैठने से आप रोक नहीं सकते! अच्छा यह तो बताइये कि सहसा मोम्बासा जाने की क्या आवश्यकता सामने आ गई?"

"यह क्यों बताऊँ? सैर-सपाटे के लिए जा रहे हैं।"

"भैया, आप बताइए, पापा तो मुझसे नाराज हो गए हैं!"

"कौन कहता है कि मैं तुमसे नाराज हो गया हूँ?"

"यदि नाराज न होते तो क्या मुझे छोड़कर जाने का नाम लेते?"

"तेरा बचपना अभी तक दूर नहीं हुआ। जैसे बालपने में विरझाती-रूठती थी, उसी प्रकार अब भी इतनी बड़ी होने पर रूठती है।"

"पापा, मेरे बड़े हो जाने से क्या हुआ? मैं तो वही हूँ जो पहले थी।"

"हाँ, यह भी मेरी ही भूल है जो तुझे वयस्क समझता हूँ।"

"वयस्क ही क्यों दूसरों के लिए वयोवृद्ध हो सकती हूँ, किन्तु आपके लिए नहीं। अच्छा बताइए कि आप क्यों मोम्बासा जा रहे हैं?"

"बात यह है कि आज विश्वनाथ के एक मित्र का जो जहाज के कप्तान हैं, पत्र आया है, जिसमें लिखा है कि मोम्बासा में उनका जहाज आ गया है, और उसकी मरम्मत हो रही है, जिससे उनको कुछ दिनों तक वहाँ ठहरना पड़ेगा। मेरा इरादा है कि हम दोनों जाकर उन्हें यहाँ ले आवें।"

"क्यों भैया क्या यह वही कप्तान साहब तो नहीं हैं, जिन्होंने कान्ति बहिन को चिढ़ा दिया था ?"

"हाँ, वही हैं, जिनके जहाज पर मैं स्वदेश से आया था।" विश्वनाथ ने उत्तर दिया।

"तब तो बड़ा आनन्द रहेगा। आप अवश्य उन्हें लाइए, चाहे एक दिन के लिए ही क्यों न हो। अगर आप लोग उनको लाने में असमर्थ हों तो मैं चलूँ।"

"तुम चल कर क्या करोगी ?"

"उन्हें पकड़ कर ले आऊँगी। वे भी तो हमारे भाई हैं, अपनी बहिन का अनुरोध कभी नहीं टालेंगे।"

"तब तो ठीक है, हम दोनों के जाने की कोई आवश्यकता नहीं, तुम ही जाकर ले आओ।"

"अच्छा, हम तीनों साथ चलेंगे। एक रात की तो बात है, गोपाल के साथ देवराज रह जायगा। उन दोनों में पटती भी बहुत है। चलिए, अब चाय पीजिए। यहाँ से गाड़ी दो बजे दिन को छूट जाती है। मुझे जाने का सब प्रबन्ध करना है।"

"विश्वनाथ, आओ चुपचाप चाय पी लें, नहीं तो सुहास की दूसरी डाँट पड़ने ही वाली है।"

सुहासिनी हँस पड़ी, और तीनों हँसते हुए चाय पीने के लिए दूसरे कमरे में चले गये।

— २ —

कप्तान सुरेशचन्द्र की प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा, जब उन्होंने विश्वनाथ, डाक्टर आनन्द और सुहासिनी को सहसा देखा। पहली दृष्टि में उन्होंने सुहासिनी को कान्ति समझा, किन्तु जब कुछ ध्यान दिया तो उन्हें अपनी भूल ज्ञात हुई। उन्होंने बड़ी आवभगत के साथ उनको बैठा कर कहा—"आप

लोगों ने क्यों इतना कष्ट किया, एक पत्र लिख देते तो मैं स्वयं नैरोबी आ जाता ! जहाज की मरम्मत में लगभग १५ दिन लग जायँगे, तब तक मेरी छुट्टी है। अपने सहायक को यहां का कार्य-भार देकर मै सहज ही वहां आ सकता था।"

डाक्टर आनन्द ने पुलकित होकर कहा—"एक तो हमें यह बात मालूम नहीं थी, दूसरे मोम्बासा में भी कुछ काम था। अब आप हमारे साथ चलिए, नैरोबी का जलवायु अच्छा है, उससे आपको लाभ होगा।"

"जी हां, अवश्य चलूँगा। समुद्री जीवन बड़ा शुष्क और लगभग कैदखाने का जीवन है। चारों ओर पानी के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं पड़ता, इससे तबियत ऊब जाती है। हरे-भरे वृक्षों को देखने के लिए मन छटपटाया करता है।"

"और हमारा मन अनन्त जलराशि को देखने के लिए लालायित रहता है।" सुहासिनी ने अपनी मधुर मुस्कान के साथ कहा।

"दिन के बिना रात्रि और रात्रि के बिना दिन का भी तो महत्त्व नहीं मालूम होता। विरोधी बातो से ही तो उनकी वास्तविकता ज्ञात होती है।"

"हाँ सृष्टि भी तो विरोधी तत्वों के समीकरणों से बनी है।" कह कर डाक्टर आनन्द ने उनके आलाप में योग दिया।

"कहिए डाक्टर विश्वनाथ, अपने-अपने अन्वेषणों में कहाँ तक प्रगति की।"

"अभी तो कुछ प्रगति नहीं हुई। परीक्षण चल रहे हैं। हाँ कुछ सूत्र अवश्य मिले हैं, और उन्हीं के आधार पर हमारा परीक्षण हो रहा है।"

"मोम्बा के दर्शन हुए ?"

"एक नहीं, हजारों मोम्बाओं को एक साथ क्रीड़ा करते देखा है। क्या ही अच्छा होता यदि आप भी उनकी देवी और उनकी पूजा को देखते ?"

"क्या मतलब ?"

विश्वनाथ ने सविस्तार टोमो की घटना का वर्णन किया, जिसे सुनकर सुरेशचन्द्र चकित रह गए, और उन्होंने कहा—"आप जैसे वैज्ञानिक से यदि इस घटना को न सुनता, तो विश्वास कभी न होता। मैं तो इसे कपोल कल्पना

न्ही जानता। बड़े आश्चर्य की बात है।"

डाक्टर आनन्द—"सभ्य संसार को आश्चर्य इसलिए होता है, क्योंकि उसका दृष्टिकोण इतना सीमित हो गया है, कि वह अपने अतिरिक्त किसी से न तो सम्बन्ध स्थापित करता है, और न दूसरों की बातों को समझने का प्रयत्न करता है। उसको अपनी सभ्यता का बड़ा अभिमान है। जंगलों में रहनेवालों को वह निपट मूर्ख, और असंस्कृत समझता है।"

"आपके कहने का तात्पर्य यह है कि सभ्य मनुष्य कूप-मंडूक है।"

"यदि कूप मंडूक नहीं, तो अभिमानी और हठी अवश्य है। उसे अपनी बुद्धि का इतना अभिमान है कि वह अपने ही को विश्व के ज्ञान का अधिकारी मानता है। वह समझता है कि सर्वत्र उसका एकाधिकार है। श्वेत जातियों के अहंकार का तो ओर-छोर नहीं मिलता। कालों के प्रति उनकी उपेक्षा ही भविष्य के विश्व व्यापी समर का कारण बनेगा?"

"हाँ, लक्षण तो ऐसे ही मालूम होते हैं। मैं अभी केपटाउन से आ रहा हूँ। वहाँ के श्वेतांग निवासियों ने, जो वस्तुतः वहाँ विदेशी हैं, अपनी सत्ता का एकाधिकार स्थापित कर रखा है। वे वहाँ के आदिम निवासियों को मनुष्य की भाँति सांस लेने का भी अधिकार नहीं देना चाहते। वे इस बीसवीं शताब्दि के उत्तरार्ध में भी दास-प्रथा पनपाना चाहते हैं!"

"अफ्रीका को तो वे 'काला देश' कह कर उसके सारे द्रव्य भंडार को दस्युवृत्ति से हड़प करना चाहते हैं। श्वेतांगों की यही वृत्ति संसार को पुनः युद्ध में प्रवृत्त करेगी।"

"निस्सन्देह इस बार का युद्ध गोरों और कालों के बीच होगा।"

विश्वनाथ—"किन्तु यदि युद्ध हुआ तो सृष्टि का विनाश निश्चय ही हो जायगा। अणु-शक्ति से इतने भयंकर अस्त्र-सस्त्रों का सृजन हुआ है, जो गोरों और कालों को समूल नष्ट कर देंगे।"

"यह मैं स्वीकार नहीं कर सकता कि आणविक युद्ध मनुष्य जाति को नष्ट कर देगा।"

"नहीं, पिता जी, आपकी आशा ठीक नहीं है। आप आशावादी हैं,

इसलिए ऐसा सोचते हैं, इसके अतिरिक्त कुछ थोड़े वैज्ञानिकों को ही उस आणुविक शस्त्रों की भयंकरता का ज्ञान है। यदि ऐसा न होता तो अब तक तीसरा महायुद्ध छिड़ गया होता।"

"युद्ध न कभी बन्द हुआ है, और न कभी बन्द होगा। मनुष्य स्वभाव से ही युद्ध प्रेमी है। जब तक मनुष्य की प्रकृति बदलती नहीं तब तक ऐसी आशा करना बालू से तेल निकालना है।"

"परिस्थितियाँ सब कुछ करा सकती हैं। अब संसार ऐसे मोड़ पर आ गया है, जहाँ उसको सहअस्तित्व के सिद्धान्त को मानना पड़ेगा, नहीं तो प्रलय अवश्यम्भावी है।"

"किन्तु गोरों की आँखों पर परदा पड़ा हुआ है। वे कहाँ अपनी कूटनीति, दस्युनीति से बाज आते हैं?"

"कुछ देश इस दिशा में प्रयत्न कर रहे हैं, और अब संसार का विश्वास औपनिवेशिक शासन से उठ गया है। श्वेतांगों के उपनिवेश अब नहीं रहेंगे।"

"मनुष्य की स्वार्थ प्रवृत्ति में यदि परिवर्तन हो सके तो अवश्य कुछ हो सकता है। अभी तक तो प्रकृति ने युद्ध, महामारी, प्लावन, भूकंप आदि से ही विनाश तथा पुरानी प्रथाओं का विध्वंस किया है।"

"किन्तु, पिता जी, अभी तक मनुष्य ने अपने मस्तिष्क तथा विचार से काम नहीं लिया था। वह अब तक केवल पशु बल पर ही विश्वास करता आया है। जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत का बोलबाला रहा है। जिन अस्त्र-शस्त्रों का आविष्कार पहले हुआ था, उनसे उसको ही शक्ति मिलती थी, जिसके पास वे होते थे, किन्तु आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों की मार दोतरफा है। जितना संहार वे शत्रु-पक्ष का करेंगे, उतना ही, वे अपने पक्ष का भी करेंगे। तात्पर्य यह कि विजय किसी की नहीं होगी। हाँ, विनाश तो दोनों का हो सकता है।"

"संसार में कुछ मनुष्यों की प्रकृति ओलों की भाँति होती है, जो स्वयं नष्ट होते हैं, और दूसरों को भी नष्ट कर देते हैं। इनका क्या उपाय सोचा है?"

"अब शायद दूसरों को नष्ट करने के पहले वे स्वयं नष्ट हो जायँगे। जनमत के सामने विनाशक व्यक्तियों को नीचा देखना पड़ेगा। युद्ध के विस्फोट अभी

इक्के दुक्के हो सकते, हैं किन्तु संसार व्यापी युद्ध नहीं छिड़ सकता।"

"हाँ, यदि भारत की आवाज सुनी गई, या उसने सबको प्रभावित कर दिया, तब तो अवश्य कुछ हो सकता है!" कप्तान सुरेशचन्द्र ने कहा।

"यह सभी स्वीकार करते हैं कि पूर्व और पश्चिम, अथवा श्वेत और कालों को जोड़ने वाली कड़ी भारत है। इतिहास साक्षी है, उसने केवल संसार का कल्याण ही किया है। किसी पर न कभी आक्रमण किया है, और न किसी की सम्पत्ति पर अपना अधिकार जमाने की चेष्टा की है।" सुहासिनी ने मुस्कराते हुए कहा।

"आपका कथन सही है। भारत के कभी उपनिवेश नहीं रहे, उस समय भी नहीं जब वह शक्ति के चरमोत्कर्ष पर था। यहाँ से केवल भातृ-भाव, प्रेम और सहिष्णुता के उपनिवेश स्थापित हुए हैं। अँग्रेजों के प्रति हमारे मन में विद्वेष होना स्वाभाविक था, किन्तु हम अपनी परम्परा, सभ्यता तथा संस्कृति के कारण ही उनको शत्रु दृष्टि से नहीं, प्रेम दृष्टि से देखते हैं।"

"भारत का नैतिक धरातल इसलिए ऊँचा रहा, क्योंकि उसने कभी स्थूल या भौतिक शक्ति पर विश्वास नहीं किया। उसका दृष्टिकोण सदैव सूक्ष्म तत्वों की ओर रहा, जो संघर्ष या वैमनस्य उत्पन्न नहीं करता, क्योंकि उसका भंडार अनन्त है, और शायद व्यक्तिगत भी है। भौतिक पदार्थ सीमित हैं, उनको प्राप्त करने के लिए युद्ध और संघर्ष हो सकते हैं, किन्तु सूक्ष्म-शक्ति का भंडार अक्षय है। उनको प्राप्त करने के लिए, संघर्ष अपने स्वयं से करना पड़ता है, इतर मनुष्यों से नहीं।" डाक्टर आनन्द ने सतेज कहा।

सुहासिनी को उनकी बातों से कोई रुचि नहीं थी। वह प्रायः तर्क-वितर्क से बहुत शीघ्र ऊब उठती थी। उसने उठते हुए कहा—"आइए, तब तक हम लोग घर हो आवें।"

सुरेशचन्द्र ने बैठने का संकेत करते हुए कहा—"घर जाकर अब क्या कीजिएगा। चाय पीकर जाइयेगा, यदि जाने की अत्यन्त आवश्यकता हो। बहुत दिनों में अपने देशवासियों से आलाप करने का अवसर मिला है। उसकी

खुशी में आप लोगों का सत्कार करना भी भूल गया। मैं हृदय से क्षमा प्रार्थी हूँ।"

डाक्टर आनन्द ने सुहासिनी की इच्छा जान कर उठते हुए कहा—"आज संध्या की गाड़ी से ही हम सब नैरोबी चलेंगे। दोपहर का भोजन हमारे यहाँ कीजिएगा। विश्वनाथ भैया आपको लेकर आ जायँगे। आने के पहले सब प्रबन्ध कर लीजिएगा। घर से हम लोग सीधे स्टेशन चलेंगे, लौट कर यहाँ नहीं आना होगा।"

"चाय तो पीलीजिए। मैं बिल्कुल तैयार होकर आऊँगा।"

"नहीं, अब समय नहीं है, चाय पीने से देर हो जायगी। तकल्लुफ की कोई जरूरत नहीं।"

सुहासिनी और डाक्टर आनन्द ने वहाँ ठहरना स्वीकार न किया, और वे चले गए। उनके जाने के पश्चात् सुरेश चन्द्र ने पूछा—"कहिए मिस कान्ति या मिसेज...के क्या हाल हैं।" कहते-कहते वे हँस पड़े।

विश्वनाथ ने हँसते हुए कहा—"अब आप हमारे साथ ही चल रहे हैं, सब देख-सुन लीजिएगा।"

"मेल मिलाप हुआ या उसी तरह ऐंठ-ऐंठी रहती हैं। आपको वहाँ देखकर बहुत चकराई होंगी?"

"हाँ, डाक्टर हाक से मैं बातें कर रहा था, अचानक वे आ गईं। उनको व्यस्त देखकर वे वापस जाने लगीं। डाक्टर हाक ने उन्हें बुलाया, और जब कमरे में आकर मुझको देखा, तो उनकी विस्फारित दृष्टि से मालूम हुआ कि मानो उन्होंने भोम्बा देखा हो। वे उलटे पैरों वहाँ से भागी, यद्यपि डाक्टर हाक उन्हें बुलाते ही रह गए। क्या आप अनुमान कर सकते हैं कि उनके इस प्रकार भागने से डाक्टर हाक के मन में क्या प्रतिक्रिया हुई थी?"

"उन्होंने अनुमान किया होगा कि दाल में कुछ काला है।"

"जी हाँ, मै तुरन्त ही मुजरिम करार दे दिया गया, और अपने बचाव में आपकी गलती का हवाला देना पड़ा।"

"तो कहिए श्रीमान की फाँसी मेरे नाम के स्मरण से कटी!" कहते-कहते वे फिर हँसने लगे।

"भाई, आपका नाम ही भव-भय भंजन है। अब आगे सुनिए, जब डाक्टर हाक को समझा-बुझाकर लौटा तो क्या देखता हूँ डाक्टर आनन्द के यहाँ, जहाँ मैं रहता था, सुश्री जी मौजूद हैं। इस बार मेरे अप्रतिभ होने की बारी थी। मैं भी उनको सहसा वहाँ देखकर भागा।"

"तुम्हारे भागने की क्या जरूरत थी।"

"आप को याद नहीं उनका आदेश था कि मैं उनके सामने कभी न पड़ूँ। उस हुक्म की अवहेलना करने का साहस मुझ में नहीं था।"

"किन्तु यह तो बताओ कि वे वहाँ कैसे पहुँची ?"

"यही सुहासिनी बहिन उन्हें भारतीय देख कर चाय के लिए निमंत्रित कर आई थी।"

"अच्छा, फिर क्या हुआ, जब आप उनको देखकर भागे ?"

"अब उनको सब हाल सुहासिनी से बताना पड़ा। फिर उसने हमारा मेल करा दिया, और हम लोगों ने एक साथ बैठ कर चाय पी।"

"तो अब आजकल मेल-जोल है। इसका अर्थ यह है कि मुझे आपको बधाई देना चाहिए ?"

"क्यों, यह बेवक्त की शहनाई कैसी ?"

"इसलिए कि कोर्टशिप का कार्यक्रम नियमानुसार चल रहा है।" कहते कहते वे पुनः हँस पड़े। विश्वनाथ का मुख लाल हो गया।

"सावन के अन्धे को सदा हरेरी ही सूझा करती है। न अपने राम विवाह के इच्छुक हैं, और न सुश्री जी ही। उनको तो पुरुषों से बड़ी घृणा है, इसी कारण स वे यहाँ किसी पुरुष से बोली तक नहीं।"

"सुश्री जी को पुरुषों से घृणा है, और श्रीमान जी को नारियों से। देखिए यह दोतरफा की घृणा कब अनुराग में परिवर्त्तित होती है। तूफान आने के के पहले प्रकृति बहुधा शान्त हो जाती है। डाक्टर आनन्द के यहाँ तो कभी सुहासिनी से मिलने आती ही होगी ?"

"हाँ, कभी-कभी आती हैं। अब जब वह आपको देखेंगी, तब तो शायद आसमान ही फाट पड़े।"

"मैं तो अपनी भूल के लिए पहले ही माफी माँग चुका हूँ, और वह भी लिखित। अब यदि आवश्यकता पड़ेगी, तो दुबारा माँफी की दरख्वास्त पेश कर दूँगा।"

"आप तो माँफी माँगने के अभ्यस्त हो गए हैं।"

"आपत्काले मर्यादा नास्ति, अपना तो यह सिद्धान्त है।"

इसी समय चाय आ गई। दोनों मुस्कराते हुए पीने लगे।

— ३ —

विश्वनाथ आदि के नैरोबी जाने के दो दिन पश्चात्, तीसरे दिन प्रातःकाल कान्ति का स्वागत करते हुए देवराज ने कहा—"आइए दीदी, आज मैं इस घर का स्वामी हूँ। आपका मैं स्वागत करता हूँ।"

"क्यों, क्या बात है ? सुहासिनी बहिन और पिता जी कहाँ गए ?"

"आपका प्रश्न अपूर्ण है, इसलिए उत्तर नहीं दूँगा।"

"अपूर्ण क्यों ?"

"आपने बड़े भैया के बारे में क्यों नहीं पूछा ? यदि वे होते तो मैं किस प्रकार घर का स्वामी बनता ?"

"अच्छा, तो वे भी नहीं हैं। सब लोग अकस्मात कहाँ चले गए ?"

"उनकी बात न पूछिए, मैं बताऊँगा भी नहीं, क्योंकि वे मुझको अपने साथ नहीं ले गए। मैं उन सबसे नाराज हूँ। अब उनको घर में घुसने नहीं दूँगा।"

"आप उनसे नाराज हो सकते हैं, और उसके लिए कारण भी है, किन्तु मुझसे क्यों नाराज हो।"

"आपका तो मैं स्वागत कर रहा हूँ, नाराज कहाँ हूँ ?"

"नाराजी इसी से मालूम होती है कि वे लोग कहाँ गए हैं, यह नहीं बताते।"

"मैं उन लोगों के बारे में कोई बात कहना-सुनना नहीं चाहता। विशेषकर सुहास-दीदी का बात ही नहीं करना चाहता। बड़े भैया, तो मुझे अपने साथ ले जाना चाहते थे, किन्तु सुहास-दीदी ने मुझे धोखा दिया। पहले तो कहा कि वे ले जायगी, बाद में न जाने क्यों उनका मत बदल गया।

"क्या तुम्हारे बड़े भैया, तुमको बहुत प्यार करते हैं?"

"हाँ, वे मुझको बहुत प्यार करते हैं। उतना पापा भी नहीं चाहते। सुहास दीदी बिल्कुल नहीं प्यार करती।"

"किन्तु जब तुम्हारे बड़े भैया के साथ तुम्हारी सुहास-दीदी का विवाह हो जायगा, तब तो वे भी तुम्हें प्यार करने लगेगी।"

"यह आप क्या कह रही हैं? कहीं भाई-बहिन में विवाह होता है?"

"क्या तुम्हारे पापा ने उनके विवाह की बातचीत घर में नहीं की।"

"हम लोग तो इस बारे में कुछ नहीं जानते। हाँ सुहास-दीदी को एक बार बड़े भैया से यह कहते अवश्य सुना था कि आपका विवाह बड़े भैया से होगा।"

"धत्, मनगढ़न्त बातें बनाने में तुम भी सुहासिनी-बहिन की भाँति चतुर हो।"

"मैं झूठ नहीं कहता। एक दिन सुहास दीदी, बड़े भैया से कह रही थी।"

"अच्छा, मान लिया, लेकिन तुम्हारे बड़े भैया ने क्या कहा?"

"भैया ने शायद यही कहा था कि आपको आदमियों से घृणा है।"

"नहीं, तुम झूठ कह रहे हो।"

"मैं कभी झूठ नहीं बोलता। तो क्या सचमुच आपको आदमियों से घृणा है? नहीं, सुहास-दीदी को चिढ़ाने के लिए बड़े भैया कह रहे होंगे। चिढ़ाने की उन्हें आदत है।"

"तुम्हारे बड़े भैया, तुम्हें भी चिढ़ाते होंगे।"

"बहुत ज्यादा। लेकिन अब मैं चिढ़ता नहीं।"

"क्या पहले चिढ़ते थे?

"हाँ, पहले तो चिढ़ता था, लेकिन जब पापा ने बता दिया कि मुझे गुस्सा करने के लिए चिढ़ाते हैं, तब से मैं नहीं चिढ़ता।"

"तुम्हारे बड़े भैया नटखट हैं!"

"बहुत ज्यादा। वे बड़े हँसोड़ भी हैं। सब को दिन भर हँसाया करते हैं।"

"मुझको तो नहीं हँसाते?"

"आप से तो वे डरते हैं।"

"डरते हैं! मैं कोई बाघ-चीता तो हूँ नहीं, जो मुझसे किसी को डर लगे। अच्छा, बताओ क्या मुझसे तुम डरते हो?"

"नहीं, मैं तो नहीं डरता। मेरे स्कूल में सिखाया गया है कि केवल बुरी बातों से डरना चाहिए। मैं उस दिन भी नहीं डरा था जब साँपों की पूजा देखने हम लोग टोमो गए थे।"

"तुम्हारे बड़े भैया को क्या उनसे डर लगा था?"

"नहीं, भैया भी नहीं डरे थे। हाँ, सुहास-दीदी डर से कांपी जाती थी।"

"तुम्हारे बड़े भैया से क्या सुहास-दीदी डरती हैं?"

"नहीं, बड़े भैया से किसी को डर नहीं लगता। वे तो बहुत अच्छे हैं।"

"बहुत अच्छे हैं? कैसे जाना?"

"किसी का स्वभाव क्या छिपा रहता है? जो हँसता-हँसाता है, उससे डर क्यों लगे? ऐसे तो वे—सबको प्यार करते है, किन्तु मुझ को सबसे ज्यादा।"

"लेकिन तुम्हारे बड़े भैया का मुँह बन्दर जैसा है।"

"ऐसा न कहिए, नहीं तो मै आपसे बोलूँगा नहीं। उनका जैसा सुन्दर मुख, घर में किसका है? सुहास-दीदी तो उनके पैर की धोवन भी नहीं है, बुरा न मानियगा, आप भी नहीं है।"

"अच्छा, तुम्हारे बड़े भैया इतने सुन्दर हैं!"

"और नहीं तो क्या बदसूरत हैं? चलो, मेरे साथ उनके कमरे में चल कर उनका फोटो देखो, और बताओ कि उनका कौन सा अंग बदसूरत है?" यह कह कर वह कान्ति का हाथ पकड़कर घसीटता हुआ विश्वनाथ के कमरे की ओर ले चला।

कान्ति अपना हाथ छुड़ाती हुई बोली—"किसी के सूने कमरे में जाना अनुचित है।"

"सूना क्यों ? मैं—घर का स्वामी—तो आपके साथ हूँ, फिर सूना कैसे ?"

"किन्तु तुम उस कमरे के मालिक तो नहीं हो। यदि तुम्हारे बड़े भैया ने मुझे चोरी लगाई तो फिर !"

"वे ऐसे नहीं हैं। झूठ-मूठ वे किसी को अपवाद नहीं लगाते।"

"नहीं, मैं तभी तुम्हारे साथ उनके कमरे में चलूँगी, जब तुम एक बात का वादा करो।"

"वह क्या ?"

"यही कि तुम किसी से नहीं कहोगे कि मैं तुम्हारे साथ तुम्हारे बड़े भैया के कमरे में गई थी।"

"बस इतनी बात ! अच्छा मैं नहीं कहूँगा, किसी से भी नहीं कहूँगा ! अब तो चलकर बताइए कि मेरे बड़े भैया में कौन सी बदसूरती है ?"

"अच्छा, मैं माने लेती हूँ कि तुम्हारे बड़े भैया बड़े खूबसूरत हैं।"

"नहीं, इस प्रकार मैं आपको छोड़ नहीं सकता। आपको चलना ही होगा ?" वह पुनः कान्ति को घसीटता हुआ ले चला।

विश्वनाथ के कमरे में कान्ति के आने का यह प्रथम अवसर था। वह चकित दृष्टि से चारो ओर देखने लगी। कमरा बहुत ही सादे ढग से सजा हुआ था, उल्लेखनीय कोई बात नहीं थी, तथापि वह मुग्ध होकर एक-एक वस्तु को देख रही थी।

एक तैल-चित्र के सामने देवराज ने कान्ति को ले जाकर खड़ा कर दिया, और पूछा—"आप जानती हैं, यह किसका चित्र है ?"

कान्ति ने सिर हिलाकर उत्तर दिया—"नहीं। यह भारत के किसी गाँव के निवासी का मालूम होता है।"

"यही मेरे बड़े भैया के पिताजी का चित्र है। यह पहले पापा के कमरे में था, अब भैया ने अपने कमरे में लगा लिया है।"

"तुम्हारे पापा के कमरे में तो कभी नहीं देखा।"

"अरे, यहाँ नहीं ! मोम्बासा वाले घर में यह पापा के कमरे में था। बात यह है कि पापा और बड़े भैया के पिता में बड़ी मित्रता थी। दोनों कुली होकर केनिया में आए थे। बाद में पापा तो यहीं रह गए और बड़े भैया के पिता स्वदेश लौट गए।"

"अच्छा ! तुम्हारे बड़े भैया के पिता पहले यहाँ केनिया में कुली थे !"

हाँ, इसमें आश्चर्य की क्या बात है !"

"नहीं, कुछ नहीं। यह बात आज मुझे पहले-पहल मालूम हुई। मैं तो उन्हें किसी धनी व्यक्ति का पुत्र समझती थी !"

"आपकी कोई बात उनसे इस सम्बन्ध में न हुई होगी, नहीं तो वे अवश्य बता देते। वे कभी कोई बात छिपाते नहीं।"

"नहीं, मेरी कोई बात नहीं हुई।"

"लेकिन, अब जब वे आवेंगे तब आपसे बात करवा दूँगा।"

"अगर तुम इसी भाँति अपना वादा पूरा करोगे तो······।"

"क्यों, मैंने क्या किया !"

"किया नहीं, करोगे ! मेरे इस कमरे में आने की बात तुम किसी से नहीं कहोगे, इस बात का समझौता हमारे बीच में हुआ था या नहीं।"

"अब भी कहता हूँ कि मैं किसी से इसकी चर्चा नहीं करूँगा।"

"लेकिन जब तुम अपने बड़े भैया के पिता के चित्र के बारे में बात करोगे, तब तो भेद प्रकट हो जायगा।"

"हाँ ठीक है। अच्छा, सुहास दीदी से पुछवा दूँगा !"

"नहीं, उनसे भी न कहना। मेरे यहाँ आने की बात किसी से न कहना।"

"अच्छा, उनसे भी न कहूँगा। फिर आपको बड़े भैया के पिता के सम्बन्ध में कैसे मालूम होगा ?"

"जो कुछ तुम जानते हो वही बता दो।"

"इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानता कि उनके देश में अभी उनकी माता और एक बहिन हैं। उनके पिता ने यहाँ से जाकर पापा की तरह बहुत रुपया पैदा किया था।"

"तुम्हारे बड़े भैया, भारत के किस नगर में रहते हैं?"

"शायद, लखनऊ में रहते हैं।"

"लखनऊ में रहते हैं?"

"जी हाँ, लखनऊ से ही उनकी चिट्ठियाँ आया करती हैं, और पापा से उनके सम्बन्ध में बातें होती हैं। शायद हम लोग भी लखनऊ जाय!"

"कब जाओगे?"

"यह नहीं मालूम। सुहास-दीदी भारत जाने की कभी-कभी बात करती हैं, और पापा भी कहा करते हैं। आप भारत में कहाँ रहती हैं?"

"तुम जान कर क्या करोगे?"

"जब हम भारत जायेंगे, तब आपके घर भी जायँगे।"

"जब जाओगे तब बता दूँगी।"

"नहीं, अभी बताइए। अभी बताने में क्या हर्ज है?"

"हर्ज तो कुछ नहीं, लेकिन फायदा क्या है?"

"बता दीजिए। जब आप अपने घर को पत्र लिखेंगी, तब मैं भी उसमें अपना पत्र रख दूँगा।"

"पत्र लिख कर मुझे दे देना, मैं भेज दूँगी।"

"जरूर लिखूँगा। पहले यह तो बताइए कि आप रहती कहाँ हैं? ठहरिए, भारत का नकशा लिए आता हूँ, उसमें बताइए। लखनऊ और कानपुर तो मैं जानता हूँ लखनऊ, बड़े भैया का घर है, और कानपुर हमारा।"

"क्या तुम लोग कानपुर के रहने वाले हो?"

"हाँ, पापा तो यही कहते हैं।"

"तो बस, मैं भी कानपुर के पास लखनऊ में रहती हूँ।

"सच?"

"बिल्कुल सच!"

"तब तो यह बड़ी खुशी की बात है। जैसे हम लोग यहाँ रहते हैं, वैसे ही वहाँ रहेंगे।" इसी समय कोमियाटा ने उसका नाम लेकर पुकारा। उसको सुन-

कर उसने कहा—"आप जरा ठहरिए मैं अभी आता हूँ। कोमियाटा न-मालूम मुझे क्यों बुला रहा है ?"

"आजकल, तुम गृह-स्वामी हो न, इसलिए कुछ पूछने के लिए बुलाता होगा।"

"आप ठीक कहती हैं, मुझसे पूछे बिना वह कोई काम नहीं करता।"

"कैसे कर सकता है। जाओ, देखो क्या पूछता है ?"

"देखिए आपकी बातों में मैं इतना उलझ गया कि आपके सत्कार का ध्यान ही नहीं आया। मेरी भूल को क्षमा कीजिएगा। अभी आपके लिए चाय बनवाता हूँ।"

"नहीं, चाय मैं पीकर घर से आई थी ! अब उसकी कोई जरूरत नहीं है।"

"यह कैसे हो सकता है। हम और आप आज चाय अवश्य पिएंगे। अभी दो मिनट में वापस आता हूँ, और पाँच मिनट में चाय तैयार हो जायगी। गोपाल कोमियाटा बहुत अच्छी चाय बनाता है।"

यह कहकर देवराज दौड़ता हुआ कमरे के बाहर हो गया। कान्ति आकर विश्वनाथ की मेज के पास खड़ी हो गई। अनजाने ही उसका हाथ मेज की दराज के मुट्ठे पर चला गया, और उसने उसे घसीट लिया। वह खुल गया। उसके भीतर कागज तहाए हुए रखे थे। उनके ऊपर एक छोटी सी पुस्तिका थी, जो स्पष्ट डायरी विदित होती थी। उत्सुकता वश उसने उसे उठा लिया, और उसके पन्ने उलटने लगी।

डायरी के पृष्ट उलटते-पलटते, एक स्थान पर उसकी दृष्टि अटक गई। वहां उसका नाम लिखा हुआ था। उत्सुकता वश वह उसे पढ़ने लगी—"आज कान्ति जी से पुनः भेट डाक्टर हाक के सामने हुई। उसके अचानक भाग जाने से मुझ पर उनको सन्देह हुआ। वह बड़ी कठिन परिस्थित थी, मैंने सारी बातें बताईं, तब उन्हें सन्तोष हुआ। उसी दिन फिर सहसा उनसे भेट घर में हुई, जिस पर सुहासिनी ने सन्देह किया। शायद कान्ति ने भी सारी बातें

स्पष्ट कर दीं, इसका परिणाम अच्छा निकला। अब कान्ति जी की झिझक दूर हुई। इससे मुझे सन्तोष अवश्य हुआ है।"

कान्ति ने उत्सुकता वश आगे का पृष्ठ उलटा और पढ़ने लगी—"आज कान्ति जी से भेट डाक्टर हाक के सामने हुई। इसमें पहली जैसी प्रतिक्रिया नहीं हुई। हम लोगों ने अनुसन्धानीय विषय पर कुछ देर बातचीत की, किन्तु आँखों की झिझक अभी तक दूर नहीं हुई है।"

इसके बाद डायरी के कई पृष्ठों में अन्य चर्चाएँ थीं, उससे सम्बन्धित कुछ नहीं था। कई पृष्ठों के उलटने के पश्चात् फिर उसे लिखा मिला—"आज पिताजी की बातों से यह परिणाम निकलता है कि वे सुहासिनी का विवाह मेरे साथ करना चाहते हैं। मै उसको अपनी छोटी बहिन के तुल्य मानता हूँ। यह कैसे संभव है ? इसके अतिरिक्त मै कुछ और अनुभव करता हूँ। आज कैप्टन सुरेशचन्द्र का एक पत्र मिला। कान्ति जी के सम्बन्ध में पूछा है। मैं अभी तक उसके मन के भावों को कुछ नहीं समझ सका। इतना तो स्पष्ट है कि वह पुरुषों से घृणा करती है। पुरुष होने के नाते मुझे भी घृणा की दृष्टि से देखना स्वाभाविक है।"

आगे के पृष्टों में फिर उसके सम्बन्ध में कोई बात नहीं लिखी थी। चार-पाँच पन्ने उलटने के पश्चात् पुनः लिखा हुआ था।—"आज सुहासिनी ने पुनः कान्ति के साथ विवाह करने की बात चलाई। मैं इसको प्रश्रय कैसे दूँ ? किस आधार पर दूँ ? अपने मन में उसके प्रति एक अद्भुत आकर्षण आरम्भ से ही अनुभव करता हूँ, जब तूफान की रात्रि में उससे अनायास भेंट हुई थी। किन्तु कान्ति जी मेरे लिए आकाश कुसुम हैं। उसे पुरुषों से घृणा है।"

इसी समय घर में कुछ हलचल मालूम हुई। कान्ति पढ़ने में इतनी तल्लीन थी कि उसका ध्यान उसकी ओर नहीं गया। जब गलियारे में उसे कई मनुष्यों की पग-ध्वनि सुनाई पड़ी तो वह सशंकित द्वार की ओर देखने लगी। डायरी जो अभी तक उसके हाथ में थी, द्वार पर विश्वनाथ, सुहासिनी और कप्तान सुरेशचन्द्र को देखते ही, उसके हाथ से छूट कर खुली हुई दराज में

गिर पड़ी। उसका मुख श्वेत हो गया। भय विस्फारित दृष्टि से वह उनकी ओर देखने लगी।

उसको देखते ही सुहासिनी बड़ी जोर से हँस पड़ी, और दौड़ कर उससे चिपटती हुई बोली—"वाह, आप यहाँ मौजूद हैं। मैं बड़ी भाग्यशालिनी हूँ। देखिये, आपसे मिलने के लिए आपके जहाज के कप्तान भी हमारे साथ मोम्बासा से आए हैं।"

मेज की खुली दराज देखकर कप्तान सुरेशचन्द्र और विश्वनाथ में दृष्टि विनिमय हुआ, और दोनों मुस्कराए। देवराज ने उसी समय आकर कहा—"मैं आप लोगों से नहीं बोलूँगा। आप मोम्बासा जाइए। इस घर का स्वामी मैं हूँ। मैं अपने अतिथि कान्ति-दीदी के लिए चाय बना कर लाया हूँ। आओ, दीदी, हम लोग चलें। अब अपने कमरे में चाय पियेंगे।"

यह कहते हुए वह कान्ति को घसीट कर कमरे के बाहर ले जाने लगा। कान्ति स्वयं वहां से भाग कर जान बचाना चाहती थी। उनके पीछे सुहासिनी भी चली गई।

उनके जाने के पश्चात् सुरेशचन्द्र ने हँसकर कहा—"चोर, रंगे हाथों पकड़ा गया। वे यहाँ क्या कर रही थी?"

विश्वनाथ स्वयं अपनी डायरी का भेद छिपाने के लिए उत्सुक थे। उन्होंने दराज बन्द करते हुए कहा—"इसमें मेरे अनुसन्धान विषयक कागज बन्द हैं। उन्हीं को पढ़ती होगी।"

"अच्छा, अब आप भी भेदनीति का उपयोग करने लगे हैं? प्रेम का प्रथम रूप भेद उत्पन्न करता है।" कहते हुए वे बड़े जोर से हँस पड़े। विश्वनाथ ने भी उसमें योग दिया। दोनों के हास्य शब्दों की ध्वनि दूर देवराज के कमरे में कान्ति का विद्रूप करने लगी।

— ४ —

विश्वनाथ की डायरी पढ़ने के पश्चात् कान्ति के मन में जो परिवर्तन घटित होने लगा था वह कप्तान सुरेशचन्द्र के आगमन से कुछ-कुछ मुरझाने लगा। अपनी सभी चेष्टाओं को वह संयमित तथा नियंत्रित करने लगी। सुहासिनी के साथ अकेले जब वह होती तब उसकी चेष्टाओं तथा बातों में जो आजादी व बेतकुल्लुफी होती, वह कप्तान सुरेशचन्द्र तथा विश्वनाथ के सामने तिरोहित हो जाती थी। उनके स्थान पर गांभीर्य तथा तटस्थता स्पष्टतः झलकती थी। एक दिन सुहासिनी उससे पूछ बैठी—"कान्ति बहिन, एक बात पूछूँ।"

"हाँ, क्यों न पूछिए?"

"तुम आजकल इतनी गम्भीर क्यों रहने लगी हो?"

"गम्भीर तो नहीं रहती, हाँ, मुझे अधिक बोलना पसन्द नहीं।"

"किन्तु जब तुम मेरे साथ होती हो, तब तो इतनी गम्भीर नहीं रहती।"

"हाँ, यह हो सकता है, क्योंकि मैं, तब अपने जैसों के बीच में होती हूँ।"

"तो क्या कप्तान सुरेशचन्द्र और भैया के साथ तुम्हारा कोई बैर है।"

"बैर तो नहीं है, किन्तु मैं पुरुषों से दूर भागती हूँ। उनके मध्य अपने को बेगाना पाती हूँ।"

"किन्तु यह तो उचित नहीं। इसके अतिरिक्त मैंने भैया के लिए तुम्हें मनोनीत किया है।"

"क्या खूब? जबरदस्ती का पंच आपको किसने बनाया?"

"तुम्हारी दृष्टि और तुम्हारे मनोगत भावों ने।"

"तब तो आपका निष्कर्ष बिल्कुल गलत है।"

"गलत है?"

"हाँ, बिल्कुल गलत! मैं विवाह के बन्धन में अपनी स्वतन्त्रता नहीं बाँधना चाहती, यह तो आपको मालूम है, और मैं स्पष्ट रूप से बता चुकी हूँ!"

"किन्तु मेल-मिलाप, हँसने-बोलने से आपका व्रत तो खंडित नहीं होता!"

"मैं तो सबसे मिलाप-आलाप करती हूँ।"

"किन्तु उसमें जान नहीं होती।"

"जान नहीं होती?" कहती हुई परम सन्तोष के साथ हँसने लगी।

"हाँ, मैं फिर कहती हूँ; उसमें उपेक्षा विद्रूप, विराग, तुच्छता और कटुता अधिक होती है।"

"इस समय तो आप एक शब्दकोष हो रही हैं।" उसका हास्य व्यंगमय होने लगा।

"आप मेरी बात स्वीकार करती हैं?"

"आपकी कोई बात अस्वीकार करना मेरे लिए असंभव है।"

"तब मेरी एक बात मानोगी?"

"क्यों नहीं मानूँगी। आप कहिए।"

"बात यह है कि हम सब लोग सैर-सपाटे के लिए विक्टोरिया-झील की ओर जाने वाले हैं। क्रिसमस की छुट्टियाँ भी हैं, आपको मेरे साथ चलना होगा।"

"यह तो कठिन समस्या है। मैं शायद नहीं चल सकूँगी।"

"क्यों?"

"इधर मैं भी कई परीक्षणों में लगी हुई हूँ, उनको अधूरा छोड़ कर नहीं जा सकती।"

भैया भी तो ऐसे कई परीक्षणों में फँसे हुए हैं, वे तो चलेंगे।"

"उनकी बात मैं क्या जानूँ? वे मेधावी हैं, वे सब कुछ कर सकते हैं।"

"तब तुम उनकी मेधा-शक्ति का लोहा मानती हो।"

"सत्य को स्वीकार करने में कोई लाज नहीं है।"

"अन्वेषण और परीक्षण सब आपके बहाने हैं। आप केवल इसलिए जाना नहीं चाहती क्योंकि भैया और कप्तान साथ में चल रहे हैं।"

"जब मैं यह जानती नहीं कि आपकी पार्टी में कौन-कौन व्यक्ति हैं, तब आपका यह आरोप कितना गलत है। न-मालूम यह कैसे आप मान बैठी हैं कि मैं जान-बूझ कर उनसे बचने के लिए नहीं चलना चाहती।"

"मेरी धारणा में सत्यता अवश्य है, आप स्वीकार करें या न करें।"

"इस भाव को दूर करना मेरी शक्ति से बाहर है।"

"हम लोगों के साथ चल कर सहज ही इस भाव को दूर कर सकती हो।"

"यही तो मुश्किल है। मैं चलूँगी नहीं, और आपकी धारणा दूर नहीं होगी।"

"आपको चलना होगा। अफ्रीका की सभी वस्तुएँ अद्भुत हैं। शायद कोई नई बात वहाँ मालूम हो, जैसे हमको उस लता का भेद मालूम हुआ जिसका रस पी लेने से मोम्बा के विष का असर नहीं होता।"

"उस सर्प के नाम से ही मुझे बहुत भय उत्पन्न होता है। मुझे कभी-कभी ऐसा मालूम होता है कि मेरी मृत्यु मोम्बा-दंशन से होगी।"

"ऐसा मत कहो। इस भय को दूर करने के लिए तुम नित्य उस लता का रस पिया करो, फिर स्वतः वह भय दूर हो जायगा।"

"किन्तु यह एक कठिन बात है। कौन उसका रस नित्य पी सकता है?"

"मैं प्रबन्ध कर दूँगी। गोपाल कोमियाटा उस लता को पहचान गया है। इधर के जङ्गलों मे वह बहुत पैदा होती है। वह रोज लाकर एक कटोरी रस निकाल तुम्हें पीने को दे आया करेगा।"

"धन्यवाद, अभी तो कोई आवश्यकता नहीं अनुभव करती।"

"तो फिर आपको हमारे साथ चलना ही होगा। अच्छा, हम तुम, पापा और देवराज एक साथ रहेंगे और भैया तथा सुरेश बाबू हमारे साथ न रह कर हमसे दूर रहेंगे। अब तो कोई आपत्ति नहीं है?"

'क्यों, साथ रहने में कोई बुराई नहीं है, और न मैं उन लोगों को मना ही कर सकती हूँ। हाँ, यदि आपको कोई आपत्ति हो तो दूसरी बात है।"

इसी समय डाक्टर आनन्द ने आकर कहा—"सुहास, सुरेश और विश्वनाथ कहाँ गए हैं?"

"मालूम नहीं पापा! शायद डाक्टर गोमाक्रो से मिलने गए हों, उन्हें भी भैया हम लोगों के साथ ले जाना चाहते हैं।"

"तब तो हमारी पार्टी में बहुत आनन्द रहेगा। कान्ति के साथ रहने से तुम भी सूनापन अनुभव नहीं करोगी।"

"किन्तु पिताजी, मैं नहीं चल सकूँगी।" कान्ति ने कहा।

"क्यों? तुम्हारे बिना हमारी पार्टी अधूरी रहेगी। यहाँ क्या करोगी?"

"मुझे बहुत पढ़ना है, और कई एक परीक्षण भी करने हैं

"वे सब पीछे होते रहेंगे। तुमको हमारे साथ चल

"पिता जी, मैं......।"

डाक्टर आनन्द ने उसे बोलने

सकता है! मैं डाक्टर हाक से कह

"पापा, कान्ति बहिन हम लोग

करते हैं।" यह कह कर साभिमा

कान्ति ने उसे बैठाते हुए क

का प्रयत्न करूँगी।"

डाक्टर आनन्द ने प्रसन्न होकर , घूमने-फिरने से स्वास्थ्य ठीक करता है। हमारा ज्ञान भी बढ़ता है। टोमो हम लोग गए थे, तब तुम्हारा न जाना मुझे बहुत अखरा था। किन्तु साँपों से तुम्हें बहुत डर लगता था, इसलिए ज्यादा दबाव नहीं डाला। अब तो किसी खतरनाक काम के लिए नहीं जाते। विक्टोरिया-झील और झरने का दृश्य संसार के एक अनुपम दृश्यों में है।"

"हाँ, उसकी तारीफ तो बहुत सुनी है।"

"प्राकृतिक छटा का वह एक अद्भुत दृश्य है। केनिया आकर उसे न देखना, बड़ी भूल होगी। इसके अतिरिक्त हम सब लोग साथ-साथ रहेंगे, इससे भय की कोई आशंका नहीं है। चाँदनी रात में झील का दृश्य बड़ा मनोरम लगता है।"

"विक्टोरिया-झील तो मैं भी देखना चाहती थी, किन्तु...।"

"किन्तु-विन्तु छोड़ो। एक सप्ताह तक हम वहाँ रहेंगे। डाक्टर हाक ने मोटर वोट का प्रबन्ध कर देने का आश्वासन दिया है।"

डाक्टर हाक भी चलेंगे ?"

तो न चल सकेंगे, क्योंकि उन्हें किसी सरकारी कार्य से मोम्बासा

से सभी सुविधाओं का प्रबन्ध कर देंगे। चलो, ऐसा अवसर

आपकी बात कैसे टाल सकती हूँ, चलूँगी।"

ति सुनकर बड़े प्रसन्न हुए, और जाते हुए

सुहास को तो चिढ़ाने की आदत है।"

बाद सुहासिनी ने प्रसन्न कंठ से

इतनी खुशामद-मिन्नत कराने की

रें भैया।"

रही है। चलिए विक्टोरिया झील

के किनारे आपका विवाह . बाबू के साथ करवा दूँगी। पिता जी की इच्छा है ही, और विश्वनाथ बाबू की भी।"

"क्या व्यर्थ की बकवास करती हो ?"

"विवाह की बात व्यर्थ की बकवास है?"

सुहासिनी उत्तर देने जा रही थी कि सामने लान पर सुरेशचन्द्र और विश्वनाथ आते हुए दिखाई पड़े। उनको देख कर कान्ति ने कहा—"अच्छा, अब जाऊँगी।"

"क्यों ? भोजन करके जाना।" फिर सुरेशचन्द्र और विश्वनाथ को देखकर कहा—"अच्छा, अब आपके जाने का कारण मालूम हुआ। वे लोग जो आ रहे हैं।"

"उनके आने से क्या होता है ? अब समय हो गया।"

"आज बिना हम लोगों के साथ भोजन किए, किसी प्रकार नहीं जाने पाओगी। सुरेश बाबू हम लोगों के बहुत समीप के व्यक्ति निकले। ये हमारे पिता की जन्म-भूमि के पास ही गाँव के रहने वाले हैं। उनके पिता को पापा अच्छी तरह जानते थे। जब से यह सम्बन्ध खुला, तब से पापा के हर्ष का ओर-छोर नहीं मिलता।"

"यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई।"

इतने में दोनों मित्रों ने घर में प्रवेश किया, और सुरेशचन्द्र ने देवराज को पुकारा। डाक्टर आनन्द्र के साथ देवराज ने आकर कहा—"भैया एक बड़ी खुशखबरी है!"

विश्वनाथ ने पूछा—"वह क्या?"

अभी पापा कह रहे थे कि कान्ति दीदी भी हम लोगों के साथ वि‹ झील देखने चलेगी।"

कप्तान सुरेशचन्द्र ने लक्ष्य किया कि विश्वनाथ के मुख पर प्रसन्नता की हल्की लालिमा दौड़ गई। देवराज कहता ही रहा—उस दिन जब कान्ति दीदी को अपने कमरे में बड़े बाबू (विश्वनाथ के पिता) का चित्र दिखाया था तो नते हैं आप उन्होंने उसको देखकर क्या कहा था?"

"नहीं, मुझे क्या मालूम?"

"वे कह रही थीं कि यह तो किसी देहाती का चित्र मालूम होता है।"

डाक्टर आनन्द ने डाँटा, किन्तु सुरेशचन्द्र ने कहा—"तुम्हारे बड़े भैया भी तो बज्र देहाती मालूम पड़ते हैं!"

सुरेशचन्द्र के अट्टहास में विश्वनाथ का हास्य छिप गया। देवराज और डाक्टर आनन्द भी हँसने लगे।

— ५ —

विक्टोरिया झील का मनोरम दृश्य देखकर पार्टी के सभी व्यक्तियों का मन हर्षोन्मत्त हो गया। हरी-भरी छोटी-बड़ी पहाड़ियों की गोद में मीठे जल की राशि एक बालक की भाँति लेटी हुई नदियों के स्तनों से पयपान करने में संलग्न थी, और विश्व-विख्यात प्रपात अपनी सहस्त्र धाराओं से उसमें निरंतर नवजीवन भर रहा था। डाक्टर हाक के सौजन्य से उन्हें डाक बँगले में रहने की अनुमति मिल गई थी, और वहाँ सभी सुविधाओं का प्रबन्ध भी हो गया था।

डाक बँगला एक छोटी पहाड़ी के ऊपर बना हुआ था, उसमें बड़े-बड़े सात कमरे थे, जो पार्टी के सभी व्यक्तियों के रहने के लिए पर्याप्त थे। डाक्टर आनन्द तथा विश्वनाथ के अनुरोध से डाक्टर ऐडम गोमाको भी उनके साथ आए थे। मोटर-नाव का प्रबन्ध था ही, इसलिए उनका बहुत समय विक्टोरिया झील के वक्ष पर संतरण करते बीतता था। प्रातःकाल वनभोज प्राय: नित्य ही पहाड़ की हरी घाटियों में अथवा झील के वक्ष पर हुआ करते थे, तथा सांध्य भोजन डाक बँगले में। सुहासिनी और कान्ति का एक गुट्ट था, और विश्वनाथ तथा सुरेशचन्द्र का एक, एवं तीसरे गुट्ट में डाक्टर आनन्द, डाक्टर गोमा को, और देवराज थे। देवराज की दशा दयनीय थी, क्योंकि सुहासिनी और विश्वनाथ के गुट्टों में से कोई अपने साथ लेने को तैयार नहीं था। एक ही दिन जब वह डाक्टर आनन्द के साथ रहा तो उसने अनुभव किया कि वह पार्टी के अन्य व्यक्तियों की भाँति स्वच्छन्दता से घूम फिर अथवा वार्त्तालाप नहीं कर सकता। अतएव उसने गोपाल कोमियाटा को अपना साथी बनाना निश्चय किया, और दूसरे दिन से वह उसे अपने साथ ले जाने लगा। गोपाल कोमियाटा की घनिष्ठता इस परिवार के साथ इतनी बढ़ गई थी कि वह एक प्रकार से उसका सदस्य हो गया था। डाक्टर आनन्द के सहज स्नेह से कोई भी व्यक्ति उनका अपना हो जाता था।

प्रपात से दूर, जहाँ से उसका दृश्य तो दिखाई पड़ता था, किन्तु कलरव इतना नहीं था कि एक दूसरे का शब्द सुनने में कठिनता हो, एक शिला खंड पर बैठे हुए विश्वनाथ से सुरेश चन्द्र ने कहा—"अब तो कान्ति की वह पुरानी झिझक दूर हो गई !"

"कुछ मालूम तो ऐसा ही होता है !"

"सच कहना, तुम्हारे मन में उसके प्रति कुछ कोमल विचार हैं ?"

"तुम्हें हमेशा ऐसी ही निरर्थक बातें सूझा करती हैं। क्या इसके अतिरिक्त और कोई विषय बातचीत के लिए नहीं है। लोगों के विवाह कराने का यदि शौक है तो विवाह कराने की एजेन्सी क्यों नहीं खोल देते ?"

"स्वीकार है, सबसे प्रथम तुम्हारा और कान्ति जी के विवाह से उसका श्रीगणेश होगा।"

"अभी तुम कान्ति जी को जानते नहीं, जो ऐसा कहते हो। विवाह करके वह अपनी स्वतन्त्रता बेचना नहीं चाहती। उसे पुरुषों के नाम से चिढ़ है। वह उन्हें आततायी, अत्याचारी, लोभी और घोर स्वार्थी समझती है। उनमें मनुष्यता की गंध तक नहीं पाती, वह उनकी से छाया दूर रहना चाहती है।"

"स्त्री तो प्रकृति का रूप है—इस धरातल पर उसकी प्रतिनिधि है। उसकी शक्ति का चरम विकास उसके मातृत्व में होता है। प्रत्येक स्त्री को इसी लिए माता बनने की इच्छा होती है। क्या वह प्रकृति के इस तकाजे की अवहेलना कर सकती है ?"

"जब पुरुष ब्रह्मचर्य व्रत का साधन कर सकता है, तब स्त्रियाँ क्यों नहीं उसकी साधना कर सकती ? मनुष्य होने के नाते वे बराबर हैं।"

"हाँ, अन्य अर्थों में वे अवश्य पुरुषों के समान हैं, किन्तु प्रकृति के गुण उपजाने और पोषण करने में वे प्रकृति के अधिक समीप हैं, और उससे प्रभावित होती हैं।"

"उसी प्रकार पुरुष भी तो सन्तान प्राप्त करने के लिए आतुर देखा जाता है।"

"हाँ, किन्तु, वह अपनी इस कामना को दमन कर सकता है।"

"उसी प्रकार स्त्रियाँ भी उसे दमन कर सकती हैं। दमन और निग्रह दोनों प्रकार के मानवों द्वारा श्रम साध्य हैं। दोनों एक ही जैसे प्राकृतिक नियमों में बँधे हुए हैं।"

"हो सकता है, किन्तु मैंने स्त्रियों को सन्तान प्राप्त करने के लिए अधिक आतुर देखा है?" किन्तु यह तो बताओ, जब हम लोग मोम्बासा से आए थे, तब कान्ति जी को तुम्हारे कमरे की तलाशी लेते पाया था। मालूम हुआ वे क्या खोज रही थीं?"

"मैंने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया था।"

"वे तुम्हारे मेज की दराज को खोले हुए कुछ पढ़ रही थीं। मैंने उनके हाथों से एक छोटी पुस्तक गिरते देखा था। वह कौन सी पुस्तक थी।"

"पुस्तक नहीं, नोट-बुक थी, जिसमें हमारे परीक्षणों के निष्कर्ष लिखे हुए थे।"

"क्या वह नोट-बुक मुझे दिखा सकते हो उस पर मोरक्को चमड़े की जिल्द बँधी है?"

"यहाँ तो नहीं है, नैरोबी चलकर देख लेना।"

मैं शर्त लगा सकता हूँ कि वह परिक्षणों के निष्कर्ष लिखने की नोट-बुक नहीं थी। वह कोई दूसरी चीज थी।"

"वह क्या?"

"भैया वह तुम्हारी डायरी थी। मैं भी उसे पढ़ चुका हूँ। उन सारे स्थलों से अवगत हूँ जहाँ तुमने अपने मनोभावों को, जिसको तुम कान्तिजी के प्रति पोषण कर रहे हो, व्यक्त किया है।" कहते-कहते वे हँसने लगे।

"तुम बड़े नटखट हो। यह मुझे नहीं मालूम था कि तुममें चौरवृत्ति भी है।" कहते हुए विश्वनाथ के कपोल लाल हो गए।

"उस अपराध के लिए क्षमा माँगता हूँ। जब तुम मुझसे भेद-भाव रखने लगे, तब निरुपाय होकर इस अधम वृत्ति का सहारा लेना पड़ा। यदि मैं स्वयं जान लेने की चेष्टा नहीं करता तो तुम यह अपना भेद कभी न खोलते। भाई, तुम प्रकृति के गुप्त रहस्यों की खोज करते हो, और मैं तुम्हारी गुप्त बातों

की खोज करता हूँ। तुम अन्वेषक हो, और मैं शोधक। हालाँकि हमारे कार्य प्रथक-प्रथक हैं।"

"तुम्हारे इस अन्वेषण वृत्ति से तो यही प्रकट होता है कि तुम भी कान्तिजी पर आसक्त हो। मैं तुम्हारे मार्ग का कंटक नहीं बनूँगा।"

"हो सकता है, क्योंकि तुम्हारे सामने सुहासिनी के लिए उसके पिता का भी प्रस्ताव है।"

"उसके सम्बन्ध में कोई बात न करो। मैं उसे अपने छोटी बहिन के तुल्य मानता हूँ। जानते हो सुरेश बाबू, भगिनी के स्नेह में जो माधुर्य है उसकी छाया भी पत्नी के प्रेम में नहीं मिलती। भाई-बहिन का स्नेह निस्वार्थ, और निर्मल भावनाओं से ओत-प्रोत होता है। उनमें दो प्राणियों के नैसर्गिक स्नेह का विकास होता है। दोनों स्वच्छन्दता से विचरण करते हुए भी एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। दोनों एक दूसरे के लिए विनिमय की प्रत्याशा किए बिना ही बड़ा से बड़ा त्याग करने के लिए उत्सुक और कटिबद्ध रहते हैं।"

"अब तो तुम भावुक हो रहे हो।"

"यह भावुकता नहीं, सत्य है। इससे अधिक पवित्र बन्धन की तुम क्या कल्पना कर सकते हो?"

"क्यों माता और पुत्र के प्रेम की महिमा क्या कुछ कम है।"

"अवश्य कम है, वह इस अर्थ में कि माता के गर्भ से पुत्र का उद्भव होता है, और इस कारण वह उससे सम्बद्ध रहती है। इसके विपरीत भाई-बहिन का मार्ग प्रथक रहते हुए केवल स्नेह से वे बँधे रहते हैं।"

"किन्तु सुहासिनी के पिता की इच्छा अवश्य है कि वे तुम्हारे साथ उसका विवाह करें।"

"यह तो पिता जी के अत्यधिक स्नेह का परिणाम है। वे मेरे पिता के मित्र थे, और जब मैं उन्हें मिल गया तो उनका स्नेह इसके अतिरिक्त कुछ सोच नहीं सका कि वे हम दोनों को विवाह बन्धन में बाँध दे, किन्तु खेद है न सुहासिनी के मन में यह भाव प्रश्रय पाता है, और न मेरे मन में। हम दोनों भाई बहिन की भाँति रहने में कल्याण समझते हैं। हाँ, यदि तुम कान्ति पर

अनुरक्त न हो और सुहासिनी को अपने अनुकूल समझो, तो मैं पिताजी से उसके साथ तुम्हारे विवाह का प्रस्ताव कर सकता हूँ।"

"वाह, यह तुमने खूब सोचा, कमाल है!" उनके कथन से व्यंग्य झाँकने लगा।

"इसमें कोई अनुचित बात तो नहीं है। पिताजी और तुम लगभग एक ही स्थान के रहने वाले हो, एक दूसरे के कुलों से परिचित हो, और भाग्यवश दोनों एक ही जाति के हो, इसलिए कोई सामाजिक रुकावट नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त सुहासिनी को कई लाख रुपयों की सम्पत्ति भी मिलेगी। हाँ, यदि यह कहो कि पिताजी प्रवासी भारतीय हैं, तथा उनका विवाह जाति परम्परा के अनुसार नहीं हुआ, तो वह बात उपेक्षणीय है, क्योंकि नव-भारत में इनका चलन नहीं रह सकता। मुझे विश्वास है कि केवल तुम स्वयं कभी न मानोगे।"

"वाह, मैं तो तुम्हारे विवाह का मध्यस्थ होने का विचार कर रहा था; और तुम स्वय मेरे विवाह के मध्यस्थ बनने जा रहे हो। मेरा अधिकार इस प्रकार न छीनो।"

"जब मैं उससे विवाह नहीं कर सकता; तब भाई होने के नाते यह प्रस्ताव तुम्हारे सामने रखा है। मैं इस विषय में बहुत दिनों से सोच रहा था; और आज अवसर पाकर व्यक्त कर दिया है। यह जान लो; सुहासिनी जैसी पत्नी बड़े भाग्य से मिलती है।"

"धन्यवाद, जो मुझे ऐसा भाग्यशाली समझते हो।"

"मैं तुम दोनों के विचारों तथा मनोभावों से भली भाँति परिचित हूँ; इस-लिए ऐसा प्रस्ताव करता हूँ।"

"मैं देखता हूँ; तुमसे पिंड छुड़ाना मुश्किल हो जायगा! मियाँ जी गए नमाज को और रोजा गले पड़ा!" उनके अट्टहास की प्रतिध्वनि प्रपात के सहस्र धारों ने दी।

"इस विषय में सोचना, यह मेरा अनुरोध है।"

"सोचूँ, तब जब तुम मुझे कान्ति जी के साथ अपने विवाह का मध्यस्थ बनने की अनुमति दो।"

"अनुमति तो तब दूँ, जब वह विवाह करना चाहती हो। कह तो चुका उसको विवाह से घृणा है।"

"अच्छा, कान्ति जी से मैं स्वयं इस विषय पर बातें करूँगा।"

"नहीं, ऐसा कदापि न करना, नहीं तो वह फिर मेरे लिए कोई शास्ति निर्धारित करेगी। एक बार अनजाने भूल तुम्हीं से हुई थी, और उसका जो परिणाम निकला उससे अवगत हो।"

"किन्तु अब तो तुमने उसे पालतू बना लिया है। उस समय वह ताजी जंगल से आई थी। पुरुषों से भड़कना स्वाभाविक था।"

"इस धोके में न रहना! वह नागिन से कम नहीं है। तुमने उसकी चेष्टाएँ नहीं देखी? संसार के सभी मनुष्यों का उद्भव क्रमशः पशुयोनि के पश्चात् हुआ है। क्रमिक विकास के सिद्धान्त से यही प्रमाणित भी होता है। अतएव किसी न किसी पशु के गुणों की छाप प्रत्येक मनुष्य पर होती है। कोई गाय के समान सीधा और स्नेह वाला होता है, और कोई सिंह के समान खूँखार। जैसे गुण जिस पशु के होते हैं, उसी के आकार की छाप भी उनके मुख तथा आँखों में सूक्ष्मावलोकन से मिलेगी। धैर्य के साथ विचारने से यह स्वतः स्पष्ट हो जायगा कि किस व्यक्ति में किस पशु की छाप है, और उसी के अनुसार उसमें कुछ गुण भी होंगे। यह भेद उसी अवस्था में ज्ञात होगा, जब वह व्यक्ति जिसके सम्बन्ध में जानना अभीष्ठ है, अपनी स्वाभाविक अवस्था में हो, अर्थात् उसका मस्तिष्क निष्चेष्ट हो। प्राय: ऐसी अवस्था, निद्रा में विशेष कर और अन्य एकान्त अवसरों पर होती है। इसके अतिरिक्त निरन्तर निरखने से जिस पशु के गुणों की छाप उस पर होगी, वह स्वयमेव मालूम हो जायगी।"

"यह तो तुम एक नई बात कर रहे हो।"

"नई बात नहीं है। हमारे शास्त्रों में इसका उल्लेख है। उन्होंने केवल कुछ नक्षत्रों के आधार पर कुछ गिनी हुई पशु जातियों का वर्णन किया है। ज्योतिष शास्त्र में इसका वर्णन है।"

"हाँ, है किन्तु मैं तो उसे कपोल कल्पित समझता हूँ।"

"कपोल कल्पित कोई वस्तु या विचार संसार में नहीं है। जिसे हम नहीं समझ पाते उसे कपोल कल्पित कह कर तिरस्कृत कर देते हैं।"

"तो तुम कान्ति को किस पशुयोनि से आई हुई समझते हो। अथवा यह बताइये कि उसके मुख पर आपने किस पशु की छाप देखा है ?"

"जो मैं कहूँगा, उस पर तुम विश्वास न करोगे। तुरन्त प्रमाण माँगोगे, और वह प्रमाण मैं अभी देने में असमर्थ हूँ।"

"इससे तो यही ध्वनि निकलती है कि कालान्तर में तुम इसका प्रमाण भी देने की क्षमता रखते हो।"

"हो सकता है कि मैं प्रमाण दे भी सकूँ। आणविक शक्ति अभी प्रथमावस्था में है, जब उसका और विकास होगा तो प्रमाण जुटाना कठिन नहीं होगा।"

"आणविक शक्ति पर तुम्हारा इतना विश्वास है ?"

"सहस्रों वर्षों की तपस्या के पश्चात्, प्रकृति की यह गुह्य शक्ति मनुष्य को मिली है। इसका विस्फोटकर इसकी संहारक शक्ति को ही मनुष्य ने अभी तक विकसित किया है, किन्तु जब इसकी निर्माणक शक्ति का विकाश होगा तब मेरा विश्वास है कि जीवन और मरण का रहस्य जो अभी तक मनुष्य के लिए अबोध है, सहज-गम्य हो जायगा, और इच्छा-मृत्यु तथा इच्छा-जीवन, जिसकी अभी तक मनुष्य ने केवल कल्पना ही की है, साध्य हो जायगा।"

"तब तो यह संसार मनुष्यों के रहने के लिए पूरा नहीं होगा, क्योंकि मनुष्य भला मरना क्यों चाहेगा ?"

"जब मनुष्य को जीवन-मरण का रहस्य ज्ञात हो जायगा, तब वह मृत्यु से भयभीत नहीं होगा। वह शरीरों को उसी प्रकार परिवर्तित करता रहेगा, जैसा अभी हम वस्त्रों का परिवर्तन करते रहते हैं। गीता का वह श्लोक—

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृहणा तिनरोपराणी।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यानि •संयाति नवानि देही॥"

तुमको मालूम है ? भगवान कृष्ण की वह उक्ति आणविक प्रयोगशाला में सिद्ध तथा प्रमाणित होगी ?"

"यह सब अन्वेषकों की कल्पना-तरंगें हैं।" सुरेशचन्द्र के अट्टहास से दिशाएँ कम्पित होने लगी।

"प्रत्येक अन्वेषण के पहले दुनिया इसी भाँति हँसती आई है, तुम्हारी हँसी से मुझे कोई आश्चर्य नहीं होता।"

"क्षमा करना भाई, कुछ मेरा हँसने का स्वभाव ही है। अच्छा यह बताइए कि आप कान्ति जी के मुख पर किस योनि के प्राणी की छाप देखते हैं?"

"तुम जान कर क्या करोगे? केवल हँसने के लिए तुम्हें सामग्री मिलेगी।"

सुरेशचन्द्र ने विश्वनाथ के गले से लिपटते हुए कहा—"बुरा मान गए भाई? मुझे क्षमा करो। मैं प्राय: ऐसी असभ्यता कर बैठता हूँ। मैं हँसूगा नहीं, प्रतीज्ञा करता हूँ। मैंने भी उसमें कुछ विचित्रताएँ लक्ष्य की हैं, किन्तु उतनी दूर तक नहीं जा सका जितनी दूर तुम गये हो। इस अन्तर का कारण शायद यही है कि मैं एक नास्तिक हूँ, और तुम अन्वेषक।"

"हाँ, हमारी-तुम्हारी दृष्टि में अन्तर होना स्वाभाविक है। मैंने कान्ति जी में नागिनी के लक्षण और उसका प्रतिबिम्ब लक्ष्य किया है। उसके मुख की गठन, उसकी क्रियाएँ, उसकी चेष्टाएँ, उसका क्रोध, उसका अहंकार, आदि सभी बातें नागिन से मिलती-जुलती हैं।"

"नागिन से उसके लक्षण मिलते हैं?"

"हाँ, मेरा ऐसा ही अनुमान है कि उसका मनुष्य जन्म नाग योनि के पश्चात् हुआ है, अतएव नाग योनि के संस्कार अभी तक उसमें अवशेष हैं।"

"तुम्हारी बात बड़ी विचित्र है।"

"विचित्र अवश्य है, परन्तु प्रमाण देने की योग्यता अभी मुझे प्राप्त नहीं हुई है।"

"कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम्हारे मस्तिष्क में आजकल साँपों की बातें विशेष रूप से रहती हैं, अतएव तुम इस भावना से अभिभूत हो, और उसी के कारण ऐसा सोचते हो।"

"हो सकता है कि ऐसा ही हो, किन्तु सुहासिनी के सम्बन्ध में तो ऐसा नहीं सोचता?"

"हाँ, सुहासिनी के विषय में तुम क्या सोचते हो ?"

"मैं उसमें एक निरीह, स्नेहमय, उपकारी प्राणी के लक्षण देखता हूँ।"

"ऐसा कौन ?"

"उस गणना में गाय, आदि पशु आते हैं।"

"तुम्हारी बातों से तो यही निष्कर्ष निकलता है कि जितने मनुष्य इस धरा-तल पर हैं, सब किसी न किसी पशु योनि से आए हुए हैं।"

"नहीं, मैं ऐसा नहीं सोचता। बहुत से मनुष्य योनि से भी आए हुए होते हैं। जिनमें मेधा शक्ति अपूर्व है, अथवा जो विशिष्ट बुद्धिमान और ज्ञानी हैं, वे अवश्य ही अपनी पूर्व योनि में मनुष्य रहे हैं। मेरा मत है कि इस सृष्टि में प्रत्येक वस्तु का विकास निरन्तर होता रहता है। पीछे जाने की गुञ्जाइश नहीं है। उसकी प्रगति सदैव अपनी पूर्वावस्था से उच्चतर होती जायगी। इसलिए जिन मनुष्यों में हमको आश्चर्य मे डालने वाली प्रतिभा देखने को मिलती है, वे पहले अवश्य मनुष्य योनि में रहे होंगे।"

"क्या इसका यह भी अर्थ है कि मनुष्य योनि के पश्चात् पुनः पशुयोनि उसको नहीं प्राप्त होती ?"

"हाँ, मेरा ऐसा ही विश्वास है। एक बार मनुष्य योनि प्राप्त करने के पश्चात् उसको प्रगति उच्चतर दिशा में होगी, पुनः उसका अधःपतन नहीं होगा। यदि अधः पतन होना अथवा मनुष्य के पश्चात् किसी जलचर अथवा थलचर पशु प्राणी की योनि प्राप्त करना हम स्वीकार करते हैं तो क्रमिक विकास का सिद्धान्त निष्प्राण हो जाता है।"

"किन्तु हमारे धर्मशास्त्रों में तो कहा है कि मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार ही योनि प्राप्त करता है, तब क्रमिक विकास का सिद्धान्त वहाँ लागू नहीं होता।"

"लागू क्यों नहीं होता ? उनसे क्या यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि नीच कर्म करने वालों को अगले जीवन में पशुत्व द्योतक वृत्तियों की मात्रा अधिक मिलती है।"

"किन्तु जब तुम कर्म सिद्धान्त पर विश्वास करोगे तब क्रमिक विकास के

मानने में बाधा उपस्थित होगी। क्योंकि क्रमिक विकास कर्म सिद्धान्त का विरोधी है।"

"विरोधी नहीं, वरन् सहायक है। उच्चतर प्राणियों के कर्म कदापि नीच नहीं होंगे, वे नीच हो नहीं सकते। वे सदैव आगे विकास की दिशा में बढ़ने वाले होंगे। इसी मनुष्य योनि में ही तो विकास शक्ति को खुलकर खेलने का अवसर मिलता है।"

"भाई, बुरा मत मानना, मेरे विचारों के साथ तुम्हारे विचारों की पटरी नहीं बैठती।"

"यदि तुम्हें मेरे विचार मान्य नहीं हैं तो मैं क्यों बुरा मानूँगा। प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है, उसे किसी के विचारों को उस समय तक नहीं अपनाना चाहिए, जब तक उसे स्वयं उनकी सत्यता पर विश्वास न हो जाय। पहले मुझे ये विचार अद्भुत और असत्य प्रतीत होते थे, किन्तु अब जब से इस नए वैज्ञानिक विकास की ओर ध्यान देता हूँ, तब मुझे सभी बातें स्पष्ट और सत्य ज्ञात होती हैं। अच्छा इस व्यर्थ की बकवास बन्द करो। देखो सुहासिनी और कान्ति उस पहाड़ी पर खड़ी हुई हमें ऊपर बुला रही हैं। चलोगे?"

"भैया, अब इस कान्ति से मुझे भय लगने लगा है, तुम कहते हो कि यह नागिन है, नागिन से दूर रहने में ही कल्याण है।"

"नहीं ऐसा मत सोचो। नाग योनि से आती हुई भी वह विष-दाँत से रहित है। वह डसेगी नहीं।"

"यथार्थ नागिन से डसे जाने पर कुछ चिकित्सा हो सकती है, किंतु स्त्री रूप में नागिन से डसे जाने पर कोई चिकित्सा नहीं है। उसकी मृत्यु ही निश्चित है।"

"तब तुम मुझको उसी मृत्यु की ओर अग्रसर करना चाहते हो, क्यों? दोनों के अट्टहास ने सुदूर स्थित कान्ति और सुहासिनी को भी चकितकर उनकी ओर देखने के लिए बाध्य कर दिया। वे दोनों उनसे मिलने के लिए चल दिए।

— ६ —

शीत काल का पूर्ण चन्द्र हल्के कुहरे का आवरण धारण किए पूर्व दिशा के क्षितिज से झाँकने लगा। सारे दिन रिमझिम वर्षा हुई थी, और सध्या समय बादल फट गए, तथा आकाश निर्मल हुआ। वायु मंडल में जल की छोटी-छोटी महीन बूँदें वायु की तरंगों में हिलोरे लेकर कुहरे का रूप अपनाए हुए थीं। वर्षा के कारण डाक्टर आनन्द की पार्टी घर के अन्दर रहने के लिए बाध्य हुई और समय काटने के लिए वाद्य तथा संगीत का कार्यक्रम बनाया गया। सुहासिनी को सितार का और कान्ति को वायलिन का अभ्यास था, उन्होंने अपने-अपने वाद्यों पर अपना कौशल दिखाया। कोमियाटा और गोमाको ने अफ्रीकी जातियों का प्रिय वाद्य ढोल बजाया, और जब विश्वनाथ तथा सुरेशचन्द्र की बारी आई तो उन्होने एक दूसरे का मुँह ताक कर अपनी अज्ञानता तथा असमर्थता प्रकट की। किन्तु डाक्टर आनन्द ने, अनुरोध न किए जाने पर भी हारमोनियम, बड़े उत्साह से बजाया। यद्यपि उनका अभ्यास छूटा हुआ था, तथापि दो-एक बार सप्तको पर उँगलियाँ दौड़ाते ही पुराना अभ्यास ताजा होने लगा, और उसमें उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त हुई। भाव-उमंग में बहते-बहते जब उन्होंने सूरदास का पद "दो में तो एको ना भई" आलापना आरम्भ किया तो एक प्रकार का अद्भुत समा बँध गया, और प्रायः सभी चित्र लिखे-से रह गए। उनका गायन समाप्त होते ही सुहासिनी ने मुग्ध स्वर में कहा—"पापा, मैंने स्वप्न में भी यह अनुमान नही किया कि आप इतना सुन्दर गाते-बजाते हैं। आपने यह विद्या मुझे क्यों नहीं सिखाई?"

विश्वनाथ ने भी उसमें योग देते हुए कहा—"पिता जी, आप तो आलाप में बड़े-बड़े गवैयों को भी मात करते हैं। मुझको यहाँ रहते इतने दिन बीत गए, किन्तु अनुमान भी कभी न कर सका कि आप इतने ऊँचे कलाकार हैं।"

सुरेशचन्द्र ने उसके बाद तुरन्त कहा—"सत्य ही चाचा जी, आपका कण्ठ तो सुरीला है ही, किन्तु गाने और बजाने में भी आप कम कुशल नहीं है। मैंने

बड़े-बड़े कलाविदों का आलाप सुना है, किन्तु इस प्रकार स्वर साधने की पटुता नहीं देखी।"

सुहासिनी ने कान्ति को सम्बोधित करते हुए कहा—"क्यों कान्ति बहिन, तुम्हारा पापा के गायन के सम्बन्ध में क्या विचार है। तुम मौन होकर क्या सोच रही हो।"

कान्ति के नेत्र अश्रुपूरित हैं, यह अभी तक किसी ने नहीं लक्ष्य किया था। उसने अपने अश्रुओं को साड़ी के छोर में बाँधते हुए कहा—"क्या कहूँ बहिन, पिताजी के गायन ने मुझे अपनी माँ की सुधि दिलवादी। वे भी इसी भाँति तन्मय होकर तुलसी और सूर के पद गाती हैं, और गाते-गाते उसमें इतनी समा जाती हैं कि उनके और सुनने वालों के नेत्रों से आँसू झरने लगते हैं।"

डाक्टर आनन्द ने कान्ति से आश्वासित वाणी में कहा—"बेटी, अगर तुमको मेरा गायन पसन्द आया है तो मैं तुम्हें गान विद्या सिखाऊँगा।"

सुहासिनी ने अभिमान भरे स्वर में कहा—"किन्तु आपने मुझे यह विद्या सिखाने की ओर कभी ध्यान नहीं दिया।"

"मैंने कभी मना भी तो नहीं किया। तुमने एक बार सितार सीखने का उत्साह दिखाया था, उसके सिखाने का प्रबन्ध कर दिया। तुमने थोड़ा-बहुत सीख कर अपने गुरु को बिदा कर दिया, इससे मैंने अनुमान किया कि तुमको इस कला से रुचि नहीं है। यह तो तुम जानती ही हो कि मैंने कभी अपनी इच्छा तुम पर लादने की कोशिश नहीं की।"

"किन्तु आप ने गायन विद्या का महत्व तो भी कभी नहीं बताया। मैं क्या जानती थी कि हमारे भारतीय गायन शास्त्र में इतना माधुर्य भरा हुआ है! कभी आप ने मेरे सामने इस प्रकार गाया भी तो नहीं।"

"हाँ गाने-बजाने का वह अवसर ही नहीं आया, जब से तुम्हारी माँ की मृत्यु हुई।" कहते-कहते डाक्टर आनन्द ने मुँह घुमा लिया उनका गला भर आया था, और वे अधिक बोल न सके।

डाक्टर गोमाको ने अनुभव किया कि वातावरण कुछ पुरानी स्मृतियों के कारण शोकाकुल हो रहा है, अतएव प्रसंग बदलने के उद्देश्य से कहा—"नृत्य क्या नहीं होगा? जहाँ तक मैं अनुमान करता हूँ, आप लोग इस विद्या में पारगत नहीं हैं। इस कला में भी मैं कुछ अपनी प्रवीणता दिखाने की इच्छा रखता हूँ। आज आप लोगों को वह नृत्य दिखाना चाहता हूँ, जो यहाँ के लोग विवाह के अवसरों पर नाचते हैं। मेरे साथ ढोल पर संगत केवल कोमियाटा ही कर सकता है। क्यों कोमियाटा मेरा साथ दोगे?"

"हाँ, अवश्य साथ दूँगा, यदि प्रभु की आज्ञा मिले?"

प्रभु से तात्पर्य डाक्टर आनन्द से था।

उन्होंने सिर हिला कर स्वीकृति देते हुए कहा—"क्यों नहीं? इस समय हम लोगों में केवल मित्रता का सम्बन्ध है। मैं केवल एक मित्र के अतिरिक्त कुछ दूसरा नहीं हूँ। वैसे भी कोमियाटा की मुखाकृति भैया विश्वनाथ से बहुत मिलती है, इससे मैं उसको उनकी बराबरी का मानता हूँ।"

कोलियाटा कुछ शरमा गया, और गोमाको ने कहा—"हाँ, यदि इसकी दाढ़ी-मूँछ जो बेहद बढ़ी हुई है, साफ कर दी जावे, तो दोनों की मुखाकृति में बहुत कम अन्तर रहेगा। प्रकृति भी कभी-कभी अद्भुत खेल खेलती है। कहाँ डाक्टर विश्वनाथ और कहाँ कोमियाटा। दोनों का जन्म विभिन्न देशों में हुआ, और उनमें ऐसा सादृश्य कैसे आया? कोई नहीं बता सकता।"

"मैंने भी इस विषय पर बहुत सोचा है, मगर कोई सिरा नहीं मिलता।" विश्वनाथ ने मुस्कराते हुए कहा।

सुहासिनी ने विवाद बन्द कराने के उद्देश्य से कहा—"इन बातों को छोड़िए। व्यर्थ की बकवास मुझे अच्छी नहीं लगती। अब नाच शुरू होना चाहिए। आज पूर्णिमा है शायद। तीन महीने पहले हम लोगों ने 'टोमो' में जैसा नृत्य देखा था, शायद उसका लघु संस्करण डाक्टर गोमाको के नृत्य में देखने को मिल जाय।"

सुरेशचन्द्र ने पूछा—"टोमो से आपका क्या तात्पर्य है?"

"टोमो" उस गाँव का नाम है, जहाँ ठीक तीन महीने पूर्व हम लोग मोम्बा पूजा देखने गए थे, और वहाँ के आदि वासियों ने पूजा के उपलक्ष में नाचा गाया था।"

विश्वनाथ ने कहा—"तुम्हें मोम्बा-पूजा की बात तो बता चुका हूँ। टोमों में प्रत्येक पूर्णिमा को मोम्बा सर्पों की पूजा होती है। आज पूर्णिमा है, इसलिए आज भी होती होगी।"

"यहाँ से टोमो कितनी दूर है? मैं भी उस पूजा को देखना चाहता हूँ।"

"पहले कहा होता तो शायद हम लोग इसका प्रबन्ध भी कर लेते। यहाँ से टोमो काफी दूर है, हमें नैरोबी होकर जाना होगा।"

"तो क्या आस-पास के किसी गाँव में मोम्बा की पूजा नहीं होती?"

"कह नहीं सकता, शायद डाक्टर गोमा को कुछ बता सकें।"

गोमाको ने उत्तर दिया—"इधर के गाँवों के विषय में मैं कुछ नहीं जानता। मोम्बा इधर मिलते जरूर होंगे, किन्तु उनकी पूजा इधर प्रचलित है या नहीं; इस विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता। कोमियाटा को शायद कुछ मालूम हो। क्यों कोमियाटा, तुम्हारा क्या ख्याल है, इधर कहीं पूजा होती है या नहीं।"

"मोम्बा की पूजा तो समग्र केनिया में होती है किसी न किसी रूप में। इधर के गाँवों में भी होती होगी, किन्तु मेरा परिचय यहाँ के निवासियों से नहीं है। किसी एक गाँव में जाकर पता लगाने पर मालूम होगा। यदि आज्ञा हो तो पता लगाने जाऊँ?"

"नहीं, अब जाने से भी कुछ नहीं होगा। किसी अगली पूर्णिमा को देखा जायगा।" डाक्टर आनन्द ने कहा।

"लेकिन पापा, क्या तब तक सुरेश जी यहाँ रह सकते हैं? उनकी छुट्टी समाप्त होने पर है, और उन्हें शीघ्र मोम्बासा पहुँचना भी तो है।"

"वह दृश्य देखने योग्य है अवश्य, किन्तु अब इस आँधी-पानी में कैसे जाना होगा? हाँ, यदि पहले से हम लोग सारा प्रबन्ध कर लेते तो दूसरी बात

थी। इसके अतिरिक्त आज का मौसम जैसा है उसमें असुविधा ही होती, और शायद अच्छी तरह देखने को नहीं मिलता।" विश्वनाथ ने कहा।

"कृपा करके पूजा और मोम्बा के विषय में बातें न कीजिए। मुझे उसके नाम से ही भय लगता है। अब मै मारे भय के कहीं बाहर घूमने-फिरने के लिए नहीं जा सकती।"

"अरे, तुम इतनी डर-पोंक हो। इतने लोगों के साथ भी तुम्हें डर लगता है।" सुहासिनी ने हँसते हुए कहा।

"यह तो अपना-अपना स्वभाव है। किसी को किसी चीज से डर लगता है, तो किसी को दूसरे से, इसमें तुम्हें आश्चर्य क्यो होता है सुहास!" डाक्टर आनन्द ने कान्ति की लज्जा निवारण करने के उद्देश्य से कहा।

सुहास चुप हो गई। डाक्टर गोमाको ने कहा—"नृत्य का मजा तब आएगा, जब मै अपना वेष भी यहाँ के आदिवासियों की भाँति बना लूँ।"

कान्ति ने प्रसन्नता से कहा—"हाँ, यह बात ठीक है। उस पृष्ठिभूमि के साथ नृत्य में सत्यता आ जायगी।"

सुरेशचन्द्र ने कहा—"बहुत ठीक प्रस्ताव है, मैं भी अनुरोध करूँगा कि डाक्टर गोमाको अवश्य अपना वेष परिवर्तन करें।"

डाक्टर गोमाको प्रसन्न होते हुए अपना वेष अफ्रीका के आदिवासियों की भाँति परिवर्तन करने के लिए चले गए।

उसके जाने के पश्चात् डाक्टर आनन्द ने सुरेशचन्द्र से कहा—"भैया, अगर उस दिन तुम भी हमारे साथ होते जब हम लोग टोमो गए थे, तब जीवन में एक अभूत पूर्व घटना देखने को मिलती, और विचार करने के लिए यथेष्ठ सामग्री भी। उससे यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि सृष्टि की प्रत्येक वस्तु पारस्परिक प्रेम और विश्वास पर अवलम्बित है। सब की अन्तर्शक्ति एक है, और उस शक्ति को विकसित करने से समग्र भेद-भाव मिट जाते हैं। इस समय संसार में जितने भेद-भाव हैं, जितनी विरोधी भावनाएँ हैं, जितना कलह-संग्राम है, वह तभी नष्ट हो सकता है जब मानव अपनी अन्तर्शक्ति, अन्तदृष्टि से काम लेना और देखना सीखे।"

"किन्तु यह वैज्ञानिक युग है चाचा जी, जब तक कोई वस्तु, कोई विचार विज्ञान की कसौटी पर कसा जाकर खरा नहीं उतरता, तब तक संसार उसको मानने के लिए तैयार नहीं होता।"

"हाँ, और विज्ञान हमें प्रतिक्षण, प्रति पग उसी सत्य की ओर लिए जा रहा है। विज्ञान केवल उस सत्य तक पहुँचने का साधन मात्र है; और वह प्रमाणित होकर रहेगा ही। ससार की निर्मित वस्तुएँ तो उसी अन्तर्शक्ति के द्वारा निर्मित हुई हैं; और उसके विभिन्न रूपमात्र हैं। जैसे घृत, अन्न और शक्कर के संयोग से अनेकानेक मिठाइयाँ बनती हैं; किन्तु वस्तुतः विश्लेषण से ज्ञात होता है कि उन तीन मूल वस्तुओं के अतिरिक्त वे कुछ अन्य नहीं हैं; उसी प्रकार सभी वस्तुओं के विश्लेषण से ज्ञात होगा कि तत्वतः सभी उस मूल शक्ति के आधार पर रूप परिवर्तन करती रहती हैं। स्थूल को सूक्ष्म ऊर्जा में परिवर्तन करना, एक समय असंभव समझा जाता था, किन्तु आज वह प्रत्यक्ष हो गया है। स्थूल वस्तुओं के विभिन्न भेदों से सूक्ष्म तत्व-ऊर्जा में कोई अन्तर नहीं पड़ता है। स्थूल त्रयात्मक गुणों-सत, रज और तम से परि-चालित है; इनके विभिन्न समीकरण विभिन्न वस्तुओं को जन्म देते हैं; किन्तु ये तीनों गुण भी केवल उसी एक सूक्ष्म तत्व ऊर्जा के विभिन्न रूप मात्र हैं।"

इसी समय डाक्टर गोमाको ने अपने परिवर्तित वेष में प्रवेश किया। सुहासिनी ने उनको देखकर कहा—"पापा, अब तो आप अपने तत्व ज्ञान की बातें बन्द कर नृत्य देखने दें।"

डाक्टर आनन्द ने मृदु मुस्कान से नृत्य आरम्भ करने के लिए संकेत किया। कोमियाटा ने ढोल पर थाप दी और डाक्टर गोमाको ने पग सञ्चालन का सम निर्दिष्ट किया।

— ७ —

नृत्य के पश्चात् सब लोगों ने भोजन किया, और प्रायः सभी थके होने के कारण विश्राम करने के लिए अपने-अपने कमरों में चले गए। इस समय तक

सध्या का कुहासा मिट गया था और चन्द्रमा अपनी सोलहों कलाओं से चमक रहा था। धरातल की प्रत्येक वस्तु रुपहले प्रकाश में निखरी हुई प्रतीत होती थी।•डाक-बँगले के सामने झील पर चाँदनी लहरों के साथ नृत्य कर रही थी। सुरेशचन्द्र ने अपने कमरे से उस मनमोहक दृश्य को देखा, और उस रमणीकता का घूम-फिर कर आनन्द लेने के लिए उनका मन आतुर हो उठा। विश्वनाथ के कमरे की ओर जो बिल्कुल सटा हुआ था, उन्होंने झाँक कर देखा, औरखुली खिड़की देखकर कहा—"अरे भाई विश्वनाथ क्या सचमुच तुमने सोनेकी तैयारी कर ली ?"

विश्वनाथ स्वयं उस प्राकृतिक दृश्य को देखने में तल्लीन थे। उन्हें भी नींद नहीं आ रही थी। उन्होंने उत्तर दिया—"नहीं भाई, नींद का नाम निशान भी नहीं है। भाई, यह सुन्दर रात्रि कौन सोकर खोवे। मेरे मन में तो घूमने की इच्छा हो रहा है।"

"यही बात मेरे मन में भी उठ रही है। अभी समय भी अधिक नहीं हुआ है। केवल नौ बजे हैं।"

"अच्छी बात है, कपड़े पहनो। क्या नाव पर भी सैर करोगे ?"

"अवश्य। यह भी क्या पूछने की बात है! चाँदनी का रूप तो झील पर ही निखरेगा।"

"मैं भी यही सोच रहा था। मैं तो लगभग तैयार हूँ। आओ।"

"मैं भी तैयार हूँ, अभी एक मिनट में आता हूँ सिग्रेट का डिब्बा भी साथ में ले लें।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा हो, मैं तो पिऊँगा नहीं। आओ, निरर्थक बातों में समय बरबाद न करो। हाँ, सिग्रेट का डिब्बा लो या न लो, किन्तु बन्दूक लेना मत भूलना।"

"क्या शिकार करने का इरादा है ?"

"नहीं शिकार तो नहीं करेंगे, किन्तु कहीं हम दूसरों के शिकार न हो जाय, इसलिए आत्म-रक्षा के लिए बन्दूकें साथ लेना आवश्यक है।"

"अच्छा, मैं अपदी प्यारी बन्दूक 'भय-भञ्जन, ले लूँगा, और तुम अपनी ले लो।" दोनों दूसरे ही क्षण अपनी-अपनी बन्दूकें लिए हुए बरामदे में आ गए। उनकी बातचीत सुनकर डाक्टर आनन्द जो उस समय जाग रहे थे बोले—"क्या इस समय तुम लोग घूमने जा रहे हो।"

"हाँ, पिताजी, सुरेश और हम जा रहे हैं। अभी घंटा-आधघंटा में वापस आ जायँगे।"

"अपने साथ कोमियाटा को ले लो। रात्रि का समय है, साथ में उनके रहने से अच्छा ही रहेगा।"

"वह थक गया है, उसे सोने दीजिए। हम लोग बहुत दूर नहीं जायँगे। सिर्फ थोड़ी देर झील पर विहार करेंगे। आप चिन्ता न कीजिए, हम लोगों ने अपनी-अपनी बन्दूकें साथ ले ली है। आप तो कई बार देख चुके हैं कि हम दोनों पक्के निशानेबाज हैं। एक तो किसी भयानक जीव से सामना ही न पड़ेगा, और यदि भाग्यवश पड़ भी गया तो हम लोग अपनी आत्म-रक्षा करने में समर्थ होंगे। आप निश्चिन्ता होकर विश्राम कीजिए।"

"अच्छा जाओ, लेकिन अधिक बिलम्ब न करना।"

"जी नहीं।" कहकर दोनों मित्र चल दिए।

डाक बँगला एक ऊँची जगह पर बना हुआ था। उससे थोड़ी ही दूर झील का किनारा था, जहाँ, मोटर-नाँव बँधी हुई थी। उसके पास पहुँच कर सुरेश-चन्द्र ने कहा—"अरे भाई विश्वनाथ, इसकी पेट्रोल-टंकी तो भरी हुई है!"

"थोड़ा बहुत पेट्रोल तो होगा ही, और भाई आज तो स्वयं नाँव चलाने की उमंग उठ रही है। हाँ, अगर तुम्हारी इच्छा न हो तो तुम न चलाना। अकेले मैं ही खे लूँगा।"

"जानते हो, मैं सवा सोलह आना नाविक हूँ। तुम बैठो, मैं खेऊँगा।"

"अच्छा, हम दोनों नाँव खेयेंगे। दिन भर बैठे रहने से शरीर जकड़-सा गया है। थोड़े बहुत परिश्रम से नींद अच्छी आयेगी।"

नाँव खोल दी गई, और वे उस पर बैठ गए। दोनों ने एक-एक डाँड़

सँभाले, और अल्प प्रयत्न से ही वह झील के वक्ष पर संतरण करती हुई तट से दूर पहुँच गई।

प्रकृति का वह दृश्य अत्यन्त सुहावना था। ऊपर नील गगन में चन्द्र को शत-शत विमल किरणें झील के नीले जल की उर्मियों पर एक-एक नव चन्द्र को जन्म दे रही थीं। सुदूर से प्रपात का अनवरत कोलाहल एक मधुर संगीत का उद्भव कर रहा था, जिससे उस नीरव रात्रि की सुषमा तथा गंभीरता भयानक होते हुए भी मनोरम थी, सुखकर थी और मोहक थी। दोनों मित्र उसकी स्निग्धता में खो-से गए। यद्यपि उनके हाथ अब भी डाँड़ चला रहे थे, तथापि वे नहीं जानते थे कि कहाँ जा रहे हैं। सहसा उनकी नाँव प्रपात से गिरती हुई द्रुत धारा में पहुँच कर लड़खड़ाने लगी। थोड़ी दूर पर उस महा प्रपात की सहस्र धाराओं के साथ एक-एक चन्द्र भी उनके साथ गिर रहा था, चन्द्रमा की उस प्रकाशमाला का कहीं ओर-छोर न मिलता था। दोनों मित्रों को परिस्थिति का ज्ञान तब हुआ जब उनकी नौका एक शिला खंड से सहसा टकरा गई।

विश्वनाथ ने सँभलते हुए कहा—"अरे सुरेश भाई, हम लोग तो बड़ी दूर निकल आए।"

"हाँ, हमें कुछ जान ही न पड़ा कि हमने कब इतना सफर तय कर डाला।"

"देखो इस चाँदनी रात में प्रपात कितना सुन्दर मालूम होता है, मानो कोई श्वेत बसना सुन्दरी अपने सहस्र हाथों से चन्द्रिका लुटा रही है!"

"क्यों विश्वनाथ, एक बात पूछूँ?"

"मैं जानता हूँ कि तुमको वही पागलपन सूझा होगा।"

"क्या?"

"वही प्रेम की बातें, जिनमें कोई सार नहीं है। कोई भी कलाकार किसी से प्रेम नहीं कर सकता। अगर वह प्रेम के झूठे झगड़ों में पड़ता है तो वह कलाकार कदापि नहीं है। कलाकार की प्रेयसी वस्तुतः उसकी कला ही होती है।"

"और यदि वह किसी प्रेयवस्तु के माध्यम से कला की अर्चना करता है, तब?"

"कला किसी अन्य की व्यवधानता स्वीकार नहीं करती। वह तो केवल अपने प्रिय के साथ रहना चाहती है। क्या किसी स्त्री को उसकी सौत स्वीकार होगी?"

"वह दूसरी बात है, क्योंकि दोनों जीवित व्यक्ति हैं, किन्तु कला तो निर्जीव है। वह एक उद्देश्य मात्र है, और उसकी प्राप्ति बिना माध्यम के नहीं होगी।"

"तुम्हारा विचार गलत है। कला उसी प्रकार सजीव है जैसा मानव होता है। निरंतर तपस्या के पश्चात् ही वह सजीव होती है, हालाँकि उसका प्रथम रूप निर्जीव होता है। विज्ञान की उपासना भी तो कला की उपासना है। स्वयं विज्ञान इतना चमत्कार पूर्ण और आकर्षक है कि किसी अन्य बात को सोचने-समझने के लिए अवसर ही नहीं मिलता। वह स्वयं पूर्ण है। वह न कोई माध्यम स्वीकार करता है, और न कोई व्यवधान ही सहन कर सकता है।"

"लेकिन ऐसा जीवन तो नीरस है।"

"दूसरों के लिए अवश्य नीरस है, किन्तु वैज्ञानिक के लिए नहीं।"

"तब कान्ति जी क्या कुमारी ही रहेगी?"

"उसके सम्बन्ध में मुझे कोई जानकारी नहीं है। तुम क्यों नहीं उससे सब बातें पूछ लेते?"

"मुझे तो तुम्हारी चिन्ता है।"

"आप मेरी चिन्ता न कीजिए।"

"वाह, तुलसी बाबा कह गए हैं 'जे न मित्र दुख होंहि दुखारी—तिन्हँहि बिलोकत पातक भारी'। इसलिए भाई, मैं वह पातक कदापि नहीं कर सकता। लेकिन, चाहे जो कुछ भी कहो, कान्ति सुन्दरी होने के साथ गुणवान भी हैं। जिस कुशलता से उसने वायलिन आज बजाया, वैसा मँजे हुए कलाकर ही बजा सकते हैं। मेरे कानों में वह ध्वनि बस-सी गई है।"

"अच्छा, अब मालूम हुआ कि तुममें इतना भावोद्रेक क्यों है। आपके कानों में जब वायलिन की ध्वनि बसी हुई है, तब आपके मन में उसकी मूर्ति अवश्य बसी होगी। आप मेरे बहाने से अपने प्रेम का बखान कर रहे थे।

बधाई देता हूँ मित्र ! कान्ति जी को भोर होते ही आपके प्रेम का सन्देश सुना दिया जायगा। कल ही पिता जी से विवाह का प्रस्ताव करूँगा।"

"देखो ऐसी मूर्खता न कर बैठना। चाचा जी जैसे विमल स्नेही को इस कीचड़ में मत घसीटना। कहीं उनको कुछ मालूम हो गया—चाहे वह बिल्कुल निराधार ही क्यों न हो, इसके पीछे पड़ जायँगे।"

"हाँ, फिर वे किसी की न सुनेंगे। भाई सुरेश, पिता जी जैसे निष्कपट व्यक्ति ही इस धरातल के देवता हैं। सदैव परोपकार में रत रहते हैं, किसी प्रकार के फल की प्रत्याशा नहीं करते।"

"हाँ, वे प्रत्यक्ष योगी हैं। सुहासिनी जी उन्हें कभी अनुचित ढंग से फटकार भी देती हैं, तो भी जरा मलाल नहीं आता। उनके सम्पर्क में जो भी आया, उसे अपने अकपट स्नेह से सराबोर कर देंगे। उनको छोड़ने का मन नहीं होता।"

"इस स्नेह से ही मैंने उनसे जब नैरोबी जाने की बात कही तो वे स्वयं मेरे साथ रहने के लिए हजारों रुपयों की प्रैक्टिस छोड़कर चले आए। ऐसे अपूर्व स्नेह को कौन निर्मम ठुकरा सकता है। चलो भाई हम लोग अब वापस चलें, ग्यारह बजने वाला है। शायद पिता जी अभी हम लोगों के वापस आने की प्रतीक्षा में बैठे हों। अधिक देर हो जाने से वे हमें ढूँढ़ने के लिए चल देंगे।"

"हाँ, अब चलें, लेकिन अब नाँव खेकर ले जाना कठिन है।"

"कोई बात नहीं है, हमको पहुँचाने के लिए पेट्रोल पर्याप्त है।" मोटर-नौका वापस घर की ओर रुवेग संतरण करने लगी। रात भीग रही थी, और उसके साथ पवन भी शीतल होकर शरीर को रोमाञ्चित कर रहा था। जब नौका डाक बँगले के समीप पहुँची तो उनको वायु में लहराता हुआ वायलिन का मधुर स्वर सुनाई दिया।

स्वर सुनते ही सुरेशचन्द्र ने कहा—"यह तो कान्ति जी का हस्त-कौशल है। मालूम होता है वे अभी तक सोईं नहीं।"

"बड़ी तन्मयता से बजा रही हैं। संगीत में कितना आकर्षण है!"

"बड़ा सुन्दर बजाती हैं! इन्जिन की गड़गड़ाहट में वायलिन का स्वर-माधुर्य डूब-सा जाता है, भाई इस तूफान-बदतमीजी को बन्द करो। तट समीप आ गया है, हमारी नौका स्वयं किनारे लग जायगी।"

विश्वनाथ ने इन्जिन का बटन दबा कर बन्द कर दिया। नीरवता में सधे हुए स्वरों का माधुर्य निखर उठा। वे सुनते-सुनते तन्मय हो गए। इसी समय सहसा स्वर बन्द हुए, और दूसरे क्षण पुनः बज उठे, किन्तु उनमें इस बार वह माधुर्य न था, वह रस न था, जिसका स्वाद वे ले चुके थे। वे स्वर विकृत और असंगत थे। उनसे किसी रस का प्रवाह नहीं हो रहा था, बल्कि ऐसा प्रतीत होता था, मानो कोई अनभिज्ञ व्यक्ति बजा रहा हो।

सुरेशचन्द्र ने किञ्चित खिन्न स्वर में कहा—"यह क्या! अब कौन बजाने लगा? निश्चय ही यह किसी नौसिखिए का प्रयत्न है।"

"संभव है, सुहासिनी बजाने लगी हो।"

"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। गीत अभी समाप्त ही कहाँ हुआ था! आरोह चल रहा था, बिना अवरोह के क्या कोई गायक या वादक गीत समाप्त कर सकता है; या कोई श्रोता उस रसधार को छीन-झपट कर बन्द करने का साहस कर सकता है?"

"हाँ, स्वर अवश्य बेमेल बोल रहे हैं, जैसे किसी से जबरन बजवाया जा रहा हो। सुहासिनी बहिन ऐसी गड़बड़ी कदापि नहीं कर सकती।"

"तब क्या बात है! नौका का इन्जिन चलाओ, हमें शीघ्र पहुँच कर इस गड़बड़ी का कारण समझना चाहिए। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि कान्ति जी किसी विपत्ति में फँसी हैं।"

मोटर का इन्जिन चालू करते हुए विश्वनाथ ने कहा—"भाई विपत्ति क्या हो सकती है? यह सब तुम्हारा भ्रम है। कभी-कभी कुशल वादक भी खेल-खेल में अनमोल स्वरों को बजाने लगते हैं। अकेले बजाते-बजाते संभव है कि उन्हें कोई खेल सूझा हो।"

"तुम्हारी बात मेरे मन में नहीं जमती। देखो स्वर कितने विकृत होते जा रहे हैं। ऐसा कोई भी गायक या बादक सहज ही नहीं कर सकता।"

"हाँ स्वरों का अटपटापन तो बढ़ता ही जाता है।। अवश्य ही इसका कोई कारण है।"

"बन्दूकें भरी हैं न। शायद उनके चलाने का अवसर ही आ जाय, कौन जानता है?"

"मेरी बन्दूक की दोनों नालों में कारतूस चढ़े हुए हैं।"

मेरी बन्दूक भी भरी है। क्या तुमने ध्यान दिया? वायलिन का बजना बन्द नहीं होता वह उसी अटपटे ढंग से बजती जा रही है, जैसे कोई बजाने के लिए उसे मजबूर कर रहा हो। श्रोता को इसकी परवाह नहीं है कि ध्वनि सस्वर है, या स्वर रहित।"

"हाँ भाई, कुछ ऐसा ही मुझे भी प्रतीत होने लगा है। देखो किनारा आ गया।"

नौका के किनारे लगते ही दोनों कूद पड़े, और दौड़ते हुए पहाड़ी पर चढ़ने लगे। डाँक बँगले के निकट पहुँच कर वे आहट लेने लगे। चारों ओर घोर निस्तब्धता छाई हुई थी। वे शीघ्रता से आगे बढ़े और बरामदे में आ गए। दाहिनी ओर कान्ति का कमरा था। वायलिन अब भी उसी अटपटे स्वरों में बज रही थी।

विश्वनाथ ने सुरेशचन्द्र को सचेत करते हुए कहा—"जरा धीमे-धीमे निःशब्द पगों से चलो। पहले हमें छिपकर देखना चाहिए कि रहस्य क्या है।"

"कान्ति जी के कमरे का द्वार खुला हुआ है। देखो लालटेन का प्रकाश बाहर तक आ रहा है, इससे प्रकट होता है कि वे अभी तक सोई नहीं हैं। चलो, आगे-आगे तुम चलो।"

विश्वनाथ निःशब्दों से धीरे-धीरे कान्ति के कमरे की ओर बढ़े। द्वार के पहले एक खिड़की थी, वहीं से झाँककर वे भीतर का दृश्य देखने का प्रयत्न करने लगे। झाँकते ही जो कुछ उन्हें दिखाई पड़ा, उससे वे सिहर कर पीछे

हटे और उत्सुक सुरेशचन्द्र से टकरा गए। विश्वनाथ सिर से पैर तक काँप रहे थे, किन्तु सुरेशचन्द्र को अपने मुख पर उँगली रख कर मौन रहने का संकेत कर कमरे के भीतर का दृश्य देखने को कहा। जैसे ही सुरेशचन्द्र ने झाँक कर देखा, वे भी सिहर कर दो पग पीछे हट गए।

सुरेशचन्द्र ने भयाकुल स्वर से विश्वनाथ के कान के समीप कहा—"अब मालूम हुआ कि वायलिन क्यों इतने विकृत स्वरों से बज रही है। बेचारी कान्ति जी तो मृत्यु-मुख में हैं। जिन साँपों के नाम से उन्हें भय लगता था, इस समय वे दो साँपों से घिरी हुई हैं। क्यों भाई क्या यही मोम्बा सर्पों का जोड़ा है।"

"हाँ मोम्बा सर्पों का जोड़ा ही मालूम होता है। यह तो बड़े विकट संकट की अवस्था है। दोनों मोम्बा उसको घेरे हुए हैं। यदि जरा भी असावधानी हो जाय तो कान्ति जी की मृत्यु निश्चित है। समझ में नहीं आता कि किस प्रकार उसकी रक्षा की जाय।"

"हाँ, बड़ी कठिन समस्या है। क्या हम उन दोनों को बन्दूक से नहीं मार सकते?"

देखते नहीं कान्ति सोफा पर खड़ी हुई वायलिन बजा रही है, और दोनों मोम्बा स्वर सुनने में लीन हैं। वे इस प्रकार झूम रहे हैं, मानो संगीत का आनन्द ले रहे हों जरा भी आहट होने पर वे कान्ति जी पर आक्रमण कर सकते हैं। आज पूर्णिमा है न, इनकी पूजा का दिन है। मालूम होता है मोम्बा भटक कर वायलिन के शब्द से खिंच कर यहाँ आ गए। किन्तु प्रश्न यह है कि कान्ति जी की रक्षा किस प्रकार की जाय।"

"हाँ, इसी प्रश्न पर विचार करो।"

"ऐसा कोई उपाय होना चाहिए जिसमें दोनों मोम्बा एक साथ मारे जाय।"

"एक पर तुम निशाना साधो, और दूसरे पर मैं।"

"किन्तु इसमें भी एक आशंका है।"

"वह क्या?"

"यदि हम दोनों की बन्दूकों के चलने में एक विपल का भी अन्तर पड़ गया, तब कान्ति जी की मृत्यु निश्चित है। किसी न किसी मोम्बा की वह शिकार हो जायगी।"

"हां, यह बात विचारणीय है। ऐसा होना संभव है। तब क्या उपाय किया जाय?"

"इसका एक ही रास्ता है कि हम दोनों में से कोई एक ही उन दोनों को अपना निशाना बनावे।"

"भाई, यह तो बड़ी कठिन बात है। जब दोनों एक ही लक्ष्य में आवें तब तो यह संभव है।"

"हां, दोनों मोम्बाओं के सिर जब बन्दूक की सीध में आवें, तब बन्दूक चलावें, इससे दोनों एक ही बार में मारे जा सकते हैं।"

"इसमें बहुत देर तक प्रतीक्षा करना पड़ेगा। वे दोनों झूम रहे हैं। न जाने कब उनके झूमते हुए सिर एक सीध में आयेंगे?"

"हां, वे केवल निमिष मात्र के लिए आ सकते हैं, और उसी क्षण का उपयोग करना चाहिए।"

"मुझसे यह नहीं होने का। तुम ही निशाना साधो। किन्तु एक कठिनता और है।"

"वह क्या?"

"कान्ति जी की सुरक्षा का भी ध्यान रखना होगा। मोम्बा और कान्ति जी दोनो इतने निकट हैं, कि उसको बचाते हुए मोम्बाओं को मारना है।"

"निश्चय ही ऐसा करना होगा।"

"तब भाई, तुम ही यह खतरा उठाओ। मेरे मन की अवस्था विकृत है। आशका से मेरे हाथ निशाना साधते हुए काँप भी सकते हैं। यदि बाल बराबर भी हाथ काँप गया तो महा अनर्थ घटित हो सकता है। हां, क्या कान्ति जी को सतर्क नहीं किया जा सकता?"

"अभी कान्ति जी का ध्यान वायलिन बजाने में संलग्न है, क्योंकि उसी के द्वारा वे अपनी रक्षा कर रही हैं। मोम्बा भी उसके स्वर में विमोहित होकर झूम

रहें हैं। यदि हम कान्ति जी को इशारा करते हैं, या शब्द द्वारा हम सावधान करते हैं, तब यह तन्मयता अवश्य विलुप्त हो जायगी। जिस अदृश्य सूक्ष्म-शक्ति से दोनों बँधे हुए अपने बीच का व्यवधान बनाए हुए है, उसमें किसी बाहरी शक्ति के द्वारा बाधा उपस्थित करने से वह व्यवधान टूट जायगा, और संभव है कि दोनों ही उस पर आक्रमण कर बैठे।"

"बड़ी मुश्किल है, चारों तरफ से खतरा ही खतरा है। मेरी बुद्धि तो मारी गई हैं। तुम सतर्क हो। आओ तुम ही निशाना साधो।"

"अब तो दो मूठ का सौदा है, या इस पार, या उस पार। या तो कान्ति जी के साथ हम दोनो की रक्षा होती है, या हम तीनों ही मरते हैं, क्योंकि निशाना चूकने पर वे दोनों हमको भी जीवित नही छोड़ेगे। बदला चुकाना ये अच्छी तरह जानते हैं।"

"अच्छा, तुम इस खिड़की से निशाना साधो, और मैं द्वार को लक्ष्य बनाता हूँ, यदि उनमें से कोई बाहर आता है तब मैं उसका बेध करूँगा।"

"हां, यह ठीक है। तुम सतर्क रहना। मै निशाना साधता हूँ। जैसी भगवान की इच्छा होगी वैसा होगा।"

कहते हुए विश्वनाथ खिड़की से बाहर शिकारी की भांति छिपकर दोनों मोम्बाओं के झूमते हुए फनों को एक सीध में आने की प्रतीक्षा करने लगे। भीतर कान्ति तन्मयता से वायलिन बजाने में संलग्न थी और उसको किसी बात का ध्यान नहीं था। मोम्बा दम्पती केवल वायलिन का स्वर सुनने में विभोर थे, और बार-बार लहराते हुए झूमते थे। उन दोनों की एकाग्रता ने सूक्ष्म तत्व को उनके स्थूल आवरणों के ऊपर प्रतिष्ठित कर दिया था जिससे उनकी विरोधी भावनाएँ दब गई थी, और मोम्बा स्वरों में बँधे हुए, लोकोत्तर आनन्द का रस लेने में विभोर थे। झूमते हुए उनके फैले फन, विश्वनाथ की बन्दूक के लक्ष्य में आते न थे, और वे भी प्रयास करते हुए एकाग्र चित्त हो रहे थे। उसी भाति थोड़ी दूर खड़े हुए सुरेशचन्द्र भी अनिमेष दृष्टि से द्वार को अपना लक्ष्य बनाए हुए थे।

विश्वनाथ भी जब इतने एकाग्रमन हो गए कि उनको बाह्य वातावरण का ध्यान किञ्चित मात्र नहीं रहा, और उनकी दृष्टि के सन्मुख केवल उनके फैले हुए फन रह गए, तब निमिष मात्र के लिए उन्हें ऐसा बोध हुआ कि दोनों सर्पों के फन एक सीध में है, उनकी तर्जनी ने स्वतः बन्दूक का पहला घोड़ा दबा दिया। एक भयानक धड़ाका हुआ जैसा सहसा बम विस्फोट से होता है, और उसके साथ ही दोनों मोम्बों के फन उनके धड़ों से विछिन्न होकर भीत में टकरा कर तड़पने लगे। उधर कान्ति की तन्मयता भंग होने के पहले ही एक मोम्बा का सिर-विहीन धड़ तड़पा, और उसके शरीर से चक्राकार लिपट गया इस प्रकार कि उसके ओष्ठों से उसके रक्त रंजित धड़ का अग्रभाग टकरा गया। कान्ति के मुख से केवल एक चीख निकल पाई और वह निर्जीव मोम्बा के धड़ से लिपटी हुई अचेत होकर दूसरे मोम्बा के छटपटाते हुए धड़ के पास सोफा पर गिर पड़ी। यह सब पल मात्र में घटित हो गया। विश्वनाथ और सुरेशचन्द्र उसी क्षण तड़प कर एक ही छलाँग में कमरे के अन्दर प्रविष्ट हो गए, और दोनों ने कान्ति को पकड़ कर शैया पर लेटा दिया, यद्यपि एक मोम्बा का धड़ उसी भांति अब भी लिपटा हुआ था। बन्दूक के शब्द ने डाक बँगले के सभी व्यक्तियों को जगा दिया, और डाक्टर आनन्द तथा गोमाको, सुहासिनी और कोमियाटा प्रक्षिप्तों की भाँति दौड़ते हुए कान्ति के कमरे में प्रकाश देख कर वहां आ गए। वहाँ का दृश्य देखकर सभी विस्फारित नेत्रों से मूक प्राणियों की भांति चित्र लिखित से स्थिर रह गए।

विश्वनाथ ने सुहासिनी को लक्ष्य कर भरभराए हुए स्वर में कहा—"जरा कान्ति जी को पकड़ कर घुमाती जाओ, तो मैं उसके शरीर से इस लिपटे हुए मोम्बा के धड़ को प्रथक करूँ। आप लोग घबड़ाइए नहीं। भगवान की कृपा से कान्ति जी की बाल-बाल रक्षा हुई है, किसी प्रकार का कोई अनिष्ट नहीं हुआ, केवल मरे हुए सांप का धड़ बदला लेने के प्रयत्न में उसके शरीर से लिपट गया है, किन्तु शिर विहीन होने से वह डसने में असमर्थ था। भय की चरम उत्तेजना से वह केवल अचेत हो गई हैं।"

डाक्टर गोमाको ने आगे बढ़ते हुए कहा—"देखिए कहीं हृदय की धड़कन तो बन्द नहीं हो गई ?"

"नहीं, स्वाँस बराबर चल रही है। वे केवल अचेत हैं।"

सुहासिनी की घिग्घी बँध गई थी। सर्प की पूँछ पकड़ने के लिए विश्वनाथ और सुरेशचन्द्र आगे बढ़े।

विश्वनाथ ने पुनः सुहासिनी से कान्ति को पकड़ कर घुमाने का संकेत किया, किन्तु अपने स्थान से हिलने तक की संज्ञा उसमें न थी। डाक्टर आनन्द और गोमाको ने वह कार्य-भार संभालने का विचार किया। इसी बीच कोमियाटा सब के आगे आ गया और विश्वनाथ के हाथ से सर्प की पूँछ पकड़ते हुए किञ्चित आदेश की कठोरता से कहा—"आप मोम्बा की पूँछ छोड़ दीजिये। अभी तक इसकी प्रेतात्मा इससे प्रथक नहीं हुई है। आप सब लोग कमरे के बाहर चले जाइए। दोनों सर्पों की प्रेतात्माओं को स्वच्छन्दता से वायु मंडल में मिलने के लिए मार्ग दीजिए। केवल मैं यहां रह कर कान्ति बाई को देह से इस लिपटे हुए सांप के धड़ को अलग कर दूँगा। जाइए, आप लोग तुरन्त कमरे से बाहर जाइए।"

कोमियाटा के स्वर में आज तक ऐसी कठोरता किसी ने न देखा और न सुना था। सब चकित होकर उसकी ओर देखने लगे, किन्तु वह किसी प्रकार विचलित न होकर उन सब को बाहर जाने का आदेश पर आदेश देने लगा। डाक्टर आनन्द ने सब को उसका आदेश पालने का संकेत किया, और सब विमोहित कमरे के बाहर चले गए। उनके जाने के पश्चात् केवल कोमियाटा कान्ति के अचेत शरीर को घुमा-घुमाकर मोम्बा का शव प्रथक करने लगा।

— ८ —

सूर्य की प्रथम किरण निकलने के साथ कान्ति की चेतना सजग हुई। उसने विस्फारित नेत्रों से चारो ओर देखा। डाक्टर आनन्द और सुहासिनी, जो उसकी परिचर्या कर रहे थे, कुछ आश्वस्त हुए। सुहासिनी ने उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए पूछा—"अब कैसी तबियत है, कान्ति बहिन।"

कान्ति ने उसकी ओर इस भाँति देखा, जैसे उसने कुछ सुना या समझा न हो। सुहासिनी कुछ हताश हो कर अपने पिता की ओर देखने लगी।

डाक्टर आनन्द ने भ्रू-कुञ्चित करते हुए कहा—"मालूम होता है कि अभी तक पूरी तरह होश नहीं आया है।"

कान्ति उसी भाँति शून्य दृष्टि से उनकी ओर देख रही थी।

डाक्टर आनन्द ने उसकी नाड़ी-परीक्षण के लिए उसका हाथ पकड़ने की चेष्टा की, और जैसे ही उसका हाथ उनके हाथ से स्पर्श हुआ, उसने उसे झटक दिया, और क्रुद्ध दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी। सुहासिनी को दूध लाने का आदेश देकर वे उसके समीप कुर्सी पर बैठ विचारों में डूब गए। कान्ति बार-बार अपने नेत्रों को इधर उधर फिराती हुई, उनको क्रुद्ध दृष्टि से देख रही थी।

सुहासिनी गरम दूध का प्याला ले आई, और अपने पिता से पूछा—"इस समय दूध पिलाने से कोई हानि तो नहीं होगी?"

"नहीं, वरन् लाभ होने की संभावना अधिक है। मस्तिष्क पर अत्यन्त भार पड़ा है, जिससे उसके अंग प्रत्यंग शिथिल और व्याकुल हो गए हैं। गरम दूध से स्फूर्ति उत्पन्न होगी, और थोड़ी देर में पूर्ण चेतना आ जायगी।"

सुहासिनी उसके समीप शय्या पर बैठ गई, और उसको उठाने के उद्देश्य से उसके गले के नीचे हाथ डालने लगी, किन्तु जहाँ उसका हाथ उसके शरीर से छू गया, वह चपक उठी और उसकी ओर सक्रोध देखने लगी। सुहासिनी भयभीत होकर पीछे हट गई।

डाक्टर आनन्द ने प्याले के दूध को चम्मच से ओसाते हुए कहा—"बेटी थोड़ा सा गरम-गरम दूध पी लो। तुम्हें आराम मिलेगा।"

दूध की ओर सतृष्ण नेत्रों से देखते हुए, वह उठ बैठी। उन्होंने प्याला उसके मुँह से लगा दिया। जिह्वा निकाल-निकाल कर वह उसे पीने लगी। जब तक दूध प्याले में रहा वह बराबर उसी भाँति पीती रही; दूध जब समाप्त हो गया तो उसने आकुल दृष्टि से उनकी ओर देखा। डाक्टर आनन्द ने उसका तात्पर्य समझकर सुहासिनी से और दूध लाने का संकेत किया, किन्तु उसको जाना न पड़ा। द्वार पर कोलियाटा दूध भरा गिलास लिए खड़ा था, उसने तुरन्त आगे बढ़कर प्याला भर दिया। कान्ति उसको पुन: अपनी जीभ के द्वारा पीने लगी। कोलियाटा बड़े ध्यान से उसकी चेष्टाएँ निरख रहा था। दूध पीकर कान्ति शय्या पर इस भाँति लेट गई मानों गिर पड़ी हो। उसके नेत्र पुनः बन्द हो गए। थोड़ी ही देर में उसके विश्वासों की प्रगति सुप्त मनुष्य की भाँति हो गई। सुहासिनी भयाकुल और डाक्टर आनन्द विस्मित दृष्टि से उसकी ओर देख रहे थे।

कोलियाटा ने निस्तब्धता क ते हुए कहा—"प्रभू, अब कान्ति बाई सो गई हैं। अब आप और बाई साहब दोनों बाहर आ जावें। लगभग तीन-चार घंटे बाद इनकी नींद टूटेगी। यहाँ बैठने से कोई लाभ नहीं है। मैं बराबर इनकी खबर लेता रहूँगा।"

डाक्टर आनन्द ने उसका समर्थन करते हुए कहा—"लक्षणों से तो यही प्रतीत होता है। यह अति उत्तम चिह्न है। मस्तिष्क आराम से मस्तिष्क की विकृतावस्था दूर हो जायगी, और विचार संयत हो जायँगे।"

"किन्तु पापा, कान्ति को होश तो आ गया था?"

प्राय: ऐसा होता है जब मस्तिष्क शारीरिक वेगों से परिचलित होकर उन वेगों को शान्त करने के लिए काम करता है, यद्यपि पूरा-पूरा ज्ञान नहीं आता। इस समय कान्ति कुछ ऐसी ही अवस्था में है। विश्राम से ज्ञान अपनी पुरानी संयत अवस्था में आ जायगा।

"किन्तु पापा, वह तो विचित्र प्रकार से दूध पी रही थी। साधारणत: रूप से मनुष्य इस भाँति तो दूध नहीं पिया करता।"

"हाँ, इसका रहस्य कुछ समझ में नहीं आया ? हो सकता है कि उसके मुख की कोई नस अत्यधिक उत्तेजना से पंगु हो गई है, और दूध पीने के लिए उसे जीभ से सहारा लेना पड़ा हो।"

कोलियाटा उनका आलाप सुन रहा था, उसने कुछ कहा तो नहीं, किन्तु कमरे से उनके जाने के पश्चात् वह मन्द-मन्द मुस्कराने लगा।

विश्वनाथ सुरेशचन्द्र और डाक्टर गोमाको, जो डाक्टर आनन्द के स्नेहानुरोध से सोने चले गए थे, उठकर चाय की मेज पर बैठे हुए विगत रात्रि की घटना की मीमांसा कर रहे थे। डाक्टर गोमाको कह रहे थे—"यह ईश्वर की कृपा ही थी कि आप लोग ठीक समय पर पहुँच गए, नहीं तो महा-अनर्थ हो जाता, और हम लोग कहीं मुँह दिखाने योग्य न रहते।

सुरेशचन्द्र ने जम्हाई लेते हुए कहा—"भाई, कल शाम से ही न जाने क्यों मेरा मन बड़ा व्याकुल था। एक प्रकार की अव्यक्त आशंका से मेरा मन बार-बार कांप उठता था। किन्तु यह मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सका था कि विपत्ति इस प्रकार और इस रूप में आएगी। मैं यही विचारता था कि मेरी छुट्टी समाप्त होने वाली है, और यहाँ आप लोगों से बिछुड़ने की आशंका से मेरी यह विकलता है। रात को नींद न आई इसीलिए मैंने विश्वनाथ को बुलाया। वे मुझे जागते हुए मिले। उनसे घूम-फिर आने का प्रस्ताव किया। वे सहर्ष सहमत हो गए, और हम दोनों झील पर चाँदनी का दृश्य देखने को निकल गए। क्यों भाई विश्वनाथ ?"

"भाई सच बात तो यह है कि मैं कल प्रातःकाल से ही बड़ा उद्विग्न था। कल पूर्णिमा थी, इसका विचार बारम्बार मेरे मन में आता था, और तीन महीने पूर्व देखी हुई मोम्बों की पूजा का दृश्य मेरी आंखों के सामने आ जाता था। मुझे ऐसा कई बार भ्रम हुआ कि कोई सांप जैसी चीज सर-सराती हुई एक ओर से निकली और दूसरी ओर चली गई। मैंने कई बार उचक कर

देखने की चेष्टा की, किन्तु वहीं कुछ दिखाई न पड़ता था। एक आध-बार छान-बीन भी की, किन्तु कुछ दिखाई न दिया। विचारों का भ्रम समझ कर चुप हो जाना पड़ा।"

"किन्तु कल तुमने यह बात मुझे नहीं बताई, यद्यपि हम दोनो एकान्त में भी बहुत देर तक रहे थे।"

"बताता कैसे? जब कुछ स्पष्ट रूप से देखा या सुना होता तो कुछ बताता भी, किन्तु मैं तो अपना भ्रम ही समझता रहा। जब तुमने रात्रि की छटा देखने का निमंत्रण दिया, तब मैंने तुम्हारा प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार किया, किन्तु उस समय भी मैं किसी न किसी विपत्ति की आशंका कर रहा था, इसीलिए तुम से बन्दूक साथ ले चलने का अनुरोध किया था। तुम चांदनी का नृत्य देखने में विभोर थे, और मैं चुपचाप बैठा हुआ अपने मन की आशंका से मुक्ति पाने का प्रयत्न कर रहा था।"

"अरे भाई, सत्य पूछो, तो मैं चाँदनी वाँदनी कुछ नहीं देख रहा था। मैं भी गुमसुम बैठा हुआ अपने भयाकुल विचारों से संघर्ष कर रहा था। किन्तु मेरा मन बार-बार अपनी कर्त्तव्य-अवहेलना की ओर जा रहा था, क्योंकि साधारण नियमों के अनुसार कप्तान अपने जहाज को छोड़कर कहीं नहीं जा सकता। यद्यपि अपने सहकारी को मैं जहाज का भार दे आया था, किन्तु वह नियमों से प्रतिकूल है। यदि मेरी अनुपस्थिति में कोई दुर्घटना हो जाती है तो मैं ही उसके लिए उत्तरदायी ठहराया जाऊँगा।"

"जब ऐसी बात थी तो फिर तुम क्यों आए?"

"तुम्हारा और डाक्टर आनन्द का स्नेह घसीट लाया। निरन्तर समुद्र यात्रा से मन भी ऊब गया था, और वह कुछ परिवर्त्तन माँग रहा था।"

"किन्तु यदि तुम मोम्बासा में यह बात बता देते, मैं कदापि तुम्हें नैरोबी और विक्टोरिया झील देखने के लिए न ले आता। मोम्बासा में ठहरने की पूरी सुविधा थी। वहाँ रहते हुए हमारे साथ भी तुम अपने दिन व्यतीत कर सकते, और अपने जहाज से दूर भी न रहते। भाई तुमने बड़ी भूल की।

आशा है कि भगवान् सब की रक्षा करेंगे, किन्तु तोभी मन में कर्त्तव्य की अवहेलना करने से ग्लानि तो उत्पन्न होती है।"

"हाँ, ग्लानि लो मन में है ही।" फिर उनके कान के समीप अति धीमें स्वर में कहा—"तुम्हारे और कान्ति जी के प्रेम सम्बन्ध में जानने सुनने का लोभ भी तो था।"

"ऐसी अवस्था में भी तुम्हें परिहास सूझता है, हो तुम बड़े जीवट।"

"जहाज के कप्तान को जीवट होना ही पड़ता है। समुद्र क्या है—मृत्यु का साकार रूप। उसके वक्ष को विदीर्ण करता हुआ मेरा जहाज इस छोर से उस छोर तक आता जाता रहता है। मृत्यु का दूसरा साकार रूप झंझा है, जो अपने बन्धुसागर का बल पाकर प्रायः आक्रमण किया करता है। जब तुम बम्बई से आ रहे थे, तब तुमको भी उन दोनों से सामना करना पड़ा था। भूल गए क्या?"

"नहीं भूला तो नहीं हूँ, किन्तु इतना होते हुए भी मैं कर्त्तव्य की अवहेलना कभी नहीं कर सकता।"

इसी समय डाक्टर आनन्द और सुहासिनी ने कमरे में प्रवेश किया। उन दोनों का मुख उतरा हुआ था।

विश्वनाथ ने सशंकित स्वर से पूछा—"पिता जी, कान्ति जी को होश आया?"

डाक्टर आनन्द और सुहासिनी एक ओर कुर्सियों पर बैठ गए। सुहासिनी अपने पिता की अपेक्षा अधिक मलीन थी। सब की दृष्टियाँ उसकी ओर टँगी हुई थी।

डाक्टर आनन्द ने एक गहरी साँस लेकर कहा—"हाँ, कान्ति को होश आ गया है, और दो प्याले दूध भी पिया है किन्तु दूध पीते ही उसे नींद आ गई और···। कहते-कहते डाक्टर आनन्द रुक गए।"

"और, क्या, पिता जी? क्या कोई आशंका की बात है?"

"अभी तो ठीक से कुछ नहीं कह सकता। होश में आने पर उनकी चेष्टाएँ कुछ असाधारण थी।"

"चेष्टाएँ कैसे असाधारण थी।" प्राय: सबों का यही प्रश्न था।

"असाधारण इस प्रकार, कि उसने होश में आने पर न मुझको और न सुहास को पहचाना, और वह बड़ी कुपित दृष्टि से हम लोगों को देख रही थी जैसे हम लोग उसके घोर शत्रु हों।"

"और पापा, यह भी बताइए कि उसने दूध मनुष्यों की भाँति नहीं पिया—साँपों की भाँति अपनी जीभ से पिया।"

"अच्छा,।" कह कर सभी विस्फारित दृष्टि से सुहासिनी और डाक्टर आनन्द की ओर पुनर्समर्थन के लिए देखने लगे।

हाँ, सुहास ठीक कह रही है। वह जीभ से चाट-चाटकर दूध पी रही थी, अपने ओठों से उसने काम नहीं लिया, जैसे हम लोग लेते हैं?"

"यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।"

"यह भी सभव है कि चरम उत्तेजना से उसकी कोई नस विकृत हो गई हो।"

इसी समय कोलियाटा ने कमरे प्रवेश करके कहा—"प्रभु लोग क्षमा कीजिएगा, मेरा ऐसा अनुमान नहीं है।"

"तुम्हारा क्या अनुमान हैं?" सबका प्रश्न एक साथ हुआ।

"अभी ठीक से नहीं कह सकता, किन्तु मुझे सन्देह है कि मोम्बा की प्रेतात्मा कान्तिबाई में उलझ गई है।"

"क्या, मोम्बा की प्रेतात्मा, कान्ति जी में उलझ गई है?" सबके प्रश्नों का सार यही था।

यह कहकर वह कमरे के बाहर चला गया। अन्य लोग बैठे हुए एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

— ९ —

मध्याह्न के लगभग कान्ति की निद्रा टूटी। उसने जहाँ आँखें खोली, सबके नेत्र उस पर स्थिर हो गए। सबको अपनी ओर अपलक देखते हुए वह हड़बड़ा कर उठ बैठी पलङ्ग मे उतरते हुए कहा—"आप लोग यहाँ क्यों इकट्ठे हैं।" फिर दक्षिणवातायन से सूर्य के प्रखर प्रकाश को देख कर कहा - "मैं आज बहुत देर तक सोती रही। क्या बात है? क्या मैं बीमार हो गई? नहीं, मुझे तो कोई बीमार नहीं मालूम हाती, हाँ, शिर में थोड़ा सा हल्का दर्द है। क्यों सुहास दीदी, बताओ क्या बात है?"

सुहास कुछ कहने जा रही थी कि डाक्टर आनन्द ने हँसकर कहा—"कोई खास बात नहीं है बेटी। तुम सो रही थी, और हम लोगों ने तुम्हें जगाना आवश्यक नहीं समझा। प्रायः अवसाद और क्लान्ति से गहरी नींद आ जाती है। कुछ अधिक देर तक सोती रही, इससे सिर में पीड़ा है। मुँह-हाथ धोओ, सब ठीक हो जायगा।"

यह कह कर उन्होंने कान्ति की दृष्टि बचाकर सबको जाने का संकेत किया सब लोग प्रसन्न हृदय से चले गए, केवल सुहासिनी और डाक्टर आनन्द रह गए। सुहासिनी उसके पलंग पर उसके समीप बैठ गई, और डाक्टर आनन्द वैसे ही खड़े रहे।

कान्ति ने पुनः एक जम्हाई लेते हुए कहा—"पिताजी, आप खड़े क्यों हैं, कुर्सी पर बैठिए। अरे यह तो मेरा कमरा नहीं है, सुहास दीदी का है। मैं यहाँ कैसे आई?"

डाक्टर आनन्द ने बैठते हुए कहा—"शायद तुम भूल गई, तुम कल सुहास से बातें करते-करते यहीं तो सो गई थी।"

"नहीं पिताजी मुझे अच्छी तरह याद है कि मैं अपने कमरे चली गई थी।·क्यों सुहास दीदी तुम तो मुझे वहाँ तक पहुँचाने भी गई थी।"

सुहासिनी ने अपने पिता का अभिप्राय समझ लिया था कि गतरात्रि की दुर्घटना की कोई बात उसे न बताई जाय। उसने हँसकर कहा—"हाँ, पहले तुमको तुम्हारे कमरे तक पहुँचाने अवश्य गई थी, लेकिन फिर जब अकेले मेरा मन नहीं लगा, तब तुमको बुला लाई थी, और बड़ी देर तक हम दोनों बातें करती रहीं। बातें करते-करते तुम यहीं मेरे पलंग पर उढ़क गई और सो गई। तुमको गहरी नींद में देखकर मैंने तुम्हें जगाना उचित नहीं समझा, और मैं भी तुम्हारे बगल में सो गई।"

"यह मुझे बिल्कुल याद नहीं है। एक भयंकर सपने की अवश्य याद आ रही है।"

"हाँ, तुम सोते-सोते कई बार चौंकी और बड़बड़ाई भी थी। एक बार तो चिल्ला भी उठी थी। उस तुम्हारी चीख से मैं भी जाग पड़ी थी, तुम्हें बहुत जगाने की कोशिश भी की, लेकिन तुम जागी नहीं, तब मैं फिर सो गई।"

"उस सपने को देखते हुए, मै जरूर चीखी होऊँगी। दीदी वह स्वप्न ही ऐसा डरावना था। अभी भी उसकी याद ताजी है, और मेरे रोंगटें खड़े हो रहे हैं।"

"उसे याद करने से कोई लाभ नहीं। स्वप्न तो प्रायः ऐसे ही होते हैं, कभी अच्छे खुशी पैदा करने वाले, और कभी भयानक और बुरे, किन्तु इन पर ध्यान कभी नहीं देना चाहिए।" तुलसीदास जी का वह दोहा तुम्हें मालूम होगा "सपने होंहिं भिखारि नृप, रंक नाकपति होंइ। जागे, लाभ न हानि कछु-तम प्रपंच जग जोइ।"

"किन्तु पिताजी, वह बड़ा भयानक था। उसकी याद मिटती नहीं।"

"बेटी, स्वप्न वस्तुतः कुछ नहीं है। उनकी उत्पत्ति के कई कारण हैं किन्तु विशेष यह है कि जब हम जाग्रत अवस्था में सोचते हैं, तो सजग होने के कारण मस्तिष्क अपना विचार कार्य करता है, और उसका कोई चित्र नहीं बनता। किन्तु जब मस्तिष्क सोचने का काम निद्रावस्था में करता है तब सुप्त नेत्रों के अन्तर्पृष्ठ में विचारों के चित्र बन जाते हैं, और तब वही स्वप्न कहे जाते हैं।

उनको देखने वाला मन होता है। मन के विचार यदि अच्छे हुए तो अच्छे स्वप्न देखने में आते हैं, यदि बुरे या डरावने हुए तो उसी के अनुरूप चित्र दिखाई पड़ते हैं। मेरा अनुमान है कि कल तुमने अफ्रीका के आदिम निवासियों के सम्बन्ध में स्वप्न देखे होंगे, क्योंकि डाक्टर गोमाको और कोलियाटा कल संध्या समय उन्हीं के वेष में नाच-गा रहे थे।"

"यदि स्वप्न ही हैं तो पिताजी मैंने आदमियों के नहीं केनिया के महा विषधर सर्प-मोम्बा से सम्बन्धित स्वप्न देखा है।"

"हाँ, हाँ, यह भी होसकता है, क्योंकि कल संध्या के उत्सव में उनकी भी चर्चा चल पड़ी थी।"

"हाँ, पापा, सुरेश बाबू उनकी पूजा का दृश्य देखने के लिए उत्सुक थे, और मुझे याद है कान्ति बहिन तुमने कहा था कि कृपा करके मोम्बा और उसकी पूजा के विषय में बातें न कीजिए। मुझे उनके नाम से ही भय लगता है। अब मैं मारे भय के कहीं बाहर घूमने-फिरने के लिए नहीं जा सकती। क्या याद है न ?" सुहासिनी ने सप्रेम कहा।

"हाँ, मुझे अच्छी तरह याद है।"

"मोम्बा के सम्बन्ध में बड़ी देर तक बातचीत हुई थी, उसी का कुछ प्रभाव तुम्हारे मस्तिष्क में रह गया होगा। संभव है कि तुम नींद में भी उन्हीं के सम्बन्ध में सोचने लगी हो, और इस प्रकार उनसे सम्बन्धित चित्र तुम्हारे विचारों की पृष्ठ भूमि में स्वप्नों की अवतारणा करने लगे हों।"

"शायद ऐसी ही बात हो, किन्तु पिता जी वे बातें तो इतनी स्पष्ट थी कि उन्हें स्वप्न कैसे मानूँ ?"

"अरे बेटी प्रायः ऐसा ही होता है जब स्वप्न बिल्कुल सत्य घटना प्रतीत होते हैं, क्योंकि उन स्वप्नों का प्रभाव मस्तिष्क पर विशेष रूप से पड़ता है।"

"क्या बताऊँ, मेरी बुद्धि कुछ काम नहीं करती।"

"इस पर विशेष ध्यान देने से तुम्हारे मन का भय दूर नहीं होगा। इस

समय चूँकि तुम अभी सोकर उठी हो, इसलिए उनकी स्मृति ताजी है। उस स्वप्न की बहुत बातें अभी तुम्हें याद होगी, किन्तु कल उनकी आधी बातें भी याद नहीं रहेगी, और परसों या नरसों बिल्कुल ही याद न रहेगी।"

"आगे चाहे जो कुछ हो, परन्तु इस समय तो मेरे मन की बुरी दशा है।"

"बताया नहीं, कि अभी सोकर उठने से कुछ-कुछ बातें याद होगी। सुहास, जाओ, कान्ति के लिए चाय ले आओ।"

"पिता जी, अभी तो मुँह भी नहीं धोया। अरे दोपहर हो गई और, अब तक मैं सोती ही रही।"

"क्या हुआ, जीवन में एक-आध बार ऐसी ही गहरी नींद आ जाया करती है। जब कुछ दिनों तक लगातार पूरी तरह सोने को नहीं मिलता, तब एक दिन बहुत देर तक सुलाकर नींद अपनी कमी पूरी कर लेती है। मेरे जीवन में दो-एक बार ऐसा हुआ है। यदि हममें से कोई तुम्हें समय पर जगा देता तो तुम जाग जाती, किन्तु मैंने सबको जगाने के लिए मना कर दिया था, इससे जब तुम्हारी नींद की कमी पूरी हो गई तब अपने आप जाग गई।

"पिता जी, आप तो हर एक बात का कोई न कोई कारण बता देते हैं। यद्यपि आपकी व्याख्याएँ उपयुक्त और जमने वाली होती हैं, तथापि मुझे मानसिक शान्ति नहीं मिलती। क्षमा कीजिएगा पिता जी आपकी व्याख्याएँ मेरा मन स्वीकार नहीं करता।"

"यह तो तुम्हारे मन का विराग है बेटी। तुम मुझ पर अविश्वास करती हो।"

"यह आप क्या कह रहे हैं, मुझे पाप में न डालिए। आपको पाकर तो मैंने अपने खोए हुए पिता को पाया है। ऐसा निष्कपट स्नेह पाकर कौन अपने को धन्य नहीं मानेगा। मुझे दृढ़ विश्वास है कि आप मुझसे छल-कपट नहीं कर सकते, और न मुझे व्यर्थ भरमा ही सकते हैं, किन्तु जो कुछ गत रात्रि को

मेरे ऊपर बीता है, उसे मेरा मन स्वप्न स्वीकार नहीं करता। क्या स्वप्न इतना स्पष्ट, इतना सजग, इतना सत्य हो सकता है, और क्या उसका प्रभाव इतना व्यापक हो सकता है? जीवन में प्रायः नित्य ही मैं स्वप्न देखा करती हूँ, किन्तु इतना गहरा प्रभाव तो आज तक किसी का नहीं पड़ा है।"

"अच्छा, पहले तुम एक प्याला चाय पी लो, फिर अपना स्वप्न बताओ। जब अभी तुम सोकर उठी हो, तब तुमने स्वप्न नहीं देखा, तो क्या वस्तुतः तुम घर के बाहर गई थी। मैं ही नहीं, सभी लोग कह देंगे कि तुम अभी तक नींद में अचेत पड़ी रही। हाँ, हम लोग अवश्य तुम्हारे जागने की प्रतीक्षा करते रहे, जगाया नहीं। इसी से तुम्हारे मन में यह शंका बैठ गई है कि अवश्य कोई अनहोनी बात हुई है।"

"हाँ, पिता जी वह अनहोनी ही घटना थी, जिसे मैंने प्रत्यक्ष देखा था, संघर्ष किया था।"

"अच्छा, अभी तुम्हारी घटना सुनता हूँ, पहले तुम एक प्याला चाय पीकर अपना मानसिक सन्तुलन प्राप्त कर लो। इसका तनिक भी विचार न करो कि तुमने हाथ-मुँह धोया है या नहीं। जाओ, सुहास बहुत शीघ्र चाय ले आओ। मेरा अनुमान है कोलियाटा उसे तैयार किए हमारे बुलावे की प्रतीक्षा कर रहा होगा। अच्छा, ठहरो, मैं कोलियाटा को बुलाता हूँ।"

यह कह कर उन्होंने कोलियाटा को आवाज दी। वह चाय लिए हुए द्वार पर ही खड़ा था। वह तुरन्त चाय का प्याला आनन्द को देकर जाने लगा किन्तु उन्होंने उसे रोक कर पूछा—"क्या और चाय नहीं है? अगर हो तो एक प्याला मेरे और सुहास के लिए भी लाओ।"

कोलियाटा के जाने के पश्चात् उन्होंने कान्ति की चाय का प्याला पकड़ाते हुए कहा—"लो बेटी, इसे पी जाओ। मैंने बहुत से मानसिक पीड़ा से व्यथित मनुष्यों को केवल इस साधारण उपचार से ठीक किया है।"

"तो क्या मैं रोगी हूँ?"

"शरीर से नहीं, मन की रोगी तो तुम इस समय हो, इसमें भी क्या कोई

सन्देह है। स्वस्थ शरीर वाले भी मानसिक रोगी हुआ करते हैं।"

कोलियाटा चाय की ट्रे लेकर उपस्थित हुआ। सुहासिनी अपने और अपने पिता के लिए चाय बनाने लगी। चाय पीकर कान्ति ने स्वस्थता अनुभव की डाक्टर आनन्द ने सुहासिनी को उसके लिए दूसरा प्याला देने का संकेत किया। डाक्टर आनन्द भी चाय पीने लगे, और कहा—"कहो, अब तुम अवश्य पहले की अपेक्षा स्वस्थ चित्त होगी। अपना स्वप्न भी तुम कह डालो, क्योंकि उसके न बताने से तुम मन ही मन घुटा करोगी, और इससे तुम्हें अधिक मानसिक वेदना होगी।"

चाय पीते हुए कान्ति कहने लगी—"पिता जी, मुझे स्पष्ट स्मरण है कि मैं सुहास दीदी के कमरे से सीधे अपने कमरे में गई। पहले कुछ देर तक द्वार बन्द किए लेटी रही, किन्तु नींद न आती थी। कल प्रातःकाल से मैं मन ही मन किसी आशका से डर रही थी। आप लोगों के साथ बातें करते, नृत्य गीत आदि देखते-सुनत मेरा मन साहस उचाट हो जाता था, और न मालूम क्यों बार-बार काँप उठती थी। मुझे ऐसा होता कि मानों मेरी मृत्यु बहुत समीप है, और मैं मर जाऊँगी। अपनी इस भावना से मैं जितना छुटकारा पाने का यत्न करती, उतना ही वह गले पड़ती थी। हा, मैंने इसको किसी पर व्यक्त नहीं किया, मन ही मन घुटती रही अवश्य। इसीलिए जब सुरेश बाबू ने मोम्बाओं की बात चलाई तो मुझे अति अप्रीतिकर प्रतीत हुई, और मुझे कहने के लिए बाध्य होना पड़ा कि वे इस विषय पर चर्चा न चलावें। मृत्यु का वह संकट उस समय अकेले में और सजग हो गया। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि कमरे की वायु ही मेरा गला घोंट रही है। मैंने पहले खिड़की खोली फिर जब उससे भी वायु परिष्कृत न हुई तो उठ कर दरवाजा खोल दिया। मन की घुटन अब भी दूर नहीं हो रही थी। इसलिए वायलिन बजाकर मन को संयत करना चाहा। सोफा पर बैठी मैं वायलिन बजाने में इतनी तल्लीन हो गई कि वाह्य संसार का मुझे किञ्चित ज्ञान न रह गया। बजाते-बजाते मेरी दृष्टि साहसा सामने गई तो क्या देखती हूँ दो विषधर मोम्बा मेरे सोफा से थोड़ी दूर गुँडली मारे बैठे, फनों को फैलाए झूम रहे हैं। मेरी घिग्घी बँध गई, और क्षण भर के लिए निस्तब्ध हो

गई, जहाँ वायलिन बजाना बन्द हुआ, वे दोनों मेरी ओर झपटे। मैं सोफा पर खड़ी हो गई, और मेरे मन ने कहा—"अगर अपनी रक्षा करना चाहती हो तो वायलिन बजाओ।" मैं गत-वत तो सब भूल गई, और मशीन की भांति उसे रेतने लगी। वायलिन का स्वर सुनते ही वे पुनः स्थिर होकर झूमने लगे। मैं सब सुध-बुध खोकर केवल वायलिन बजाने में तल्लीन रही। एक-एक पल मुझे वर्ष के समान बीत रहा था। मैं कब तक कितनी देर बजाती रही, नहीं जानती। मेरी दृष्टि केवल उन दोनों मोम्बाओं पर था, और वे भी मुझसे अपनी दृष्टि मिलाए झूम रहे थे। न मालूम कितनी देर में एक भयानक विस्फोट हुआ, और दोनो मोम्बाओं के सिर उड़ कर कहीं दूर गिर पड़े, और एक मोम्बा का धड़ उछल कर मेरे शरीर से लिपट गया। इसके पश्चात् मुझे कुछ याद नहीं। अभी-अभी मुझे होश आया। आप ही बताइए पिता जी, मैं इस कठोर सत्य को किस प्रकार स्वप्न समझूँ?"

उसके कथन समाप्त होते ही डाक्टर आनन्द सवेग हँस पड़े। फिर बोले—"यह स्वप्न नहीं है तो क्या है? यदि कहीं वास्तविकता होती, तो बताओ, विस्फोट किसने किया, मोम्बाओ के सिर कैसे उड़े, और फिर उन मरे हुए सर्पों के शव कैसे और कहाँ अन्तर्धान हो गए मेरे इन प्रश्नों का तुम क्या उत्तर रखती हो। हाँ, यदि कोई अलौकिक घटना वश कोई देवदूत आकाश से उतर, बम फेंक कर उन मोम्बाओं को मार कर और उनके शवों को लेकर पुनः देव लोक चला गया हो तो, दूसरी बात है। जब तक हम लोग सोए हैं कोई अन्य व्यक्ति यहाँ आया नहीं, और न अब तक कोई गया ही। विश्वनाथ हैं, सुरेशचन्द्र है, कोलियाटा है, डाक्टर गोमाको है, और मैं हूँ। यदि किसी ने तुम्हारे कथित मोम्बाओं को मारा होता, तो वह वाह-वाही के लिए तो अपना कृत्य बताता।"

कान्ति निरुत्तर हो गई। सुहासिनी को अपने पिता के तर्क कौशल पर आश्चर्य हुआ। उसको यह आशा कदापि न थी कि वे सत्य पर इतनी कुशलता से परदा डाल सकते हैं।

कान्ति ने कुछ सोच-विचार के पश्चात् कहा—"तब क्या यह सब केवल मेरा भ्रम है? क्या वह स्वप्न ही था।"

"मेरा तो ऐसा ही अनुमान है बेटी। जब स्वप्न की घटनाएँ मस्तिष्क को अत्यन्त प्रभावित कर देती हैं, तब वह सत्य घटना प्रतीत होती है। चलो उठो, मुँह हाथ धोओ, और शीघ्र तैयार हो जाओ। हम लोग एक घंटे में यहाँ से प्रस्थान कर देंगे। आज की रात्रि हम नैरोबी में बितायेंगे, यहाँ नहीं।"

"क्या आज ही हम लोगों को चलना होगा?" सुहासिनी ने पूछा।

"हाँ, सुहास, सब लोग मिलकर सामान बँधवाओ। इस स्थान को शीघ्र से शीघ्र छोड़ देने में हम सब का कल्याण है। इस स्थान का वातावरण दूषित हो गया है, संभव है उसका दूषित प्रभाव किसी अन्य पर पड़े। अभी भी कम से कम चार-पाँच घंटे दिन शेष है। उठो कान्ति बेटी, जल्दी से तैयार हो जाओ।"

विचारमग्न कान्ति धीरे-धीरे लड़खड़ाते डगों से कमरे के बाहर हो गई।

उसके जाने के पश्चात् विश्वनाथ, सुरेशचन्द्र और डाक्टर गोमाको ने प्रवेश किया। सुरेशचन्द्र ने पूछा—"क्या, चाचा जी, आपने आज ही चलने का निश्चय कर लिया?"

"हाँ, बेटा, जब कोई दुर्घटना किसी एक बाहरी स्थान पर हो जावे, तो उसको त्याग देना चाहिए। तुम्हारी भी छुट्टी समाप्त होने को है। आज नहीं तो कल चलते। जब चलना ही है तो फिर देर क्यों की जावे। देखो सब लोग सावधान रहना। एक शब्द भी इस घटना के सम्बन्ध में न निकले।"

"कान्ति जी तो अब बिल्कुल स्वस्थ मालूम होती हैं। कोलियाटा का कथन गलत निकला।"

"हाँ, इस समय तो ऐसा ही मालूम होता है, और ईश्वर की कृपा से ऐसा ही हो।"

"आपके स्वर से तो आशंका अब भी टपकती है।"

"बेटा यह ब्रह्माण्ड रहस्यमय है। पग-पग पर कोई न कोई रहस्य छिपा हुआ है। मनुष्य की बुद्धि सीमित है, हाँ उसका अनुमान और उसकी कल्पना-शक्ति असीम है, इसलिए कुछ कहा नहीं जा सकता कि कब कौन घटना हो जाय। कोलियाटा ने अपनी विचार-बुद्धि के अनुसार किसी बात का अनुमान

किया अब उस अनुमान में कितना सत्य और कितना असत्य है, इसका निर्णय हम नहीं कर सकते। जो बात सामने आ जाय, उसको हमें अपनी बुद्धि के अनुसार सुलझाने का प्रयत्न करना चाहिए।"

"ठीक है चाचा जी। यहाँ से अब चल देना ही उचित है। हमारा सबका मन भी आशंकित है। साधारण रूप से आज की रात सुख के साथ न कटती। मन का सारा उत्साह भंग हो गया है।"

"हाँ, सच्ची बात तो यही है।" डाक्टर गोमाको और विश्वनाथ ने कहा।

"तब फिर देर क्यों की जाय। नैरोबी तक पहुँचने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में पेट्रोल है। यदि हम अब भी शीघ्रता करें, तो संध्या होते-होते या कुछ देर पश्चात् नैरोबी पहुँच सकते हैं। थोड़ा ही रास्ता पथरीला और भयानक है, जिसे दिन रहते हम पार कर लेंगे। मैं तुम सब को तैयारी के लिए केवल आध घंटे का समय देता हूँ।"

"इतना बहुत है, इसके पहले ही हम तैयार हो जायँगे। हमें केवल अपने विस्तर भर बाँधना है।"

उनके जाने के पश्चात् डाक्टर आनन्द ने सुहासिनी से कहा—"सुहास, तुम बैठी हुई क्या सोच रही हो? क्या तुम्हारी चलने की इच्छा नहीं है?"

"मैं तो आप लोगों से पहले जाना चाहती हूँ। आप लोगों के विचार सुन रही थी।"

"तुम्हें ही सबसे अधिक शीघ्रता करना है। कान्ति को झट-पट कुछ खिला-पिला दो। अपने सामान की चिन्ता तुम मत करो। कोलियाटा बाँध लेगा, और कान्ति का सामान सबके पश्चात् बात की बात में बँध जायगा।"

"आप चिन्ता न कीजिए, हम दोनों बहुत जल्द तैयार हो जायँगी।" कहते हुए सुहासिनी कमरे से चली गई।

डाक्टर आनन्द ने कोलियाटा को बुलाया, और उसके आने पर पूछा—"साँपों के शवों को अब नैरोबी मत ले जाना। उनको नष्ट कर देना चाहिए। जिस पिटारी में उनको बन्द करके रखा है, उसे झील में डाल दो।"

"नहीं पिताजी, उन्हें जला देना चाहिए। हमारे देश में उनके जलाने की प्रथा है।"

"अच्छा, चुपके से ले जाकर बँगले के पीछे टोकरी समेत जला दो।"

कोलियाटा आदेश पालन करने के लिए चला गया। डाक्टर आनन्द स्वयं सुहासिनी का सामान इकट्ठा कर बाँधने लगे। देवराज उनकी सहायता करने लगा।

ठीक आध घन्टे पश्चात् सब लोग दोनों मोटरों में बैठ गए, और तीसरे पहर के आरम्भ में उन्होंने डाक बँगला छोड़ दिया। डाक बँगला पुनः शून्य वातावरण में शून्य आकाश से गत रात्रि के रहस्य को छिपाने का अनुरोध करने लगा। डाक्टर आनन्द ने निश्चिन्तता की एक गहरी साँस लेकर मन ही मन भगवान को धन्यवाद दिया।

— १० —

नैरोबी पहुँचते ही डाक्टर आनन्द ने आई हुई डाक सँभाली, उसमें से एक पत्र उनके वकील का था, जिसमें तुरन्त मोम्बासा पहुँचने का आमंत्रण था, किन्तु पत्र आए हुए दो-तीन दिन बीत गए थे, इसलिए प्रातःकाल ही जाने का वे कार्य-क्रम बनाने लगे। जब वे लोग नैरोबी पहुँचे, तब रात्रि हो गई थी, इसलिए उन्होंने कान्ति को अपने घर में रात्रि बिताने का अनुरोध किया, किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। वस्तुतः वह एकान्त में डाक्टर आनन्द की बातों और अपने मनोभावों की मीमांसा करने के लिए व्याकुल थी। उनके अबाद्य प्रमाणों के सन्मुख यद्यपि उनको निरुत्तर हो जाना पड़ा था, तथापि उसका मन यह स्वीकार न करता था कि वह सब स्वप्न था। रास्ते में वह विचार करते-करते सो गई थी, और अब वह अधिक विचार करना चाहती थी। सुहासिनी ने पहले तो अपने साथ ठहरने पर जोर दिया, किन्तु जब उसने स्पष्ट कहा कि वह एकान्त चाहती है तब उसने उसे जाने की अनुमति दे दी। कोलियाटा, जो अब

कुशल मोटर-चालक हो गया था, उसे घर छोड़ने के लिए उसके साथ गया।

मोटर से उतरते ही कान्ति त्रिप्रता के साथ अपने बँगले में प्रवेश करने वाली थी कि उसने कहा—"बाई जी, मेरी एक प्रार्थना है।"

कान्ति ठहर गई, और सुनने की प्रतीक्षा करने लगी। कोलियाटा ने कहा—"आज आप अकेली न रहती तो ठीक होता।"

कान्ति ने भ्रू कुञ्चित करते हुए पूछा—"क्यों? मैं अन्य नारियों की भाँति दुर्बल-हृदय नहीं हूँ।"

"यह बात नहीं है, फिर भी आप यहाँ अकेली रहेंगी।।"

"अकेली तो नहीं, आया है, नौकर है, चौकीदार है, माली है, चार आदमी यहाँ रहते हैं।"

"हाँ वे लोग तो हैं हीं, किन्तु कहते-कहते वह रुक गया।"

"तुम्हारा इन बातों से क्या मतलब है, साफ-साफ कहो।" उसके स्वर में कठोरता थी।

"कभी-कभी सोचता हूँ कि आपको शायद अच्छी तरह नींद न आए, क्योंकि आप दिन-भर अस्वस्थ रही हैं, इसलिए इस औषधि को यदि आप खा लेगी तो बड़े आराम से नींद आ जायगी।"

"देखूँ क्या है? कोई नशीली चीज तो नहीं है।"

"बाई जी, क्या मैं ऐसी धृष्टता कर सकता हूँ। आप मेरी सगी बहिन से भी अधिक प्रिय हैं। यह एक लता की जड़ है, जिसके खा लेने से नींद भी आती है, और किसी विषैले जन्तु का विष नहीं चढ़ता।"

"तुझको यह क्या मजाक सूझा है, कोलियाटा। मैं थकी हुई हूँ, बड़े मजे से नीद आ जायगी। तू कोई चिन्ता मत कर। इस घर में कोई डर नहीं है।"

"फिर भी इसे रख लीजिए, शायद जरूरत ही पड़ जाय। मैं पहले इसे खाकर दिखाए देता हूँ कि इससे किसी प्रकार की हानि नहीं होती।"

"नहीं, नहीं,—तुझ पर मेरा विश्वास है कि तू कोई मुझे हानि पहुँचाने

वाली वस्तु नहीं देगा। अच्छा ला, मैं लिए लेती हूँ, यदि आवश्यकता पड़ी तो खा लूँगी।"

कान्ति ने वह जड़ी लेकर अपने कोट की जेब में डाल ली। फिर पूछा—"बस, और कोई बात तो नहीं कहना।"

कोलियाटा ने मोटर में बैठते हुए कहा—"यदि आज्ञा हो तो सुबह आपको लेने के लिए आ जाऊँ।"

"नहीं, तेरे आने की कोई आवश्यकता नहीं, कल प्रातःकाल की गाड़ी से पिताजी, और सुहास दीदी तथा कप्तान सुरेशचन्द्र मोम्बासा जायँगे, मैं सीधे स्टेशन उनको विदा करने के लिए जाऊँगी। एक तो तुझे अवसर नहीं मिलेगा, और मैं व्यर्थ ही किसी को परेशान करना नहीं चाहती। अच्छा, अब तू जा।"

कोलियाटा मोटर घुमाकर बे मन चला दिया। कान्ति अपने बँगले में चली गई।

जब लौट कर कोलियाटा ने कान्ति को भेज आने की सूचना दी, तो सुहासिनी ने पूछा—"क्यों, रास्ते में कान्ति बहिन ने कुछ पूछ-ताँछ तो नहीं की?"

"उन्होंने तो कुछ नहीं पूछा, किन्तु मैंने उनसे अनुरोध किया है कि वे एक लता की जड़ खाकर सो जावें। उससे उनको अच्छी तरह नींद आ जायगी।"

"अरे तू डाक्टर कब से हो गया? कान्ति बहिन तेरी बात सुनकर अवश्य हँसी होगी।'

"जी हाँ, जब आप हँस रही हैं, तो उनका हँसना स्वाभाविक है, अफ्रीका निवासियों को सभ्य कहलाने वाली दुनिया, जाहिल समझती है न।" कहते-कहते उसका कंठस्वर कुछ कुन्ठित हो गया।

"नहीं, ऐसा हम लोग तो नहीं, समझते। हाँ, डाक्टर गोमाको यदि कोई दवा देते तो उचित था, क्योंकि उन्होंने डाक्टरी पढ़ी है।"

"हमारी इस अनोखी दुनिया में बहुत सी ऐसी बातें हैं, ऐसे रोग हैं, जिनको पश्चिमीय दुनिया न जानती है, और न जिनका उपचार कर सकती है।

कान्ति बहिन, जिस रोग से पीड़ित हुई हैं, उसका उपचार अभी पश्चिमीय संसार में नहीं मिलेगा। यहाँ का वह रोग है, और यहाँ की औषधियों से वह अच्छा होगा।"

"क्या तेरे विचार से कान्ति बहिन रोगी हैं? कल की घटना के प्रभाव से वे रुग्ण हो गई?"

"जी हाँ, मेरा तो यही विचार है कि उनके शरीर में मोम्बा की प्रेतात्मा प्रविष्ट कर गई है।"

सुहासिनी के अट्टहास ने विश्वनाथ, सुरेशचन्द्र और डाक्टर आनन्द को, जो तीनों बैठे प्रातःकाल में जाने का कार्य-क्रम बना रहे थे, वहाँ आने के लिए आमंत्रित किया। उनको देखकर सुहासिनी ने हँसते हुए कहा—"सुना पापा, आपने! हमारे कोलियाटा के विचार से कान्ति बहिन के शरीर में मोम्बा की प्रेतात्मा ने अपना घर बना लिया है। वह आज दोपहर के पश्चात् जब से जागी है, तब से ऐसा कोई लक्षण देखने को नहीं मिला। वह तो बिल्कुल स्वस्थ मालूम होती है। उसका कोई आसाधारण संदिग्ध नहीं देखा गया।"

"हाँ, कोई असाधारण बात तो देखने में नहीं आई। हाँ प्रातःकाल अवश्य उसने कुछ असाधारणता दिखाई थी, किन्तु सोकर उठने के पश्चात् वह अपनी सामान्य अवस्था में थी।"

विश्वनाथ ने हँसते हुए कहा—"कोलियाटा पागल हो गया है। भूत-प्रेत पर हम लोग विश्वास नहीं करते।"

"सुरेशचन्द्र ने कहा—"जाओ, अपना काम करो। व्यर्थ ही सबको डराते हो।"

कोलियाटा का मुख विवर्ण हो गया। उनका प्रहार केवल उसी पर नहीं उसके देश की सभ्यता और ज्ञान पर भी था।

डाक्टर आनन्द ने उसको लक्ष्य करके कहा—"नहीं, प्रेतात्माओं का अस्तित्व है, यह तो मैं भी स्वीकार करता हूँ। प्रत्येक जीवित प्राणी के दो स्वरूप होते हैं, एक स्थूल, दूसरा सूक्ष्म। स्थूल शरीर पर ही सूक्ष्म शरीर अव-

सम्मिलित रहता है, स्थूल के नष्ट होने से सूक्ष्म भी नष्ट हो जाता है।''

''आपकी बात यदि मान भी ली जाय, तो मोम्बाओं की मृत्यु के पश्चात् उसके सूक्ष्म शरीर भी नष्ट हो गए!'' सुरेशचन्द्र ने उत्तर दिया।

''सूक्ष्म शरीर नष्ट अवश्य हो जाता है, यदि कोई बाधा उत्पन्न न हो।'' कोलियाटा ने धीमे स्वर में कहा।

''यहाँ कौन सी बाधा उत्पन्न हो गई। विश्वनाथ भाई ने एक ही निशाने में दोनों मोम्बाओं के सिर उड़ा दिए। वे तुरन्त मर गए, और उनके मरते ही उनके सूक्ष्म शरीर भी मर गए, यह तो सीधी सी बात है। एक तो सूक्ष्म और स्थूल का विभेद ही विवाद पूर्ण है।''

''किन्तु यदि एक मोम्बा के धड़ की भाँति दूसरे मोम्बा का धड़ भी पृथ्वी पर पड़ा रहता तो अवश्य पहले की भाँति दूसरे का सूक्ष्म शरीर वायु में मिल-कर नष्ट हो जाता, किन्तु दूसरे मोम्बा का धड़ सिर कटने के साथ तड़प कर कान्ति जी के शरीर से इस प्रकार लिपट गया कि उसका मुख मोम्बा के कटे हुए धड़ के अग्र भाग से मिल गया। इस प्रकार पृथक् होता हुआ सूक्ष्म शरीर बजाय वायु मंडल में मिलने के कान्ति भाई के शरीर में प्रवेश कर गया।''

''भाई, क्या गजब की सूझ है! इस सूझ पर तो कोलियाटा, तुमको ही इस वर्ष का नोबुल पुरस्कार मिलना चाहिए। मेरा तो ख्याल था कि ऐसे अन्ध-विश्वासी मूढ़ जो भूत-प्रेत आदि पर विश्वास करते हैं, अफ्रीका की जंगली जातियों, में मिलेंगे, किन्तु ईसाइयों में भी वे मिलेंगे, ऐसा अनुमान नहीं किया था। कोलियाटा के विषय में मेरी बहुत उच्च धारणा हो गई थी, किन्तु अब तो मुझे अपने विचार बदलने पड़ते हैं, और इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि वह अफ्रीका की जंगली जातियों के साधारण व्यक्तियों की भाँति है।''

कोलियाटा की मुखाकृति मलीन हो गई। उसको अपनी हेय परिस्थिति का ज्ञान हुआ कि वह केवल एक साधारण भृत्य मात्र है। डाक्टर आनन्द के व्यवहार, प्रेम, स्नेह और आदर में डूबकर वह सबको अपना स्वजन तथा आत्मीय मानने लगा था, किन्तु यह उसकी भूल थी। उसको प्रभुओं के बीच में

बोलना अथवा उनके कल्याण के लिए अपनी ओर से कुछ करना-धरना, केवल उपहासजनक, शायद यह उसकी अनधिकार चेष्टा है।

वह चुचपुचाए हुए नेत्रों के साथ वहां से चला गया। कमरे में निस्तब्धता छा गई।

डाक्टर आनन्द भी सुरेशचन्द्र के कथन से व्यथित हुए। वे स्वयं किसी से कटु न बोलते थे, और प्रायः किसी के प्रति कही गई कटु बातों को सुनना भी पसन्द न करते थे। ऐसे अवसरों पर वे गम्भीर हो जाते थे। विश्वनाथ ने परिस्थिति को सुधारने के आशय से कहा—"यह तो अपने-अपने विश्वास की बात है सुरेश भाई। सबको अपने-अपने विचार रखने का अधिकार है। कोलियाटा का जन्म ऐसे वातावरण में हुआ है, जहाँ इस प्रकार की बातें प्रचलित हैं। जो कुछ वह कहता है, अपने विश्वास और ज्ञान के अनुसार कहता है। अच्छा, यह तो बताओ कि अब कब तक इधर आ सकोगे। मैं तो कल मोम्बासा चल नहीं सकता। जब एक सप्ताह बराबर प्रयत्न करूँगा तब पिछला काम पूरा होगा।"

"मेरे आने का समय कोई निश्चित नहीं है। यहाँ मिश्र की ओर जाना है। अलेक्जेन्ड्रिया पहुँचते-पहुँचते एक महीना लग जायगा।"

डाक्टर आनन्द ने कहा—"मैं तुम्हारे साथ चलूँगा। मेरे वकील का पत्र आया है। मुझे अब तक मोम्बासा पहुँच जाना था, किन्तु मैं यहाँ उपस्थित न था। इसलिए कल तुम्हारे साथ चलूँगा।"

सुहासिनी ने पूछा—"और मैं? मैं भी दो-एक दिन के लिए मोम्बासा घूम आना चाहती हूँ।"

"तुम जाकर क्या करोगी? मैं दो-एक दिन में वापस आ जाऊँगा। तुम्हारे जाने से देवराज को भी ले जाना होगा। इस बार वह हरगिज न रहेगा।"

देवराज अभी तक चुपचाप सबकी बातें सुन रहा था। वह बोला—"हाँ, पापा, मैं भी चलूँगा—अपने दोस्तों से झील और झरने की बातें बताऊँगा। अकेले नहीं रहूँगा। जब दीदी जाती है, तब मैं भी चलूँगा।"

"अच्छी बात है। सुहास तुम वहाँ जाकर क्या करोगी ?"

"यहाँ की बातों से मन खिन्न हो गया है। दो-एक दिन वहां रहने से मन बहल जायगा।"

"तब चलो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। तुम्हारे साथ रहने से मुझे सुख ही मिलेगा।"

डाक्टर आनन्द चुप हो गए। थोड़ी देर के लिए फिर निस्तब्धता छा गई। उस अप्रिय प्रसग के पश्चात् सब के मन खिन्न हो गये थे। उन्मुक्त मन से कोई बात नहीं कर रहा था।

उस निस्तब्धता को भंग करते हुए सुरेशचन्द्र ने कहा—"चाचा जी, मुझे अपनी भूल पर पश्चाताप है। मुझे इतना कटु व्यंग्य नहीं कहना चाहिए था। कोलियाटा से मैं क्षमा याचना करूँगा।"

"नहीं, नहीं, क्षमा याचना की कोई आवश्यकता नहीं है। उसने पहले ही क्षमा कर दिया होगा। उसका हृदय बड़ा महान है।"

"तब भी क्या हुआ, क्षमा माँगने से ही मेरे मन को शान्ति मिलेगी।"

"वह हमारे घर का भृत्य मात्र है, सुरेश दादा।" सुहासिनी ने कहा।

"भृत्य होते हुए भी वह मनुष्य है, सुहास।" डाक्टर आनन्द ने कुछ तीव्रता से उत्तर दिया।

"किन्तु सुरेश दादा ने ऐसी कोई अनुचित बात तो नहीं कहा है, जिसके लिए क्षमा माँगना आवश्यक हो।"

बात सर्वथा उचित होते हुए भी बोलने के ढग से अनुचित हो सकती है, सुहास!"

"आपस में व्यंग्य तो बोला ही जाता है। व्यंग्य गाली नहीं है।"

"मै बहस नहीं करता, किन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि तलवार का घाव उतना गहरा नहीं होता जितना व्यंग्य का। बराबर वालों का व्यंग्य सहनीय है, व्यंग्य का उत्तर व्यंग्य से दिया जा सकता है, किन्तु अपने से छोटों के प्रति व्यंग्य वाक्य केवल घातक होता है।"

"नहीं सुहासिनी जी, चाचा जी का कथन सत्य है। क्षमा माँगना मेरा धर्म है।"

"सुरेश बेटा, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। भूल स्वीकार कर लेना ही यथेष्ट है। अच्छा, अब सब लोग सो जाओ, कल हम लोगों को प्रस्थान करना है।"

डाक्टर आनन्द का आदेश पाकर सब लोग सोने के लिए चले गए।

—११—

डाक्टर आनन्द, देवराज, सुहासिनी और सुरेशचन्द्र को मोम्बासा के लिए बिदा कर जब विश्वनाथ प्रयोगशाला पहुँचे, तो डाक्टर हाक मार्ग में मिल गए। पारस्परिक अभिवादन के पश्चात् उन्होने उनकी यात्रा तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के विषय में प्रश्न किए, जिनका उन्होंने समुचित उत्तर दिया, और जब डाक्टर आनन्द के विषय में ज्ञात हुआ कि वे मोम्बासा अपने वकील के पास गए हैं तो उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—"मैं समझता हूँ कि वे अपनी सम्पत्ति के प्रबन्ध के लिए गए हैं। मैं तुम्हें बधाई देता हूँ।"

"बधाई, आप किस बात की दे रहे हैं, डाक्टर हाक!"

"अपनी आधी सम्पत्ति तुम्हें देना चाहते हैं न। मेरा अनुमान है कि वे उसी सम्बन्ध में गए होंगे।"

"मुझे वे आधी सम्पत्ति क्यों देंगे? मुझसे तो उन्होंने कोई बात नहीं की। इसके अतिरिक्त मैं कैसे वह स्वीकार ही कर सकता हूँ।"

"वे अपनी लड़की का विवाह तुम्हारे साथ करना चाहते हैं, क्या यह भी तुमको नहीं मालूम?"

"हाँ, एक बार उन्होंने इस ओर कुछ संकेत तो किया था, किन्तु वह मुझे स्वीकार नहीं है, क्योंकि न तो मैंने इस विषय पर अभी सोचा ही है, और न उनकी लड़की सुहासिनी को मैं उस दृष्टि से देख सका हूँ। वह मेरे लिए एक स्नेहमयी बहिन के तुल्य है।"

"तब तो उस वृद्ध को बड़ी मानसिक पीड़ा होगी। वह तो मन ही मन इस विचार को पुष्ट किए हुए हैं।"

"किन्तु अब शायद वे इस विषय को कोई महत्व नहीं देते होंगे। उनकी लड़की ने शायद अपने मनोभाव उन पर व्यक्त कर दिए होंगे।"

"किन्तु तुम भारतीयों में लड़की की सहमति या असहमति पर ध्यान नहीं दिया जाता। उनको अपने पिता-माता की इच्छानुसार विवाह करना ही पड़ता है।"

"हाँ, यह प्रथा कुछ समय पहले तक थी, और अब भी किसी न किसी रूप में प्रचलित है, किन्तु नव-भारत में इसका परिहार हो रहा है। सुशिक्षित समाज में तो यह प्रथा बिल्कुल नहीं रही।"

"अगर ऐसा है, तब तो ठीक है। मिस कान्ति भी तो तुम लोगों के साथ छुट्टियाँ बिताने गई थीं।"

"जी हाँ, हम लोगों को उनके सत्संग का लाभ हुआ था।"

"वे अभी तक आईं नहीं ? क्या बात है ?"

"परसों रात से वे कुछ अस्वस्थ हैं। कल शाम को जब हम लोग वापस आए, तब वे अपने घर चली गई थीं। आज स्टेशन पर भी वे डाक्टर आनन्द को बिदा करने नहीं पहुँच सकीं। मालूम होता है कि उनकी अस्वस्थता बढ़ गई है।"

"अच्छा, इधर से जाते हुए उनको देखते जाना। यदि मेरी सहायता की कोई आवश्यकता पड़े तो मुझसे कहना। वे रहती तो अकेली हैं।"

"जी हाँ, एक प्रकार से वे अकेली रहती हैं, क्योंकि उनका कोई सम्बन्धी उनके साथ नहीं रहता। चौकीदार आदि सब हैं।"

"तब वे साधारण रूप में अकेली रहती हैं। यदि वे बीमार हों तो किसी उत्तम नर्स को भेजने का प्रबन्ध कर दूँगा। अथवा यदि उनकी इच्छा हो तो अस्पताल के सुरक्षित कक्ष में उन्हें भेजवा सकता हूँ। इस प्रयोगशाला के कर्म-चारियों के लिए पृथक् प्रबन्ध है।"

"अच्छा, मैं पूछ कर आपको उत्तर दूँगा।"

"बहुत अच्छा, धन्यवाद!" कहते हुए वे अन्यत्र चले गए।

उनके जाने के पश्चात् विश्वनाथ ने परीक्षणों की ओर ध्यान दिया, किन्तु उनका मन नहीं लगा। ज्यों-ज्यों वे अपने मन को नियंत्रित करते, त्यों-त्यों उनका मन उचाट होता। वे कान्ति के विषय में जानने के लिए विशेष रूप से उत्सुक थे। उसका स्टेशन पर न पहुँचना उन्हें खटक रहा था। साधारण रूप से वह अवश्य स्टेशन पर डाक्टर आनन्द को विदा करने आती। प्रयोगशाला में अब तक उसकी उपस्थिति बराबर रही थी—एक दिन की भी अनुपस्थिति नहीं हुई। उनका मन यही साक्षी दे रहा था कि वह रुग्ण है। किन्तु उसके घर जाने का साहस भी न होता था। जहाज की घटना अभी तक विस्मृत नहीं हुई थी। घर में उनके अतिरिक्त कोई था नहीं, जो उसकी खोज-खबर लेता। कोलियाटा को भेजने से कोई काम नहीं चलेगा। बहुत बातें उसे मालूम भी नहीं हो सकतीं। ऐसे विचारों में मग्न उनका परीक्षण चल रहा था, और उसमें कोई न कोई बात वे भूल जाते थे। ऊब कर उन्होंने परीक्षण बन्द कर देना ही उचित समझा, और डिमान्सट्रेटर को सब वस्तुओं को यथावत रखवाने का अनुरोध कर कान्ति के यहाँ जाकर उसका हाल-चाल लेना ही स्थिर किया। गैरेज से मोटर निकाल कर वे सीधे कान्ति के बंगले पहुँचे।

बँगले में सन्नाटा छाया हुआ था। वे कुछ संत्रस्त हुए, और फूलों की एक क्यारी में माली को देखकर पूछा कि मिस साहिबा क्या कर रही हैं। माली उनसे परिचित था। अभिवादन कर उसने उत्तर दिया—"वे तो अभी तक बाहर नहीं आईं, अपने कमरे में सो रही हैं। दो एक बार आया ने उन्हें जगाने की चेष्टा की, किन्तु मिस साहिबा ने घुड़क दिया, तब से वह भी डर के मारे बाहर बैठी है, और अन्दर जाने का साहस नहीं करती। अब आपके आने का समाचार सुनकर शायद वे उठें।"

कल प्रातःकाल की घटना और उसके कारण से उत्पन्न हुई परिस्थिति का स्मरण कर विश्वनाथ का मन काँपने लगा। वे शीघ्रता से बँगले के भवन में

प्रविष्ट होकर आया को ढूँढ़ने लगे । उनको आया एक कमरे में बैठी हुई मिली। उनको देखते ही वह उनके पास दौड़ी आई, और बोली—"मिस साहिबा, की तबियत अच्छी नहीं मालूम होती । कल रात को जब वे आई थी तब।बिल्कुल स्वस्थ थी, किन्तु खाना नहीं खाया, केवल दूध और दो टोस्ट खाए थे । खाकर मुझसे बोली कि "मैं थकी हुई हूँ, आराम करूँगी, और सुबह नाश्ता जल्द तैयार कर देना, क्योंकि मैं पिताजी और सुहास दीदी को बिदा करने के लिए स्टेशन जाऊँगी ।" उनका आदेश पाकर मैं अपने कमरे में सोने के लिए चली गई । प्रातःकाल जब चाय तैयार कर उन्हें जगाने गई, तो देखा कि वे सो रहीं हैं । मैं वापस चली आई, फिर आध घंटे बाद गई । उस समय भी वे सो रही थी । सोचा कि लम्बी यात्रा करके आई हैं, इसलिए कुछ देर तक सोने दूँ । आध घटे बाद फिर गई । वे अब भी सोई हुई थी । अब मुझे कुछ चिन्ता हुई । मैंने उन्हें पुकार-पुकार कर जगाने का प्रयत्न किया, किन्तु उसका कोई प्रभाव न पड़ा । इसलिए मजबूरन उनका हाथ पकड कर उनको हिलाकर जगाने की चेष्टा की, किन्तु जहाँ मेरे हाथ का स्पर्श, हुआ, वे जाग पड़ी, और बड़ी कुपित दृष्टि से मेरी ओर देखने लगी । उनकी वह दृष्टि बड़ी भयावनी थी । यद्यपि उन्होंने कुछ कहा नहीं, केवल अपनी जीभ बार-बार निकाल कर अपने ओष्ठों को चाटती रहीं, तथापि मेरे मन में एक प्रकार का भय बैठ गया, और बाहर चली आई । शायद पूरी नींद न होने से अनेक नेत्र लाल थे । फिर मै एक घंटे बाद गई, लेकिन वे उसी भाँति सोई हुई थी । भीतर जाने का साहस नहीं हुआ । अब ग्यारह बज रहा है, दो-तीन बार और देख आई हूँ, किन्तु वे उसी प्रकार सोई हुई हैं । सोच रही थी कि किसी डाक्टर को बुलाऊँ, कि आप आ गए । अब आप ही चलकर उन्हें जगाइए ।"

विश्वनाथ ज्यों-ज्यों उसकी बात सुनते थे, त्यों-त्यों उनको आशंका सत्य में परिणित हो रही थी । उनके मन में बार-बार यह प्रश्न उठ रहा था कि क्या कोई वैसी और दुर्घटना रात्रि में हुई, अथवा क्या उसने इस बार सत्य ही आज रात्रि में उस दुखद घटना का स्वप्न देखा है ?

उन्होने परिचारिका से कहा—"जाओ देख आओ कि क्या अब भी वह सो रहीं हैं ?"

उसने उत्तर दिया—"आपका जाना ही उत्तम है। वे मुझ पर पुनः कुपित हो सकती है। जब उनकी उस क्रोध पूर्ण दृष्टि का स्मरण करती हूँ, तो अब भी मेरे रोएँ खड़े होने लगते हैं। इस प्रकार तो कभी मैंने उन्हें नहीं देखा। यह आज प्रथम अवसर है जब उनकी दृष्टि में मैंने क्रोध देखा, नहीं तो दया और करुण ही सदैव उनके नेत्रों से झरा करती है।"

"ठीक है, इस समय शायद वे बीमार हैं। कमरे के अन्दर मत जाना, बाहर से ही झाँक कर देख आओ। यदि सो रही हो तो उन्हें मत जगाना, और यदि जाग गई हों तो मेरे आने की सूचना दे देना।"

"उनको जगाने की बात ही नही सोच सकती। हाँ, बाहर से झाँक कर देखे आती हूँ। प्रभू ईसामसीह की दया ही समझिए यदि वे जाग गई हों।"

भयाकुल किन्तु त्वरित पगों से वह कान्ति का समाचार लाने चली गई। विश्वनाथ अनेकानेक चिन्ताओं में मग्न होकर सोफा हर वैठ कर उसके लौटने की प्रतीक्षा करने लगें।

थोड़ी देर में उसने लौटकर प्रसन्न कण्ठ से कहा—"मिस साहिबा उठ गई है, और पलंग पर बैठी हैं। चलिए मैं चाय बनाकर आती हूँ।"

विश्वनाथ उठकर कान्ति के शयन-कक्ष की ओर गए। द्वार पर पहुँच कर पूछा—"क्या मैं आ सकता हूँ ?"

कान्ति ने अपने वस्त्रों को शीघ्रता से व्यवस्थित करते हुए अपने सहज स्वर में उत्तर दिया—आइए।"

विश्वनाथ ने कमरे के अन्दर प्रवेश किया, उन्होंने उड़ती हुई दृष्टि चारो ओर डालकर कहा—"कहिए, आपकी तबियत कैसी है ?"

"ठीक है। आज इतने सबेरे कैसे आने का कष्ट किया हाँ, आज पिता जी और सुहास दीदी मोम्बासा जा रहे हैं, शायद इसी लिए आप बुलाने आए हैं। अभी थोड़ी देर में चलती हूँ।"

कान्ति उनको मौन देख कर बोली—"आप चुप क्यों है, बोलते क्यां नहीं! क्या आप मुझे क्षमा नहीं करेंगे?"

"पहले, तुम चाय तो पी लो। इस विषय पर हम फिर कभी बात करेंगे!"

"नहीं, नहीं, अभी कहो, कि 'मैंने तुम्हें क्षमा किया।' मैं अब यहाँ नहीं रहूँगी। अकेले नहीं रह सकती? या तो तुम यहाँ रहो, या फिर मैं चलकर तुम्हारे यहाँ रहूँगी। यह व्यवधान मैं सहन करने अब असमर्थ हूँ। बोलो, मुझे अपने साथ ले चलोगे?" कहते-कहते उसके नेत्रों में न-मालूम कहाँ की चमक आ गई, और कोए लाल हो गए। उसका कंठ स्वर काँपने लगा।"

विश्वनाथ उसकी वह मूर्त्ति देखकर कुछ भयभीत हो गए। उन्हें उत्तर ढूँढे नहीं मिला।

कान्ति ने कांपते हुए स्वर में फिर कहा—"वहाँ, उतनी दूर क्यों बैठे हो। आओ मेरे पास बैठो। मैं तुमसे प्रेम करती हूँ। मेरे मन में अग्नि जल रही है। वह मुझे झुलसाए देती है। उस अग्नि की ज्वाला तुम्हारे शरीर के स्पर्श से शान्त होगी। आओ, आओ, मेरे पास आओ।"

विश्वनाथ की बुद्धि उत्तरोत्तर कान्ति के एक एक वाक्य से भ्रमित होती जा रही थी। उनको साहस न होता था कि वे उसके साथ दृष्टि मिलावें। कान्ति के नेत्रों की ज्वाला बढ़ती जा रही थी।

कान्ति ने इस बार कुछ तीव्रता के साथ कहा—"क्यों, मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं करोगे।" कहती हुई वह पलँग के नीचे उतरी। विश्वनाथ भी सोफा से उठकर खड़े हो गए।

कान्ति अपनी जिह्वा को बारम्बार प्रसारित करने, और बड़ी भयानक दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी। उसके नेत्र कोटरों में फिरकी की भाँति चक्राकार घूम रहे थे।

फुफकारती हुई वह दो-एक पग आगे बढ़ी और विकृत कंठ से बोली—"विश्वनाथ, विश्वनाथ, मैं जल रही हूँ। मेरे अंग-प्रत्यंग जले जा रहे हैं।

इन्हें स्पर्श करो। मेरे शरीर पर हाथ फेरो। इधर अपना मुख लाओ, मैं तुम्हारा अधरामृत पान करने के लिए तड़प रही हूँ। तुम्हारे अधरों के स्पर्श से मेरे होंठों की ज्वाला मिटेगी। लाओ, लाओ, अपना मुख इधर लाओ।" कहती हुई विक्षिप्त की भांति अपने दोनों हाथ फैलाए हुए वह उनको अपने हृदय से लगाने के लिए आगे बढ़ी।

इसी समय द्वार पर एक छाया दिखाई पड़ी। द्वार पर कोलियाटा स्तंभित खड़ा था। सहसा कान्ति की दृष्टि उस ओर चली गई। उसको देखते ही वह बड़े वेग से, सर्पिणी की तीव्रता से उसकी ओर झपटी। कोलियाटा विद्युत गति से हट गया, और कान्ति ने द्वार की चौखट पकड़ ली, जिससे वह गिरते-गिरते बची। कोलियाटा कमरे के भीतर आ गया था। कान्ति पलट कर फुफकारती हुई उसकी ओर दौड़ी। उसके सिर से साड़ी खिसक कर गिर गई थी, उसके नेत्रों से अग्नि निकल रही थी, उसके मुख से जीभ बारबार शीघ्रता के साथ बाहर-भीतर प्रसारित हो रही थी, मुँह से थूक छोटे-छोटे बूँदों में निकल रहा था। कोलियाटा को दोनों हाथों से पकड़ने के लिए उन्हें फैलाए उसकी ओर दौड़ी।

कोलियाटा ने चिल्ला कर कहा—"बड़े भैया, आप शीघ्र बाहर निकल जाइए। मोम्बा की प्रेतात्मा इस समय सजग है। अपनी रक्षा कीजिए। मैं इसको दौड़ा दौड़ा कर थका दूँगा। जाइए, भागिए।"

विश्वनाथ हतबुद्ध खड़े थे, मानो उन्होंने कोलियाटा की चेतावनी का एक शब्द नहीं सुना।

कोलियाटा ने फिर चिल्ला कर कहा—"बड़े भैया सुनते नहीं, बहुत जल्दी कमरे से बाहर भागो, भागो, अपने प्राण बचाओ।"

कोलियाटा आगे-आगे दौड़ रहा था, और कान्ति उसका पीछा कर रही थी। कमरे के बीचोबीच पलँग पड़ा हुआ था। दूरी रखने के लिए वह उसके चारों ओर चक्राकार घूमने लगा, इस भांति वह विश्वनाथ के समीप आ गया, और उसके समीप पहुँचते ही उसने सोफा खींचकर कान्ति के मार्ग का अवरोध करके

हुए विश्वनाथ को कसकर द्वार की ओर ढकेल दिया। कान्ति ने जहां कोलियाटा को विश्वनाथ को ढकेलते देखा, मुहूर्तमात्र वह ठहरी, और द्विगुणित वेग से बड़ी भयंकर फुफकार के साथ उसकी ओर दौड़ी। उसे सोफा नहीं दिखाई दिया, अथवा उसने इस अवरोध का कुछ विचार नहीं किया, और उस पर वह भर भरा कर गिर पड़ी। गिरते ही वह अचेत होकर स्थिर हो गई। कोलियाटा हांफता हुआ उसको कुछ देर तक देखता रहा। जब वह वैसी ही स्थर पड़ी रही, तब उसे विश्वास हो गया कि वह अचेत है।

उसने कमरे के बाहर निकल कर स्तंभित विश्वनाथ से कहा—"बड़े भैया, आज आप बाल-बाल बच गए। भगवान को धन्यवाद है कि मैं ठीक समय पर आपको ढूढ़ते-ढूढ़ते यहाँ पहुँच गया। डाक्टर हाक से मालूम हुआ कि शायद आप इधर आए हों, क्योंकि उन्होंने आपको कान्ति बाई की खोज-खबर लेने को कहा था। बाहर आपकी मोटर देख कर जान गया कि आप यहीं हैं, और आया से मालूम हुआ कि आप कान्ति बाई से बातें कर रहे हैं। उसने दूसरी बातें भी बताई, जो आज घटी हैं। मैं जब यहाँ आया तो कान्ति बाई की दशा देखते ही समझ गया कि प्रेतात्मा का पुनः दौरा हुआ है।"

विश्वनाथ ने विकलता के साथ पूछा—"अब क्या होगा कोलियाटा। कान्ति की कैसे रक्षा होगी?"

"इसका उपाय है बड़े भैया। एकान्त में इसके पास किसी पुरुष को नहीं जाना चाहिये। ऐसा मालूम होता है कि वह मोम्बा जिसकी प्रेतात्मा कान्ति बाई में प्रविष्ट हुई है, नागिन थी। यदि नर की प्रेतात्मा होती तो वह इतनी उग्र न होती, और न उसमें काम वासना ही इतनी सजग होती।"

"क्या वह बेहोश हो गई?"

"हाँ, इस समय तो अचेत है। अब घंटे-दो-घंटे में जब चेतना होगी, तब उसको इस व्यापार का कुछ स्मरण नहीं रहेगा।"

"किन्तु उसको यहाँ इस भाँति अकेले भी तो नहीं छोड़ा जा सकता।"

"मैंने तो कल ही उनसे कहा था कि वे हमारे घर में रहें, किन्तु उन्होंने

स्वीकार नहीं किया। अब उन्हें अपने साथ ले चलना चाहिए, चाहे जैसे हो।"

"किन्तु अभी तो जूली को बुलाकर उसको शय्या पर सुला दो।"

'बहुत अच्छा।" कह कर वह जूली को बुलाने चला गया। विश्वनाथ बरामदे में खड़े-खड़े विचार करने लगे।

— १२ —

बँगले की बरसाती के अन्दर एक मोटर आकर खड़ी हुई, और उससे डाक्टर गोमा को और कोलूलू उतरे। विश्वनाथ उनको देखते ही कुछ प्रसन्नता, कुछ उत्साह, कुछ आशा से उनकी ओर दौड़े, और कहा—"वाह डाक्टर साहब, आप बिल्कुल उपयुक्त अवसर पर आए। आपको बुलाने के लिए मैं आपके घर जाने का विचार कर ही रहा था।"

कोलूलू की ओर संकेत करते हुए डाक्टर गोमा को ने कहा—"लगभग एक घंटे पहले कोलूलू मुझसे मिलने के लिए अस्पताल आया था। उससे मैंने परसों रात्रि की घटना जो डाक बँगले में हुई थी बताई, और उसकी जैसी प्रतिक्रिया मिस कान्ति बाई पर हुई थी उसका सविस्तार वर्णन किया। यह भी बताया कि वे इस समय बिल्कुल स्वस्थ हैं, किन्तु कोलूलू उनको देखने के लिए हठ करने लगा, अतएव उसे लेकर यहाँ प्रयोगशाला होते हुए आ रहा हूँ। डाक्टर हाक से ज्ञात हुआ कि मिस कान्ति बाई आज वहाँ नहीं गई, और आप भी कुछ देर पहले चले गये हैं। आप बड़े व्याकुल देख पड़ते हैं, क्या बात है? कान्ति बाई कहाँ हैं?"

"आज कान्ति कल प्रातःकाल की अपेक्षा अधिक बीमार हो गई हैं। आइए ड्राइंग-रूम में बैठें, फिर सविस्तार आज की घटना बताऊँ।"

डाक्टर गोमा को और कोलूलू को लिए हुए वे बैठक में गए, और सारी घटना आदि से अन्त तक बता कर कहा—"मेरी समझ में नहीं आता कि एक

बार अच्छी होकर फिर कैसे वे पुन: बीमार हो गईं ।"

डाक्टर गोमा को के उत्तर देने के पूर्व, कोलूलू बोला—"अभी तक मोम्बा की प्रेतात्मा ने उनको छोड़ा नहीं है ।"

"किन्तु कल दोपहर को जब से उन्हें होश आया, वे बिल्कुल स्वस्थ रहीं । हमारे घर से वे यहाँ भली-चंगी आईं, और कोलियाटा उन्हें भेज गया था । आज पिता जी के मोम्बासा जाने की बात थी, इसलिए वे स्टेशन पर आने को कह गईं थीं, किन्तु वे जब नहीं पहुँचीं, और प्रयोगशाला भी नहीं गईं तो मुझे चिन्ता हुई, और मैं यहाँ आया । जिस समय उनसे भेंट हुई, उनको उतनी देर तक होने पर आश्चर्य हुआ, और पिता जी को बिदा करने के लिए स्टेशन नहीं पहुँचने से उन्हें धार्मिक पीड़ा भी हुई । कभी वे बिल्कुल ठीक हो जाती हैं, जैसे प्रेतात्मा उनको छोड़ गई हो, और कभी उनके काम उससे परिचालित मालूम होते हैं । यह लुका-छिपी कुछ समझ में नहीं आई ।"

इसी समय कोलियाटा वहाँ आया । वह डाक्टर गोमा को से अधिक कोलूलू को देखकर प्रसन्न हुआ । उसने प्रसन्न कंठ से कहा—"बड़े भैया, ईश्वर हमारी सहायता कर रहा है । अब कान्ति बाई अवश्य उस नागिन की प्रेतात्मा से छुटकारा पा जायगीं । कोलूलू ही उसको निकालने में समर्थ है, और मैं उसी को बुलाने की बात सोच रहा था ।"

कोलूलू ने विश्वनाथ की शङ्का का उत्तर देते हुए कहा—'प्रेतात्मा से वे कभी मुक्त नहीं हुईं । साधारण रूप से प्रेतात्मा स्थूल शरीर के मरते ही बिलग हो जाती है, यदि कोई विशेष बाधा उसके मार्ग में उपस्थित नहीं होती । चूँकि मोम्बा को ऐसे समय मारा गया, जब वह बाजा सुनने में तल्लीन किसी प्रकार की आशंका से बिल्कुल रहित था, और बन्दूक के आघात के साथ उसका धड़ कान्ति बाई के शरीर से लिपट गया, इस प्रकार कि उसका कटा हुआ भाग उसके मुँह से मिल गया, तब उस कटे हुए स्थान से निकलती हुई प्रेतात्मा उसके मुख के द्वार से उसमें प्रविष्टि हो गई । ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि कान्ति बाई की संज्ञा शून्य हो गई थी—अर्थात् उनकी विरोधक शक्ति का ह्रास हो गया

था। मोम्बा का तड़प कर उसके शरीर से लिपट जाने तक तो वह जीवित था, यह तो आपको मानना ही पड़ेगा, नहीं तो इतनी क्रिया होती कैसे। मोम्बा का सिर विलग हो जाने से प्रेतात्मा उसके शरीर से निकल रही थी, और उससे निकलते ही वह आन्तरिक्ष में मिलने के स्थान पर कान्तिबाई में प्रविष्ट हुई, और उसकी निज की प्रेतात्मा से संघर्ष रत हो गई। मोम्बा की प्रेतात्मा को कान्ति बाई की प्रेतात्मा निकालने का प्रयत्न करती है, और उनके युद्ध में जब जो सबल हो जाता है, उसका प्रभाव उस पर पड़ता है, और उसी प्रकार उसके आचरण होते हैं। यही कारण है कि जब कभी कान्ति बाई की प्रेतात्मा सबल पड़ती है तब वह अपनी साधारण गति से काम करती हैं, और जब कभी मोम्बा की प्रेतात्मा से उनकी प्रेतात्मा परास्त हो जाती हैं, तब वह उनके स्थूल शरीर को अपनी शक्ति से परिचालित करती है।"

"किन्तु यदि कान्ति जी उस समय अचेत न हो जातीं जब मोम्बा का धड़ उनसे चिपट गया था, तब क्या मोम्बा की प्रेतात्मा को कान्ति जी की प्रेतात्मा अपने स्थूल शरीर में प्रवेश न होने देती।"

"हाँ, तब वह अन्तरिक्ष में लीन हो जाती। सचेतावस्था में वह स्थूल शरीर के बल से सशक्त होती, और मोम्बा की प्रेतात्मा, जो केवल वायु रूप है कान्ति बाई के शरीर में प्रवेश न पाती और तब मोम्बा की प्रेतात्मा वायु में मिल जाती। स्थूल शरीर में आबद्ध होने के कारण वह उसकी समस्त क्रियाओं को प्रभावित करती है क्योंकि सूक्ष्म तत्व स्थूल से अधिक शक्तिशाली होता है। यही कारण है कि कान्ति बाई की अवस्था एक सी नहीं रहती, कभी कोई परिवर्तन होता है, और कभी कोई।"

"अब उपाय क्या है ! कैसे मोम्बा की प्रेतात्मा को उससे मुक्त कराया जाय ?"

"यह तभी संभव है, जब वे अचेत हों, और मोम्बा की प्रेतात्मा सबल हो कर उसकी प्रेतात्मा को अभिभूत किए हों।"

कोलियाटा ने तुरन्त कहा—"तब तो कान्ति बाई इस समय ऐसी ही अवस्था में है।"

"तब मोम्बा की प्रेतात्मा को निकालना सहज है। वे कहाँ हैं, मैं उनको देखना चाहता हूँ।"

"आइए।" कह कर कोलियाटा मार्ग प्रदर्शित करता हुआ आगे-आगे चलने लगा।

जूली तथा कोलियाटा ने जिस प्रकार कान्ति को शैय्या पर पौढ़ा दिया था उसी प्रकार वह लेटी हुई थीं। इस समय भी वह उसी भाँति अचेत थीं, किन्तु उसकी जीभ कभी-कभी बाहर निकल कर अपने ही होटों को चाट कर मुँह में घुस जाती थी।

कोलियाटा ने उसे देखते ही कहा—"हाँ, इस समय मोम्बा की प्रेतात्मा ने पूर्ण रूप से कान्ति बाई पर अधिकार कर लिया है। मैं उसको निकालने में समर्थ हूँ। आप उन्हें पृथ्वी पर लिटा दीजिये, शैय्या पर लेटे रहने से सुविधा न होगी।"

कोलियाटा पृथ्वी तल पर बिछाने के लिए गद्दा या ऐसी कोई वस्तु ढूँढ़ने लगा। उसका आशय जानकर कोलूलू ने कहा—"कोई कपड़ा न बिछाइए। पृथ्वी से निकलती हुई चुम्बक शक्ति मे कुछ व्यवधान पड़ जायगा। मोम्बा पृथ्वी में रहने वाला जीव है, अतएव पृथ्वी की शक्ति उसको अपनी ओर आकर्षित करेगी। इससे मेरे कार्य में सुगमता रहेगी।"

कोलियाटा और विश्वनाथ ने कान्ति बाई को उठा कर पृथ्वी पर पौढ़ा दिया।

"विश्वनाथ ने पूछा—"क्या हम लोग चले जायँ।"

कोलूलू ने उत्तर दिया—"नहीं आप लोगों के जाने की कोई आवश्यकता नहीं है, सब लोग केवल द्वार से बिल्कुल उल्टी दिशा मे बैठ जायँ, और ऐसा प्रबन्ध कर दीजिये कि द्वार पर कोई व्यक्ति न आवे।"

विश्वनाथ ने जूली को आदेश दिया कि चौकीदार को फाटक मे बैठा कर ऐसी व्यवस्था कर दे।

कोलूलू ने अचेत कान्ति को प्रदक्षिणा करते हुए कहा—"आप लोग मेरे किसी कृत्य को देखकर बीच में बाधा न दीजिएगा, और न कोई बोल कर मेरा ध्यान हटावे। यह क्रिया सूक्ष्मतत्वों से संबंधित है, इसलिए पूर्ण एकाग्रता चाहिए।"

डाक्टर गोमाको ने विश्वास दिलाया कि कोई उसके कार्य में हस्तान्क्षेप न करेगा।

"प्रायः ऐसे काम हम लोग बिल्कुल एकान्त में किया करते हैं, किन्तु आप लोगों को दिखाना चाहता हूँ कि अफ्रीकी जातियों में भी कुछ विशिष्टताएँ हैं, जिनके सम्बन्ध में पश्चिम को कोई ज्ञान नहीं है। अच्छा मैं ध्यान लगाता हूँ। सावधान, कोई कुछ न बोले।"

यह कह कर कोलूलू कान्ति के समीप बैठ गया, और अपनी भाषा में मंत्र पढ़ने लगा। थोड़ी देर मे वह बिल्कुल तन्मय हो गया। तन्मय होते ही वह स्वयं भूमि पर लेट गया, और दोनों हाथ शिर के ऊपर करके सर्प की भाँति टेढ़ा मेढ़ा होने लगा। उस समय ऐसा मालूम होता था कि जैसे कोई सर्प बल खा रहा हो। इस प्रकार कुछ देर करके वह सर्प की भाँति रेंगता हुआ कान्ति के समीप आया। इस समय उसकी जिह्व सर्प की भांति भीतर बाहर निकल रही थी। बीच-बीचमें वह एक प्रकार का शब्द भी निकालता जाता था। उसे सुनकर विश्वनाथ और डाक्टर गोमाको को याद आया कि उन्होने इस प्रकार का शब्द टोमों में सुना था, जब सर्पों को बुलाने के लिए चारो दिशाओं में गाँव के कुछ निवासी गए थे। उस प्रकार के प्रत्येक शब्दोंच्चारण के पश्चात् कान्ति चिहुँक जाती, और शीघ्रता के साथ अपनी जीभ बाहर-भीतर करने लगती थोड़ी देर कोलूलू उसी भाँति कान्ति से कभी दूर कभी समीप सर्प की भाँति लहराता रहा। कान्ति धीरे-धीरे उठी किन्तु थोड़ा उठकर फिर गिर गई। उसको गिरते देख कर कोलूलू ने अपने कमर से एक प्रकार का छोटा महुअर के आकार का नरकुल से बना हुआ बाजा निकाला, और लेटे-लेटे उसे बजाने लगा। इस समय वह पेट के बल लेटा हुआ शरीर और पैर हिलाता हुआ बड़ी तन्मयता से उसे बजा रहा था। थोड़ी देर बजाने के बाद ही कान्ति पलट कर पेट के बल हो गई, और

वह भी कोलूलू की भाँति अपना शरीर लहराने लगी। कोलूलू शिर उठाए दोनों हाथों से बाजे को पकड़े बजा रहा था, और कभी कभी उसे रोक कर सर्पों की भाति शब्द निकालता था। दो एक बार शब्द निकालने के बाद कान्ति भी उसी प्रकार बोलने लगी। अब कोलूलू धीरे-धीरे द्वार की ओर सरकने लगा। कान्ति भी उसका पीछा करती हुई जाने लगी। इस भाँति सरकते-सरकते दोनों के शरीर द्वार के समीप पहुँच गए। द्वार के बाहर होते ही कोलूलू उठ कर खड़ा हो गया, और बड़ी तीव्रता के साथ सर्प-शब्द निकालने लगा। शब्द करता हुआ वह एक ओर हट कर कान्ति की दृष्टि से ओझल हो गया। वह भी विकलता के साथ वैसा ही शब्द बार बार निकालने लगी। जब कोलूलू उसको दिखाई न दिया, तो वह चौखट पर शिर पटकने लगी। कोलूलू निरन्तर सर्प शब्द करता हुआ आगे-आगे बढ़ रहा था, किन्तु कान्ति की चौकन्नी आंखों से वह ओझल था। थोड़ी देर पश्चात् विश्वनाथ आदि को स्पष्ट प्रतीत हुआ कि कान्ति के मुख से सर्पाकार छाया निकली, और पृथ्वी पर लहराती हुई शून्य में लुप्त हो गई। उसके निकलते ही कान्ति का शरीर बिल्कुल निस्पंद हो गया। उधर कोलूलू ने भी सर्प शब्द निकालना बन्द कर दिया, और वहीं से चिल्ला कर कहा—"शीघ्रता से कान्तिबाई को पलँग पर लेटा कर शिर से पैर तक ओढ़ा दीजिए।"

कोलियाटा और डाक्टर गोमाको ने वैसा ही किया, और विश्वनाथ ने उसे कम्बल से आपाद-मस्तक ढक दिया। वे सब चकित होकर एक दूसरे का मुख निरखने लगे।

विश्वनाथ ने कहा—"यह तो बड़ी आश्चर्यजनक घटना हुई। मेरा रञ्च-मात्र भी इन प्रेतादि बातों पर विश्वास नहीं था। केवल कपोल-कल्पना समझता था, किन्तु आज प्रत्यक्ष देखा कि कान्ति जी के मुख से सर्पाकार छाया निकली थी। आपने देखा, डाक्टर गोमाको?"

"हाँ, देखा था। सूर्य के प्रकाश में वह छाया स्पष्ट दिखाई पड़ती थी, किन्तु दूसरे ही क्षण वह न जाने कहाँ लोप हो गई।"

"कोलूलू पहले ही बता चुका है कि सूक्ष्म शरीर वायु के तुल्य होता है। वह वायु में मिल गई।" कोलियाटा ने कहा।

कोलूलू ने इसी समय बड़ी शिथिल अवस्था में प्रवेश किया। उसने आते ही कहा—"यह नागिन थी, किसी भांति निकलती नहीं थी। जब मैंने बार-बार सर्पों की भाषा में विनय किया, तब वह निकली।"

"यदि वह तुम्हारा कहना न मानती, और न निकलती तो क्या होता?"

"तब न मालूम कितने पुरुषों को वह जान लेती। जिस पुरुष के साथ उसका संसर्ग होता, वही काल कवलित होता।"

"क्या तुम सत्य कहते हो?" विश्वनाथ ने पूछा।

"जी हाँ, जिसे वह अपनी जीभ से चाट लेती, उसी को मरना पड़ता। सर्प का विष तो उसके केवल एक दाँत में होता है, किन्तु यह सम्पूर्ण रूप से "विषमुखी" हो गई थी। मोम्बा सर्पों में मादा जाति बड़ी शक्तिशालिनी होती है, और वही नर सर्पों को अपनी ओर आकर्षित करती है। नर मोम्बा तो प्रायः निरीह होता है, किन्तु मादा बड़ी कट्टर होती है।"

"मेरा एक प्रश्न और है कोलूलू! वह यह कि यदि कान्तिजी के स्थान पर हम पुरुषों में से कोई होता और उसके शरीर से मादा मोम्बा का धड़ लिपट गया होता, ठीक उसी तरह जैसे उसके लिपट गया था, तब क्या उस पर प्रभाव पड़ता।"

"निश्चित उत्तर तो मैं नहीं दे सकता, किन्तु यदि नारी के स्थान पर कोई पुरुष होता तो मेरा अनुमान है कि नारी मोम्बा की प्रेतात्मा को पुरुष का सूक्ष्म शरीर उसे प्रवेश न होने देता, और यदि उसका प्रवेश हो जाता तो वह उसे नष्ट कर देता, क्योंकि स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष बलाढ्य तथा सशक्त होता है। इसलिए प्रायः स्त्रियाँ ही प्रेतात्माओं की शिकार हुआ करती हैं।

"अब कान्तिजी की चेतना कब सजग होगी?"

"अब इनका मुख खोल दीजिए, तीन-चार घंटे में होश आ जायगा।"

"तब तो किसी नर्स को भेज दीजिए डाक्टर गोमाको।"

"बहुत अच्छा, यहाँ से जाकर भेज दूँगा।"

"कोलूलू, यह तो बताओ, अब तो कोई डर नहीं है? कान्तिजी पर मोम्बा की प्रेतात्मा फिर तो न आ जायगी?"

"नहीं, अब वह वायु में मिल गई। जब ये जागेंगी तब उनको सब बातें केवल स्वप्न की बातों की भाँति याद रहेंगी।"

"उन्हें सारा रहस्य बताना चाहिए कि नहीं।"

"अब बताने में ही सुभीता रहेगा। बताने से कोई हानि नहीं होगी। कुछ दिनों तक वे बड़ी निर्बलता अनुभव करेंगी, किन्तु स्वास्थ्यवर्धक भोजन से वह शीघ्र दूर हो जायगी।"

विश्वनाथ ने चेक बुक निकालकर एक सौ पाउन्ड का चेक लिख कर उसे देते हुए कहा—"कोलूलू, तुम्हारे परिश्रम और कृपा का मूल्य हम लोग चुका नहीं सकते, मेरी यह तुच्छ भेंट स्वीकार करो।

कोलूलू ने दो पग पीछे हटकर कहा—"क्षमा कीजिएगा, इसका कोई विनिमय मैं स्वीकार करने में असमर्थ हूँ। यह धर्म विरुद्ध है। विनिमय में कुछ लेने से मेरी सूक्ष्म शक्ति कलुषित और नष्ट हो जायगी। इसकी वृद्धि परोपकार से होती है।"

विश्वनाथ ने डाक्टर गोमाको की ओर देखा। उन्होंने भी उसी की बात का समर्थन किया।

कोलियाटा ने कहा—"बड़े भैया, अब आप घर जाइए। मैं यहाँ रहूँगा।"

"नहीं, जब तक कान्तिजी को होश नहीं आ जाता, तब तक कहीं नहीं जा सकता। हाँ, कोलूलू यह भी बताओ कि तुमने इस प्रकार की घटना कहीं अन्यत्र भी देखा है, या यह तुम्हारा पहला अनुभव है?"

"मोम्बा की प्रेतात्मा के संबन्ध में यह मेरा पहला अनुभव है, किन्तु मनुष्यों की प्रेतात्माओं के सम्बन्ध में अनेकों अनुभव हैं, किन्तु मुझे सन्तोष है कि मुझे सदैव सफलता मिली है।"

"तुम बीच-बीच कौन सी भाषा बोल रहे थे, यह तुम्हारी जातिकी बोली तो नहीं है।"

"वह सर्पों की बोली थी। जब आपको अपने गाव टामॉ ले गया था तब हम उनको इसी बोली से आमंत्रित कर रहे थे। यह नहीं जानता कि यह मोम्बा की बोली है या नहीं, किन्तु इसी भाँति हम लोग उनको पीढ़ियों से बुलाते आए हैं। हमारे इस शब्द का अर्थ वे समझते हैं, और हमारा उद्देश्य पूरा होता है। आज भी मैंने उसी प्रकार मोम्बा की प्रेतात्मा को बुलाया और आपने देखा कि वह भी उसी प्रकार बोलती थी, और उसी के प्रभाव से वह खिंचकर बाहर आई।"

"तुमने उसे देखा नहीं था, तब कैसे जाना कि वह बाहर आ गई है।"

"उसने उसी भाषा में स्वयं कहा था।"

"तब क्या तुम भी उनकी बोली को समझते हो?"

"हाँ, हम लोग महीने में एक बार मिलते हैं, इससे उनकी बहुत सी बोलियाँ जान-पहचान गए हैं।"

डाक्टर गोमाको ने कहा—"अनवरत सम्पर्क से एक दूसरे की भावनाएं मालूम होती है। जब बालक के शब्द उच्चारण नहीं कर पाता, केवल उसके रोने से मालूम हो जाता है कि वह भूख से रो रहा है, या किसी अन्य पीड़ा से। "अच्छा मैं जाकर एक चतुर नर्स को भेजता हूँ। रात्रि तक फिर एक बार आकर देख जाऊँगा।

इसके पश्चात् विश्नाथ उनको बिदा करने के लिए उनकी गाड़ी तक गए।

— १३ —

अर्ध रात्रि की गंभीरता उत्तरोत्तर गाढ़ी होती जा रही थी। नर्स और जूली की आँखें नींद से बारम्बार बोझिल होकर झुकने लगती। विश्वनाथ ने उन दोनों को सोने की अनुमति दे दी। कान्ति अभी उसी प्रकार अचेत थी। डाक्टर

गोमा को रात्रि के दस बजे तक वहाँ, रहकर अनेकों उपचार से उसको होश में लाने का प्रयत्न करते रहे, किन्तु वे सफल नहीं हुए। धैर्य के साथ केवल प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं रह गया था। जब कि अपने प्रयत्नों में वे सफल नहीं हुए तो प्रातःकाल आने के लिए कह कर वे चले गए।

कोलियाटा बारम्बार विश्वनाथ से आग्रह कर रहा था कि वे जाकर विश्राम करें। वे भी थक गए थे, किन्तु कान्ति को उस प्रकार छोड़ जाने की इच्छा नहीं हो रही थी। अन्त में उन दोनों ने बारी-बारी से जागने का निश्चय किया। कोलियाटा पहले विश्वनाथ को सो जाने का अनुरोध करने लगा। उसका अनुरोध इस शर्त पर मानने को वे तैयार हुए यदि दो-तीन घंटे के बाद उन्हें जगा दे। और। कोलियाटा ने यह स्वीकार किया। वे उसी कमरे में एक सोफा पर लेट गये। कोलियाटा स्टूल पर बैठ कर पहरा देने लगा।

लगभग दो घंटे तक सो लेने के पश्चात् विश्वनाथ भरभरा कर उठ बैठे एक क्षण के लिये विमुग्ध दृष्टि से उन्होंने चारों ओर देखा, और जब सब घटनाएँ उन्हें याद आई तों उठ खड़े हुए। उन्होंने देखा कि कोलियाटा भी स्कूल पर बैठा, पलंक की पाटी पर शिर रखे सो रहा है। उन्होंने उसे जगाकर लेट जाने का आदेश दिया। कोलियाटा पहले अपनी भूल पर लज्जित हुआ, किन्तु उनके समझने पर वह सोने के लिए उसी सोफा पर लेट गया। विश्वनाथ ने उसका आसन ग्रहण किया।

थोड़ी देर बाद उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि कान्ति की पलकें हिल रही हैं। वे सजगता के साथ उसका मुख देखने लगे किन्तु वह भ्रम प्रमाणित हुआ। विद्युत के तीव्र प्रकाश में अचेत कान्ति की सौन्दर्य-श्री विकीर्ण होकर विश्वनाथ को आर्षित करने लगी। वे एक टक उसको देखने लगे। इस प्रकार उसको इतने समीप से देखने का यह पहला अवसर था। जितना उसे देखते थे उतना ही वे उससे प्रभावित हो रहे थे। उसके सौन्दर्य ने आज के पहले उनको इस प्रकार अभिभूत नहीं किया था। वे उसके रुक्ष बिखरे हुए केशों को सवाँरने लगे, और शिर पर बार बार हाथ फेरने लगे उन्हें ज्ञात न हुआ कि कब उसकी

दहिनी भुजा ने उसके शिर को अपने घेरे में ले लिया, और वे झुक कर उसकी मुँदी हुई पलकों के भीतर देखने की चेष्टा करने लगे। दोनों के प्रश्वास-निश्वास परस्पर विनिमय करने लगे। कान्ति के ओष्ठयुगल इस समय बिल्कुल पपड़ाते हुए थे, क्योंकि बार बार उनको अपनी जीभ से चाटने के कारण लार की मोटी तह जम कर सूख गई थी। अपने रूमाल से उसे पोछने का वे प्रयत्न करने लगे।

इसी समय कान्ति की पलकें सत्य ही खुल गईं, और उसकी आखें विश्वनाथ की आँखों से टकरा गईं। हड़बड़ा कर उन्होंने अपना हाथ घसीट लिया, और सीधे बैठकर उसको देखने लगे। कान्ति के नेत्र जो बन्द हो गये थे, पुन खुले, और उसने धीमें स्वर में कहा—"पानी।"

विश्वनाथ ने डाक्टर गोमाको की दी हुई औषधि को गिलास में ढालकर उसके मुख से लगाते हुए कहा—"लो, इसे पी जाओ।"

कान्ति ने मुख खोल दिया, और उन्होंने औषधि डाल दी। वह उसे पी गई। उसके नेत्र पुनः बन्द हो गये, और कुछ देर तक उसी प्रकार लेटी रही। विश्वनाथ बैठे नहीं, खड़े-खड़े उसको देखते रहे।

थोड़ी देर बाद कान्ति ने आँखें खोल कर चारो ओर देखा। वह बार बार चारो तरफ देख कर परिस्थिति समझने का प्रयत्न करने लगी। विश्वनाथ ने उसका आशय समझ कर कहा—"कान्ति जी, इस समय आप अपने कमरे में हैं। अब कैसी तबियत है?"

कान्ति ने बड़े विस्मय के साथ कहा—"अपने कमरे में हूँ। मैं तो विक्टोरिया झील देखने गई थी, और वहाँ के डाक बँगले में थी। आप कौन हैं अरे हाँ, पहचाना, आप विश्वनाथ जी हैं। क्या आप मुझे यहाँ ले आए हैं। क्या आपने उन सापों को मार डाला जो मुझे घेरे हुए थे?"

"हाँ, मैंने उनको मार डाला है, अब आप सुरक्षित हैं। किसी बात की चिन्ता मत कीजिए। तबियत तो आपकी अच्छी है? कैसा मालूम होता है।"

"क्या आप मुझे ले आए हैं?"

"नहीं, आप स्वयं ही यहाँ कल आई थी। कल दोपहर के बाद हम सब

विक्टोरिया झील से चल कर रात को नैरोबी पहुँचे, और हम लोगों के अनुरोध के विपरीत यहाँ अपने घर चली आई। आज प्रातःकाल पिता जी, सुहासिनी जी और देवराज मोम्बासा आवश्यक काम से चले गए। आज सुबह आपने स्टेशन पर आने की बात कही थी। जब आप नहीं आईं, और नियमानुसार प्रयोग शाला भी नहीं गईं तो मैं यहाँ आपको देखने के लिए आया। आप मुझे यहाँ बीमार मिलीं, इससे ठहर गया, और डाक्टर गोमाको को बुला कर दिखाया। उनकी औषधि से आपको लाभ हुआ है।"

"उफ! इतनी बातें हो गईं, और मुझे कुछ स्पष्ट याद नहीं। क्या मैं 'निद्रा भ्रमण' रोग से पीड़ित हूँ, अथवा समाधिस्थ थी, कुछ समझ में नहीं आता? जितनी बातें आप बता रहे हैं, उनकी धुँधली-सी स्मृति अवश्य है। इतना तो मुझे स्पष्ट याद है कि पूर्णिमा की रात्रि को वाध-नृत्य के समारोह के पश्चात् मैं सुहास दीदी के कमरे में बैठी बातें कर रही थी। जब आप और सुरेश बाबू घूमने चले गए, तो मैं भी चाँदनी की बहार देखने के लिए अपने कमरे में चली गई, और जी ऊबने पर वायलिन बजाने लगी। उसी समय मुझे कमरे में दो बहुत लम्बे-लम्बे साँप दिखाई दिए। उनको देखते ही मेरे हाथ पैर फूल गए। दोनों साँप मुझे बड़ी भयावनी दृष्टि से देखने लगे। उनकी दृष्टि से मैं मोहाच्छन्न हो गई। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वे मुझे वायलिन बजाने के लिए बार-बार संकेत कर रहे हैं। निरुपाय होकर उसे बजाने लगी। मैं इतनी मोहाच्छन्न हो गई कि मुझको बाह्य संसार का ध्यान नहीं रहा। वे बराबर मुझे देख कर जड़वत बना रहे थे। थोड़ी देर बाद एक धड़ाका हुआ, और इसके आगे मुझे कुछ याद नहीं पड़ता।"

"ठीक है। अब थोड़ा सा दूध पी लो। बिजली की अंगीठी पर अभी गरम हो जायगा।"

"नहीं, दूध नहीं, थोड़ा पानी दे दीजिए। जीभ और तालू सूख रहे हैं।"

विश्वनाथ ने पानी पिलाने के पश्चात् कहा—"अब आपको यदि नींद आती हो तो सो जाइए।"

"पानी पीने से जलन कुछ मिटी है। आप विस्तार से सब हाल बताइए। आप कहते हैं कि आपने उन साँपों को मार डाला, क्या यह सच है?"

विश्वनाथ ने विस्तार से विगत घटनाओं को बताकर कहा—"जब दोनों सापों को मैंने बन्दूक के एक ही निशाने में मार दिया, तब एक मोम्बा का शिर-कटा धड़ आपके शरीर से लिपट गया। वस्तुतः सापों ने अपनी मोहनी शक्ति से आपको विमोहित कर रखा था। जब सर्प पुराने होकर वृद्ध हो जाते हैं तब उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है, उस समय उनकी दृष्टि में एक प्रकार की सम्मोहन शक्ति उत्पन्न होती है, जिससे वे पशुओं को मोहाच्छन्न करके उन्हें क्रिया रहित बना देते हैं। उसकी शक्ति से उनका आखेट स्वयं ज्ञान शून्य होकर उनकी ओर खिंचता हुआ उनके समीप पहुँच जाता है, तब वे उसको मार कर खा जाते हैं। शायद इसी प्रकार की सम्मोहन शक्ति से आप आक्रान्त हो गई थी।"

"आपका विश्लेषण बहुत ठीक है। उनके नेत्रों की चमक ने मुझे बिल्कुल ज्ञान शून्य कर दिया था। फिर आगे क्या हुआ?"

"सांपों को मार कर हम लोग तुरंत आपके पास पहुँचे। आप बेहोश थी। साँप का धड़ आपके शरीर से छुड़ा कर आपको सुहासिनी के कमरे में लेटा दिया, क्यों आपके कपड़े आदि सब रक्त रंजित हो गए थे। प्रातः काल आपको कुछ होश आया, किन्तु फिर सो गई। दोपहर को आपकी नींद उचटी, और आपने डाक्टर आनन्द तथा सुहासिनी से कुछ बातें बताई।"

"हाँ, कुछ-कुछ याद पड़ता है कि मैंने पिता जी से कुछ बातें की थी, किंतु शायद वह स्वप्न था। फिर यह भी याद पड़ता है कि हम लोग विक्टोरिया झील से चल दिए। लेकिन मार्ग चलने की बात याद नहीं पड़ती।"

"आपने सारा मार्ग सोकर काटा था, इसलिए कुछ याद नहीं। आपको नैरोबी पहुँचने और हठ कर के यहाँ आने की बात तो याद है।"

"हाँ, इसका भी कुछ अस्पष्ट स्मरण है। शायद कोलियाटा मुझे पहुँचाने आया था, यहाँ आकर मैंने जूली से कहा भी था कि मुझे सबेरे उठा दे। इसके

बाद कुछ याद नहीं पड़ता। आप याद दिलाएँ तो शायद याद आ जाय।"

"दोपहर के लगभग मेरे यहाँ आने की याद आपको है।"

"हाँ, कुछ-कुछ स्मरण तो आती है। शायद आप ही आए थे, और पिता जी के आने की बात भी बताई थी, इसके बाद मुझे कुछ याद नहीं है। केवल गहरे अन्धकार की छाया मात्र है।"

"कोई बात नहीं, अब आप सोने का प्रयत्न कीजिए।"

"क्या बजा होगा ?"

विश्वनाथ ने घड़ी देखते हुए कहा—"अभी साढ़े तीन बजे हैं।"

"आप बराबर जाग रहे हैं, अभी तक सोए नहीं ?"

"नहीं बीच में कुछ देर सो चुका हूँ, जब कोलियाटा आपकी देख-रेख कर रहा था।"

"क्या आपको नींद आ रही है, सोइयेगा ?"

"नहीं, अभी नींद तो नहीं आ रही। चार बजे उठने का मुझे अभ्यास है।"

"उसी समय आप पढ़ते हैं, शायद !" कहती हुई मुस्काई।

"हाँ, अभ्यास तो यही है।"

"तब तो, आइए, बैठ कर कुछ बातें कीजिए। मुझे ऐसा मालूम होता है कि एक साँप मेरे शरीर में घुस गया था। वह बार-बार मेरे शरीर में ऊपर से नीचे, और ऊपर चल फिर रहा था। उसमें बड़ी तीव्र ज्वाला थी, जो मुझे थी भीतर ही भीतर दग्ध कर रही थी।"

"क्या अब भी कुछ पहली की भाँति जलन मालूम होती है।"

"नहीं, वैसी जलन तो नहीं है, लेकिन भय अब भी लगता है, कि कहीं वह फिर न प्रविष्ट हो जाय।"

"नहीं, वह अब नहीं आएगा, कोलूलू ने उसे निकाल दिया है।"

"कोलूलू ने उसे निकाल दिया, तो क्या सचमुच उन दो साँपों में से कोई मेरे शरीर में प्रवेश कर गया था।"

"हाँ, सत्य ही एक साँप की प्रेतात्मा आपके शरीर में प्रविष्ट हो गई थी, उसी के कारण आप विक्षिप्त रही और आपके शरीर में जलन थी।"

"कैसी भयानक बात आप कह रहे हैं। साँप की प्रेतात्मा मेरे शरीर में घुस गई थी? कोलूलू कौन है। अच्छा वह कोलूलू जो आप लोगों को अपने गाँव साँपों की पूजा दिखाने ले गया था। वह तो अपने को साँपों का पुजारी बताता था। वह कब यहाँ आया?"

विश्वनाथ ने कोलूलू का डाक्टर गोमाको के साथ आना, उसका मोम्बा की प्रेतात्मा निकलना आदि बातों का सविस्तार वर्णन करके कहा—"हम लोगों ने प्रत्यक्ष आपके मुँह से सर्पाकृति छाया निकलते देखा था, और ज्यों-ज्यों वह निकलती जाती थी, त्यों-त्यों वायु में मिलती जाती थी।"

"मुझे इसकी कुछ याद नहीं है। मैं साँप की तरह भूमि पर लोटती घूमी थी। अब तो मुझे अपने आपसे घृणा हो रही है। मैं अब जीवित रहना नहीं चाहती।"

"यह भी कोई बात है। जीवन में ऐसी घटनाएँ तो हुआ ही करती हैं। बीमारी, पीड़ा सबको होती है। क्या जूँ पड़ जाने से कोई सिर कटा डालता है?"

"अब मेरा जीवन मेरे लिए घृण्य हो गया है। मैं मानव से साँप हो गई। मेरे जीवन की सारी महत्वाकांक्षाएँ मिट गईं। अब मरने में ही कल्याण है। मैं कैसे सबको अपना मुँह दिखाऊँगी।"

"आपने स्वयं कोई पाप नहीं किया, और न इस बीमारी के लिए आप उत्तरदायी हैं। हम लोगों के अतिरिक्त इस सम्बन्ध में कोई कुछ नहीं जानते, यहाँ तक कि आपकी आया जूली भी बिल्कुल अनभिज्ञ है, क्योंकि वह यहाँ नहीं थी, जब कोलूलू प्रेतात्मा निकाल रहा था। आपकी इच्छा न होगी तो हम यह रहस्य पिताजी, और सुहासिनी को भी न बताएँगे, क्योंकि उन लोगों को विश्वास हो गया है कि आप बिल्कुल अच्छी होकर यहाँ आई थीं। कोलियाटा को अवश्य सन्देह था, और कल रात को जब उसने अपना सन्देह हम लोगों से कहा था, तब सुरेश बाबू ने उसे कड़ी फटकार बताई थी। स्वयं मुझको प्रेतात्माओं पर कभी विश्वास नहीं था।"

"अब तो आपने प्रत्यक्ष मेरे शरीर से उसे निकलते देखा है, इससे विश्वास हो गया ?"

"हाँ, अब तो विश्वास करना ही पड़ता है।"

"अच्छा पिता जी, और सुहास दीदी से इसकी चर्चा न कीजिएगा। यद्यपि मेरा आग्रह अनुचित है, तथापि कोई नारी किसी अन्य नारी के सम्मुख अपने को हीन करना नहीं चाहती।"

"अच्छा, मैं इसका प्रबन्ध कर दूँगा। कान्ति जी, मेरा अनुरोध है कि आप जीवन के इस दुखद पृष्ठ को सदा के लिए उलट दें।"

"किन्तु यह कैसे भुला सकती हूँ कि आपने एक नहीं, दो नहीं, तीन-तीन बार मेरी जीवन-रक्षा की है। मैं जितना आपके एहसान उठाने से दूर भागती रही, विधि विडम्बना से उतने ही एहसान आपके लदते गये।"

"इस प्रकार आप क्यों सोचती हैं ? मेरा क्या अपराध है ?"

"तुम्हारा क्या अपराध ? कुछ नहीं, केवल अपने विचारों के समक्ष मुझे हारना पड़ा है। अब उस भावना से युद्ध नहीं करूँगी, बल्कि अपने आपको समर्पण करूँगी। जिसने मेरे जीवन की रक्षा की है, यह जीवन उसी को समर्पण करने में कल्याण है। मेरा अहंकार नष्ट हुआ ?"

"इतनी कातर क्यों होती हो कान्ति ! मै कोई प्रतिदान नहीं चाहता।"

"तुम नहीं चाहते, और मैं जानती हूँ कि तुम कभी प्रतिदान न चाहोगे। जब तुम मेरी एक झिड़की में जहाज की पूरी यात्रा में अपने को छिपाए रहे, और यहाँ आकर भी तुमने सदैव अपने को मुझसे दूर-दूर रखा, और मेरी रूक्षता से कभी माथे पर शिकन तक न लाए और मेरे प्रत्येक संकट काल में तुम रक्षक हुए, तब क्या तुमने यह सब काम किसी प्रतिदान की आशा से किए हैं। तुम्हारा हृदय बड़ा महान् है। मैं तुम्हारे सम्मुख क्षुद्र हूँ, नीच हूँ, और हेय हूँ। क्या तुम अब मुझे क्षमा कर सकते हो ?"

कान्ति अत्यन्त दीनता से विश्वनाथ की ओर निहारने लगी। विश्वनाथ ने

सान्त्वना देने के उद्देश्य से कहा—"आप अधीर न हों, अधीरता से पुनः आपकी तबियत खराब हो सकती है।"

"मेरी प्रार्थना है कि तुम मुझे 'आप' न कहो। 'आप' पृथकता का चिन्ह है, मैं तुमको 'तुम' कह कर सम्बोधन करती हूँ, तुम्हारा 'आप' शब्द मेरे अपराधों को प्रमाणित कर मुझे सन्तप्त करता, अपने स्वयं के प्रति घृणा उत्पन्न करता है।" कहते हुए कान्ति ने उसका हाथ पकड़ लिया, और उन्हें सहलाने लगी,। उसकी शीतलता उसके मन के उत्ताप को दूर करने लगी।

थोड़ी देर बाद कान्ति ने फिर कहा—"मैं आज तुम्हें अपना परिचय देना चाहती हूँ। मेरा जन्म एक गायिका के घर में हुआ है। मेरे पिता अवध के एक छोटे राज्य के स्वामी थे। मेरी माँ के साथ उन्होंने नागरिक कानून के अनुसार विवाह किया था, किन्तु समाज ने उन्हें रखेल कह कर पुकारा, पत्नी की मानता नहीं दी। वे स्वयं संगीत विशारद थे, और मेरी माँ अनुपम सुन्दरी होने के साथ संगीत की मर्मज्ञ तथा लब्ध प्रतिष्ठ कलाकार थीं। मेरे पिता जी लखनऊ में रहते थे, और बटलर रोड में हमारी आलीशान कोठी थी। पिता का अकस्मात देहान्त हो गया, किन्तु वह कोठी मेरे माँ के नाम वसीयत कर गए थे। लगभग दस लाख की जमा पूँजी भी मेरी माँ को दे गये थे, इसलिए उनके देहान्त के पश्चात् हम लोगों को निराश्रय नहीं होना पड़ा। मेरी माँ की इच्छा मुझे पूर्ण रूप के शिक्षित बनाने की थी, इसलिए उन्होंने उत्तमोत्तम शिक्षक मेरे पढ़ाने के लिए नियुक्त किए थे। लामार्टोनियर स्कूल में परीक्षाएँ पास कर मैं लखनऊ विश्वविद्यालय से एम.एस. सी. पास कर बम्बई गई, और वहाँ प्रोफेसर सेन, जो रसायन शास्त्र के विश्व विख्यात पंडित हैं, की देख-रेख में रसायन शास्त्र पर खोज करती रही। उसी समय मैंने विषों के कुछ परीक्षण किए, जिन्हें लिपिबद्ध करके एक लेख विज्ञान परिषद की वार्षिक-बैठक में पढ़ा, जिसकी बहुत प्रशंसा हुई, और विश्व स्वास्थ्य संघ ने उस पर अधिक अनुसंधान करने के लिए छात्र वृत्ति देकर यहाँ केनिया भेजा। इसके आगे का हाल तुमको विदित है, कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।"

"अब प्रश्न यह है कि मैं हिन्दू समाज में प्रचलित विवाह से उत्पन्न सन्तान

नहीं हूँ। समाज ने कभी मेरी माता के विवाह को स्वीकार नहीं किया, और न उसका कोई वैध अधिकार ही दिया। पिता के राज्य में, घर में, हमें प्रवेश करने का अधिकार नहीं था। मेरे सौतेले भाई ने न-मालूम कितने और कैसे कैसे षड्यन्त्र करके हमें पथ का भिखारी बनाने की चेष्टाएँ की, जिनके स्मरण मात्र से हृदय काँप उठता है। न-मालूम कितने बार विष प्रयोग से मुझे और मेरी माँ को मारने के प्रयत्न हुए हैं। हम लोग बाहर से आई प्रत्येक वस्तुयें विष मिले होने की संभावना तथा आशंका करते रहते थे। एक बार फलों में भी विष प्रवेश करा कर हमारे घर भेजा गया था। न-मालूम कितने विषैले सर्प हमारे घर में छोड़े गए, जिन्हें हम पकड़ने में सफल रहे। मेरे चारों ओर विष का वातावरण बनाने की चेष्टाएँ बराबर जारी रहती थी; किन्तु भगवान मेरी सदैव रक्षा करता आया। इन्हीं षड़यन्त्रों से ऊब कर हम लोग बम्बई चले गए, और मैंने भी विष को अपने अध्ययन का विषय बनाया।"

"अपने सौतेले भाइयों के षड़यन्त्रों से मैं इतनी संत्रस्त रहती थी कि अपने चारों ओर उनके ही गुप्तचरों को देखा करती थी, और यही कारण था कि मैं प्रत्येक अपरिचित से दूर ही दूर रहती थी। इस प्रकार दूर दूर रहने का मेरा स्वभाव हो गया, और एकान्तवास की अभ्यस्त हो गई। इसी वजह से मेरी वाणी में कटुता थी, तिरस्कार था, प्रत्येक के प्रति घृणा थी। मेरे भाइयों के प्रति मेरे हृदय का विद्वेष धीरे-धीरे समग्र पुरुष जाति के प्रति हो गया, जिन्हें मैं नितान्त स्वार्थी, तथा पामर मानने लगी। यहाँ आकर डाक्टर आनन्द से जब मिली तब मेरी मानसिक धारणाओं तथा भावनाओं में परिवर्त्तन हुआ। उनके निष्कपट स्नेह और आदर ने मेरी रुक्षता को किसी सीमा तक कम करने में समर्थ हुई। क्षमा कीजियेगा, मैंने तुमको पहले अपने सौतेले भाइयों का गुप्तचर ही समझा था; और मेरी यह धारणा अधिक पुष्ट होती गई जब देखा कि तुम्हारी घनिष्ठता जहाज के कप्तान सुरेशचन्द्र जी के साथ है, और तुम दोनों मुझसे मिलने तथा मेल-जोल बढ़ाने का प्रयत्न करते हो। मुझे इतना सतर्क रहना पड़ता था कि जो भोजन मेरे लिये जहाज की पाकशाला से आता था, उसका परीक्षण करके

खाती थी, इसीलिये मैं अपना भोजन अपने कमरे में मँगाती थी।" कहती हुई कान्ति उनकी ओर देखकर मुस्कराने लगी।

विश्वनाथ ने हँसते हुये कहा—"शायद तुम्हारी वह धारणा अधिक पुष्ट हुई होगी जब तुमने मुझको डाक्टर हाक से बातें करते हुये देखा था!"

"हाँ निश्चय ही। इसके पश्चात् जब तुमको डाक्टर आनन्द के यहाँ भी देखा तो मेरे पैरों के नीचे से धरती ही खिसक गई थी, किन्तु सुहासिनी और पिता जी के स्नेह से वह भाव धीरे धीरे दूर हो गया। एक दिन जब तुम लोग मोम्बासा कप्तान सुरेश चन्द्र को लेने गये थे, तब मैंने तुम्हारे कमरे की छान-बीन भी की थी।"

"और हम लोगों ने ठीक मौके पर पहुँच कर तुमको रंगे हाथों पकड़ लिया था।" कहते हुए वे हँस पड़े, और कान्ति भी हँसने लगी।"

"तुम्हारी डायरी मेरे हाथ लग गई, और उसमें लिखे तुम्हारे मनोभावों को पढ़ने से विश्वास हुआ कि तुम्हारा कोई सम्बन्ध मेरे सौते भाइयों से नहीं है, तब शान्ति मिली।"

"शायद मुझे गुप्तचर ही समझ कर तुम मेरे साथ टोमो नहीं गई।"

"हाँ, मैंने जब सुना कि तुम लोग साँपों की पूजा देखने जाते हो' तब सोचा कि मेरे मारने के लिये ही तुमने यह षड़यन्त्र रचा है। किसी विषधर साँप से काटने का प्रबन्ध कर मेरी हत्या पर तुम परदा डाल सकोगे, और आकस्मिक घटना कह कर तुम सहज ही निष्कृति पा जाओगे।"

"फिर मेरे साथ विक्टोरिया झील क्यों गई थी?"

"उसके पूर्व तुम्हारी डायरी पढ़ कर तुम्हारी सत्यता से परिचित हो चुकी थी।"

"तुमने मेरी मानसिक भावनाओं के सम्बन्ध में क्या जाना।"

"यही कि तुम निरे बुद्धू हो।" यह कह उसने उनके हाथ पर अपना प्रेम चिह्न अंकित कर दिया। थोड़ी देर तक दोनों मौन रहे, फिर कान्ति बोली—"देखो, यह बात अच्छी तरह विचार कर लो कि मैं एक ऐसी नारी की सन्तान

हूँ, जिसका समाज में कोई स्थान नहीं है। ऐसी नारी के गर्भ से मैं उत्पन्न हुई हूँ, जिसको जन-साधारण की भाषा में 'वेश्या' कहकर पुकारा जाता है। यदि इस विचार से तुम्हारे मन में कभी ग्लानि उत्पन्न हो, तो मुझे कभी शान्ति नहीं मिलेगी, और हम दोनों का जीवन दुखमय होगा। इससे अच्छा है कि हम लोग उसी प्रकार रहें जैसे अभी तक रहते आए हैं।"

"अर्थात् मैं तुम्हारे सौतेले भाइयों का गुप्तचर बन कर रहूँ ?"

दोनों पुन: हँसने लगे।

"तो क्या मैं अपनी माँ को लिख दूँ कि गुप्तचर मेरा संरक्षण में रहना स्वीकार करता है।"

"हाँ, यदि तुम मेरे संरक्षण,स्वीकार करती हो।"

कान्ति ने विश्वनाथ की अञ्जलि में अपना मुख छिपाकर मौन भाषा में अपने समर्पण की स्वीकृत देने का प्रयत्न करने लगी।

— १४ —

जब दो दिन के पश्चात् तीसरे दिन डाक्टर आनन्द, सुहासिनी और देवराज मोम्बासा से लौट आए तब उन्होंने कान्ति को सब दिनों की अपेक्षा अधिक वाचाल, और प्रसन्न पाया। सदैव की मलिन वदना चिन्तायुक्ता कान्ति में नव उत्साह का सिन्धु हिलोरे लेने लगा था। डाक्टर आनन्द को उसका यह परिवर्त्तन अति रुचिकर प्रतीत हुआ, और वे भी उसकी प्रसन्नता से प्रसन्न हुए, किन्तु सुहासिनी उसके इस रहस्यमय परिवर्त्तन को न समझ सकी, तथा उसका कारण जानने के लिए उत्सुक भी हुई। पहले की अपेक्षा उसने विश्वनाथ में भी परिवर्त्तन लक्ष्य किया। उनके मिलन में पहले जैसी झिझक नहीं थी, वरन् दोनों एक दूसरे के बहुत समीप आए हुए देख पड़ते थे। उसको कुछ सन्तोष तो हुआ, किन्तु एक प्रच्छन्न वेदना के साथ। उसने कोलियाटा से इधर-उधर की बातों में उनका भेद जानने का प्रयत्न किया किन्तु उसमें सफलता नहीं

मिली। वह सर्वथा मौन रहा, और उसने मोम्बा की प्रेतात्मा कान्त के शरीर से निकाले जाने की घटना भी नहीं बताई, क्योंकि विश्वनाथ ने उसे और डाक्टर गोमाको को वह भेद उन पर खोलने के लिए मना कर दिया था। इसी से वे लोग उस सम्बन्ध में कुछ जान न सके।

डाक्टर आनन्द से विश्वनाथ को मालूम हुआ कि कप्तान सुरेशचन्द्र का जहाज मोम्बासा से बम्बई जायगा, क्योंकि जहाज कम्पनी के अधिकारियों ने आगे की यात्रा निषेध कर बंबई किसी कार्यवश बुला लिया था। संभव है कि यदि कोई दुर्घटना नहीं घटी तो एक मास में अथवा उसके आगे पीछे वे पुनः मोम्बासा लौट आवेंगे।

एक दिन संध्या की चाय पीने के समय कान्ति ने हँसकर कहा—"पिताजी, यदि आप वकालत करते तो शत-प्रतिशत वादों में विजयी होते।"

"क्यों? कहते हुए उन्होंने आश्चर्य के साथ उसकी ओर देखा।

"आप सत्य बात पर इतनी चतुरता के साथ परदा डाल सकते हैं, यह स्वप्न में भी मैंने नहीं सोचा था।"

"मैंने कौन सी सत्य बात को छिपाने का प्रयत्न किया है कान्ति?"

"विक्टोरिया झील के डाक बँगले में जब मैं सापों को देखकर बेहोश हो गई थी, तब आपने मुझे उस बात को स्वप्न बता कर, उस घटना को बिल्कुल उड़ा देने की चेष्टा की थी। आपकी युक्तियाँ कितनी अकाट्य थी, यह जब आज सोचती हूँ तो दंग रह जाती हूँ। आपने उसे बिल्कुल स्वप्न ही बना डाला था!"

डाक्टर आनन्द ने सुहासिनी और विश्वनाथ की ओर अर्थ भरी दृष्टि से देखा।

विश्वनाथ ने लाल होते हुए मुख से कहा—"हाँ, पिताजी, अब कान्ति से वह भेद छिपा नहीं रहा। मैंने बता दिया है।"

सुहासिनी ने कान्ति के कान के पास धीरे से कहा—"अच्छा, दो दिनों में इतनी घनिष्ठता बढ़ा ली। अगर मेरी उपस्थिति अवांछनीय थी, तो मुझसे पहले बता देना चाहिए था, मैं चली जाती।"

कान्ति के कपोल लाल हो गए, किन्तु उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

"क्यों कान्ति, मेरे विरुद्ध सुहास क्या कह रही है?"

"नहीं पिताजी, आपके विरुद्ध कोई कुछ नहीं कह सकता, आपतो सर्वप्रिय हैं। मैंने यों ही आपसे कहा कि आपने व्यर्थ ही असत्य कहने का प्रयत्न किया था।"

"नहीं बेटी, मैंने असत्य भाषण नहीं किया, वह तो तुम्हारी औषधि थी। मैं व्यवसाय से चिकित्सक हूँ, इसलिए रोगी के लिए उचित औषधि देना मेरा कर्त्तव्य है। तुम कितने कोमल चित्त की हो, यह मैं जानता हूँ। उस दिन यदि मैं कह देता कि तुम्हारे शरीर में मोम्बा का धड़ लिपट गया था, तो संभव था कि तुम्हारे हृदय की गति रुक जाती, और तब सोचो सत्य भाषण का कितना घातक परिणाम निकलता। तुम्हारे उत्तेजित मन को शान्ति देना मेरा प्रथम कर्त्तव्य था, और भय की निवृत्ति स्वप्नवता कर ही की जा सकती थी। इसलिए मैंने वे सब बातें कही थी।"

"नही पिताजी, अपवाद लगाना मेरा उद्देश्य नहीं है। मैंने तो केवल आपकी चतुरता का बखान किया था। जिस प्रकार आप चिकित्सा में निपुण हैं उसी प्रकार आप तर्क विद्या में भी चतुर हैं।"

इसी समय उस दिन की डाक लेकर देवराज ने प्रवेश करके कहा—"पापा आज की डाक में केवल एक पत्र है, और वह भी कोलियाटा के नाम।"

डाक्टर आनन्द पत्र लेकर देखने लगे। सबके नेत्र उत्सुकता से उनकी ओर उठ गए।

डाक्टर आनन्द ने कोलियाटा को बुलाने का आदेश दिया।

कान्ति ने कहा—"क्या कोलियाटा का इस संसार में कोई है? मैं तो समझती थी कि वह बिल्कुल अकेला है।"

"एक माँ के अतिरिक्त कोई नहीं है। यदि कोई भाई-बन्धु होगा, तो उसने कभी बताया नहीं।"

"कोलियाटा बड़े उन्नत विचारों का है, उसका एक मात्र ध्येय सबकी सेवा

करके सुखी करना है। वाणी उसकी बड़ी मधुर है, और स्वभाव दयालु है। कोई यदि उसे झिड़क भी दे तो वह प्रत्युत्तर नहीं देता, और न उससे उसके मन में मैल आता है।

"हाँ, कभी-कभी उसका स्वभाव मुझको जगन्नाथ भैया की याद दिलाता है।"

"कौन जगन्नाथ, पिता जी?"

"विश्वनाथ के पिता का नाम जगन्नाथ था।"

"जिनका तैलचित्र उनके कमरे में लगा है।"

"हाँ, वही।"

"वे तो बड़े सौम्य स्वभाव के मालूम होते हैं।"

"बेटी, उन्हीं के स्नेह और सौजन्य से यह वृद्ध जीवित है, नहीं तो कब का मर गया होता।"

"अच्छा, उनका आप पर इतना उपकार है।"

"बेटी वे नर रूप म देवता थे, जिनका समस्त जीवन परोपकार में ही बीता। वे इतने निस्पृही थे कि कभी किसी वस्तु को अपने लिए नहीं सञ्चय किया। उनकी वस्तु की जब किसी को आवश्यता हुई, उन्होंने उसे तुरन्त दे दिया। यदि कभी सेवा-सुश्रूषा का अवसर आया तो तन-मन-धन से निष्कपट होकर किया।"

"कान्ति बहिन, तुमने वह विषय छेड़ दिया है कि अब पापा को दो-तीन घंटे बोलने का सुयोग मिल गया। यदि कहीं और अवसर मिल जाय तो अपने आरंभिक जीवन की कहानियों से तुमको अकुला देंगे।" यह कहकर वह हँसने लगी।"

"वे ऐसे ही महा-पुरुष थे बेटी, जिनके सम्बन्ध जो कुछ और जितना कहा जाय, वह कम होगा। कुछ न कुछ बताने के लिए शेष रह ही जायगा। और मुझे सन्तोष है कि भैया विश्वनाथ भी ठीक वैसे हैं।"

"पिता जी, मेरी प्रशंसा न कीजिए।" विश्वनाथ ने कहा।

"हाँ पिता जी, उनको विरक्त न कीजिए, क्योंकि वे सदैव दूसरों का उपकार करने के आदी हैं। मेरे साथ भी इन्होंने तीन बार उपकार किए, नहीं तो न-

मालूम कब मैं मर गई होती।" कान्ति ने कनखियों से विश्वनाथ को देखते हुए कहा।

सुहासिनी ने पुनः उसके कान के पास धीरे से कहा—"अब तो तुम बड़े भैया का गुणगान करने लगी। देखती हूँ आपका विराग अब राग में परिवर्तित हो गया है। न-मालूम भैया ने कौन सी जादू की छड़ी घुमा दी।"

कान्ति ने उत्तर में चुटकी भर ली। सुहासिनी चिल्ला उठी।

डाक्टर आनन्द ने पूछा—"क्या हुआ सुहास, क्या किसी कीड़े ने काट खाया।" अधीरता से उठ खड़े हुए।

सुहासिनी ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—"कुछ नहीं पापा, यों ही चिहुँक उठी थी। कान्ति बहिन आज कल बड़ी उग्र हो गई हैं। पहले मुँह से बोल न फूटता था, बड़ी खुशामद के बाद दो-एक शब्द बोल दिया करती थीं, लेकिन अब दो दिनों में इतनी आगे बढ़ गई हैं कि मैं बहुत पीछे रह गई हूँ।"

"पिता जी, आप ही न्याय कीजिए। शिष्य जब गुरू का आदेश पालन करे तो क्यों गुरू को बुरा लगे, और यदि वह बुरा मानता है तो उसे दण्ड मिलना चाहिए कि नहीं? आपका क्या निर्णय है।"

"लेकिन पापा, जब शिष्य गुरू के विरुद्ध आचरण करे तब किसको दण्ड मिलना चाहिए?"

"मेरा निर्णय है कि हर हालत में न्याय करने वाले को ही दण्ड मिलना चाहिए, क्योंकि यदि वह किसी को दण्ड देता है तो वह अपने प्रियतमवादी तथा प्रतिवादी दण्ड देने का साहस करता है, और दण्ड का भार अन्त में उसी पर पड़ेगा?"

डाक्टर आनन्द के मुक्त हास्य के साथ-साथ सभी हँसने लगे।

उनकी हँसी तब थमी जब कोलियाटा ने आकर पूछा—"मेरा कोई पत्र आया है?"

उसकी आँखों से चिन्ता स्पष्ट रूप से झाँक रही थी।

डाक्टर आनन्द ने उसका पत्र देते हुए कहा—"हाँ, यह पत्र तुम्हारे नाम आया है।"

कोलियाटा पत्र लेकर बड़ी उद्विग्नता से खोलकर पढ़ने लगा। पढ़ते-पढ़ते उसका मुख शोकाच्छन्न हो गया। उसके नेत्र डबडबा आये। सभी विकलता से उसकी ओर देखने लगे।

डाक्टर आनन्द ने सहानुभूति के साथ प्रश्न किया—"क्यों, किसका पत्र है, कैसा समाचार है।"

कोलियाटा ने दुखित कंठ से कहा—"पत्र मेरे गाँव के मुखिया का है, मेरी वृद्धा माता की बीमारी का हाल लिखा है। वह लिखता है कि, "तुम्हारी माता मरणासन्न हैं, अन्तिम समय वह तुम्हें देखना चाहती है। सब काम छोड़कर तुरन्त चले आओ।" फिर अपनी ओर से लिखा है—"पत्र मिलते ही चल देना, देवता हो की कृपा होगी, यदि तुम्हें वह जीवित मिले। हम लोग उसकी सेवा कर रहे हैं, किन्तु अधिक भरोसा नहीं है।"

"यह तो बड़ा दुखद समाचार है। क्या मैं चलूँ?"

"यदि जीवन की कुछ आशा होती तो आग्रह भी करता, किन्तु मेरा मन कहता है कि वह अब तक शायद ही बची हो। इधर कई दिनों से मैं बुरे बुरे सपने देख रहा था, इससे बार बार सोचता था कि कोई न कोई अनिष्ट होने वाला है। इस ससार म इस माँ के अतिरिक्त मेरा कोई नहीं है, और इसने भी अपना समग्र जीवन घोर कष्टों में व्यतीत किया है।"

"सारा जीवन कष्टों में व्यतीत किया?"

"हां पिता जी, उस पर अनेकों अत्याचार हुए हैं। जब मैं दो मास का था तब वह मुझे लेकर अपनी नानी के घर गई थी। मेरी मां के नाना उस गाँव के मुखिया थे, जिनका रोब और दबदबा चारो ओर था। उसी समय गाँव के कुछ शत्रुओं पड़ोस के मुखिया से मिल कर विद्रोह किया, और गृहयुद्ध आरंभ हो गया। विद्रोहियों की सहायता पड़ोसी मुखिया ने की, और उसके नाना-मामा

आदि को मार डाला। मेरी माँ को वे लोग हरण कर के ले गए, और बहुत दूर जाकर दूसरी जाति के मुखिया को बेच आए, जहाँ उसको अपने जीवन के इस वर्ष दासता में व्यतीत करना पड़ा। जब अंग्रेजों से उनका संघर्ष हुआ, तब मेरी माँ और मुझको मुक्ति मिली मुक्ति पाकर मेरी माँ गाँव लौट आई। उस समय तक सारी दुनिया पलट गई थी। मेरा पिता जो भारतीय था, वापस स्वदेश चला गया था। अब उसके मिलने की कोई आशा न थी। पेट पालने के लिए सेवा वृत्ति के अतिरिक्त कोई उपाय न था। अन्त में एक पादरी ने उसे नौकर रख लिया, और मेरी शिक्षा का भी प्रबन्ध किया। यदि वह कुछ दिन और रह जाता तो संभव था कि मैं कुछ अच्छी तरह लिखना-पढ़ना सीख जाता, किन्तु उसको किसी आवश्यक कार्य से इगलैंड जाना पड़ा। खेती करके जीविका उपार्जन की जा सकती थी, किन्तु खेती के लिए पृथ्वी और हल आदि के लिए द्रव्य की आवश्यकता थी, और उन दोनों का ही अभाव था। वह पुनः गाँव के मुखिया के यहाँ दासता करने लगी, और मैं कमाने के लिए शहरों में भटकने लगा। भूमि न होने के कारण कोई मुझे अपनी लड़की देने को तैयार न था। रुपया इकट्ठा करके मेरा विवाह वह करना चाहती थी, किन्तु विवाह के लिए मेरे मन में कोई उत्सुकता न थी। कई बार नैरोबी आया, मोम्बासा गया, वहाँ कुछ वर्षों तक अनेकों गोरों के यहाँ नौकरी की। परसाल छुट्टी लेकर जब घर गया था तब मेरी माँ बीमार थी। बहुत सेवा-सुश्रूषा से जब वह अच्छी हुई, तो मैं फिर नैरोबी में आया। यहाँ आकर मोटर की दुर्घटना-नहीं सुघटना हुई, जिससे मैं आपकी सेवा में उपस्थित हो सका। अब पुनः माँ की बीमारी का हाल मिला है, शायद उसे जीवित देख भी न पाऊँ।" यह कह कर वह रोने लगा।

डाक्टर आनन्द ने सान्त्वना देते हुए कहा—"कोजियाटा, तुम घबड़ाओ नहीं। मैं कल प्रातः काल तुम्हारे साथ मोटर पर चलूँगा। अगर उसमें जीवन शेष हुआ तो एक बार उसको बचाने का प्रयत्न करूँगा। मुझे विश्वास है कि वह हमें जीवित मिलेगी।"

विश्वनाथ ने कहा—"पिता जी, मैं भी आपके साथ चलूँगा।"

"तुम जाकर क्या करोगे ? माश्रो-माश्रो का युद्ध चल रहा है। ऐसे समय तुम्हारा जाना ठीक नहीं।"

"पिता जी, मेरे गांव में माश्रो-माश्रो का उपद्रव बिल्कुल नहीं है।"

"तुम्हारा गांव का क्या नाम है ?"

"बोडोलो, नैरोबी से पचहत्तर-अस्सी मील दूर है।"

"बोडोलो, यह नाम तो मेरा सुना हुआ है, याद नहीं पड़ता कि कब और कहाँ सुना है, किन्तु यह मुझे परिचित नाम मालूम होता है। अवश्य, यह कई बार मेरे कान में आया है।"

"मेरे गाव का कोई रोगी शायद आपके पास आया हो, क्योंकि मेरे गाँव के बहुत से आदमी मोम्बासा में नौकरी करते हैं।"

"संभव है, उन्हीं से सुना हो। अच्छा मोटर की टंकी में पेट्रोल भरा लो, और दस-बारह गैलन अलग से रख लेना। मैं यहाँ से प्रातः काल तुम्हारे साथ चलूँगा।"

कोलियाटा का मुख प्रसन्न हो गया। चलते हुए उसने कहा—"अब मुझे विश्वास है कि मेरी माँ दवा के अभाव से मरेगी नहीं।"

कान्ति ने विश्वनाथ से पूछा—"क्या आप भी जायंगे ? हम सब लोग क्यों न चलें।"

डाक्टर आनन्द ने हँस कर कहा—"तुम सब लोग जाकर क्या करोगे ? यदि कोलियाटा की माँ को यहाँ लाना पड़ा तो उसमें बाधा पड़ेगी। कोलियाटा और मेरा जाना ही यथेष्ठ है।

इसका प्रतिवाद किसी ने नहीं किया, और सब चुपचाप चाय पीने लगे।

— १५ —

जब डाक्टर आनन्द के साथ कोलियाटा दोपहर के लगभग अपने गाँव बोडोलो पहुँचा, तब उसकी माँ जीवित थी। गाँव के मुखिया ने डाक्टर आनन्द का स्वागत करते हुए कहा—"अब कोलियाटा की माँ अच्छी हो जायगी,

आपका यश तो चारो तरफ फैला हुआ है। हमारे लिए तो आप प्राण दाता देवता की भाँति हैं। पन्द्रह दिनों से उसकी माँ बीमार है। मैंने देशी डाक्टरों से इलाज कराया, किन्तु उससे कुछ लाभ नहीं हुआ। कल रात से उसकी हालत अधिक चिन्ता जनक है।"

डाक्टर आनन्द ने उसकी सेवा की प्रशंसा करते हुए कहा—"आप जैसे दयालु पुरुषों से यही आशा थी। आप ही के भरोसे कोलियाटा अपनी माँ को छोड़कर गया था। सबसे पहले मैं उसकी परीक्षा करना चाहता हूँ।"

"आइए!" कह कर वह मार्ग प्रदर्शित करते हुए आगे बढ़ा। डाक्टर आनन्द ने देखा कि फटे-पुराने चिथड़ों से लिपटी हुई एक बृद्धा पृथ्वी पर पड़ी हुई, कराह रही है। कोलियाटा को देखते ही उसने दोनों हाथ फैला दिए, और जब वह उसके समीप जाकर बैठ गया तो उसने उसे अपनी छाती से लगा लिया। उसका सञ्चित वात्सल्य द्रवित होकर बहने लगा। वह भी उसके साथ सिसकने लगा। डाक्टर आनन्द ने देखा कि वृद्धा यद्यपि मैली-कुचैली थी, किन्तु उसका मुख एक दिव्य ज्योति से चमक रहा था। उसके शरीर का वर्ण भूरा था, और अपने यौवन काल में वह अवश्य सुन्दरी रही होगी। कोलियाटा ने उनका परिचय दे दिया था। वृद्धा उत्सुकता से उनकी ओर देखने लगी। उन्होंने उसकी नाड़ी की परीक्षा करके कहा—"अब तो हालत पहले की अपेक्षा ठीक है। कमजोरी बहुत है, और छाती तथा गले में कफ जकड़ गया है। कोई घबड़ाने की बात नहीं है, यह बहुत शीघ्र अच्छी हो जायगी।"

कोलियाटा की निराशा अब आशा में परिणत होने लगी। उसने मुदित कण्ठ से कहा—"मेरी माँ, प्यारी माँ, अब तू बहुत शीघ्र अच्छी हो जायगी। जानती है यह साक्षात देवता हैं। मैं इसी देवता के पास रहता हूँ। अब तू अच्छी हो जायगी, माँ, तब मैं तुझे अपने साथ ले चलूँगा। अब तुझे कभी नहीं छोड़ूँगा।" कहते-कहते उसने माँ की छाती में अपना सिर छिपा लिया। उसकी माँ उसके सिर पर अपना प्यार हाथों के द्वारा उड़ेलने लगी।

डाक्टर आनन्द की आँखों के सामने एक बार वह दृश्य नाच गया जब

उनकी पत्नी देवराज और सुहासिनी को अपने हृदय से चिपकाए अपनी अन्तिम श्वासें ले रही थी। उनके मुख से एक विश्वास निकल गई।

पानी गरम करके उन्होंने इन्जेक्शन लगाने की तैयारी की, और ज्योंही पिचकारी लेकर उसका हाथ पकड़ सुई लगाने की चेष्टा की, त्योंही सुई को देख कर वृद्धा चिल्ला उठी, और कोलियाटा से बोली—"यह तो मेरे ऊपर जादू करता है। इसको मेरे पास से हटाओ, नहीं तो मैं मर जाऊँगी।"

कोलियाटा ने उसे समझाते हुए कहा—"माँ, यह विलायती चिकित्सा है। क्या मैं तुम्हारी कोई हानि होने दूँगा। इस सुई से तुम्हारे शरीर में दवा डाल देंगे और तुम बहुत शीघ्र अच्छी हो जाओगी।"

यह कह कर उसने अपनी माँ का हाथ पकड़ लिया, और डाक्टर आनन्द ने सुई प्रवेश कर दी। सुई घुसते वृद्धा चिल्लाई, और वह इतना फटफटाने लगी कि कोलियाटा को अपनी सम्पूर्ण शक्ति से उसे थामे रहना पड़ा। उस समय तक अंग्रेजी डाक्टर के आने का समाचार गाँव भर में फैल गया था, इससे कई उत्सुक व्यक्तियों की भीड़ से मुखिया के घर की दालान भर गई थी। डाक्टर आनन्द को सभी भय मिश्रित आश्चर्य से देख रहे थे।

डाक्टर आनन्द ने कोलियाटा से कहा—"अब आज शाम तक तुम्हारी मां की हालत में सुधार हो जायगा। छाती की जकड़ भी ढीली हो जायगी, और साँस लेने में घुटन अभी हो रही है वह दूर हो जायगी।"

कोलियाटा डाक्टर आनन्द के भोजन आदि का प्रबन्ध करने के लिए चला गया। वृद्धा औषधि की गर्मी पाकर सो गई।

मुखिया सुलझे विचारों का व्यक्ति था। पश्चिमीय सभ्यता के प्रभाव से वह गाँव में सुधार कार्य करने को सदैव उत्सुक रहता था। डाक्टर आनन्द से उसने एक सार्वजनिक सभा में बोलने के लिए अनुरोध किया, जिसे उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया। इस समय केनिया में अपनी मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता के लिए वहाँ के निवासी आन्दोलन चला रहे थे। अंगरेजो की कूट-नीति वहाँ भी चल रही थी, और उन्होंने प्रवासी भारतीयों को निकालने के

लिए वहाँ के मुख्य-मुख्य नेताओं को भड़काया था। किन्तु उनकी वह नीति सफल न हो सकी, और माओ-माओ आन्दोलन उनके विरुद्ध भी छिड़ गया। डाक्टर आनन्द के व्याख्यान का यही आशय था कि प्रवासी भारतीय केनिया भूमि पर अपना अधिपत्य नहीं जमाना चाहते, वरन् वहाँ के देश वासियों के साथ वे भी उनके स्वतन्त्रता आन्दोलन में सहायता देने को तैयार हैं। उन्होंने सबको एक सूत्र में बँध जाने की अपील की, तथा सामाजिक सुधार के लिए जोर दिया। उनको देश की निरक्षरता मिटाने का उपदेश दिया, और भारत की भाँति अहिंसा नीति को ग्रहण करने का आग्रह प्रकट किया। उनकी निष्कपट बातों का गाँव वालों पर बहुत प्रभाव पड़ा, और उनको प्रशंसा चारों ओर होने लगी।

रात्रि में गाँव की चौपाल में भी ग्राम निवासी पर्याप्त संख्या में एकत्रित हुए तथा अनेक प्रश्नों पर विचार हुआ। डाक्टर आनन्द ने गाँव में सुधार कार्य के लिए पांच सौ पाउन्ड देने का का वचन दिया, जिससे एक पाठशाला तथा चिकित्सालय का प्रबंध करने की बात निश्चय की गई, तथा एक काम चलाऊ योजना भी बन गई। मुखिया ने भी अपनी ओर से उस निधि में पचास पाउन्ड देने का वचन दिया। उन्होंने डाक्टर आनन्द से यदा-कदा पधार कर ग्राम के सुधार कार्य को निरीक्षण करने का आग्रह प्रकट किया।

प्रातःकाल तक कोलियाटा की माँ की दशा में बहुत सुधार हो गया था। डाक्टर आनन्द ने उसे नैरोबी ले चलने का सुझाव दिया। मुखिया ने पहले उनकी यह बात नहीं मानी, क्योंकि उसे भय था कि कोलियाटा की मां, जो उनके वहाँ आने-जाने का एक सूत्र हो गई है, के चले जाने से शायद वे न आ सके। किन्तु जब उन्होंने प्रत्येक छ मास में एक बार आने का वचन दिया तो उसने कोलियाटा की मां को साथ भेजने की अनुमति दे दी।

वृद्धा की सारी जमा-पूँजी टीन के एक बकस में थी, जिसको वह अपने पास से कभी विलग न करती थी। बीमारी की अवस्था में भी वह उसे अपने सिरहाने रखे हुई थी। कोलियाटा ने उसे मुखिया के पास छोड़ जाने की इच्छा प्रकट की, किन्तु उसकी मां ने यह स्वीकार नहीं किया। उसने उसे दोनों हाथों से पकड़े हुए कहा कि उसमें उसके पिता की स्मृति दिलाने वाली वस्तुएँ संग्र-

हीत है, जिन्हें वह एक क्षण के लिए पृथक नहीं कर सकती। डाक्टर आनन्द ने उसका इतना आग्रह देखकर उसे अपने साथ ले लेने की अनुमति दे दी।

जब डाक्टर आनन्द चलने को उद्यत हुए तो एक प्रकार से सभी गाँव निवासी उनको चारों ओर घेर कर खड़े हो गए। एक ही दिन में वे सब के प्रिय हो गए थे, और किसी की इच्छा न थी कि वे इतनी जल्दी जांय। उनको गाँव की सीमा तक पहुँचाने के लिए वे सब आए, और कोलियाटा से बार-बार उन्होंने कहा कि वह उनकी ओर से गाँव आने की याद सदैव दिलाता रहे। गाँव के बाहर पहुँच कर डाक्टर आनन्द ने पुनः एक छोटा व्याख्यान दिया, और आशा प्रकट की जब वे पुनः आएगें तो उनको बहुत कुछ परिवर्तन देखने को मिलेगा। ग्राम निवासियों ने उन्हें विश्वास दिलाया और सबसे बिदा होकर मोटर में बैठ उन्होंने स्वयं स्टीयरिंग सम्हाला। कोलियाटा को उन्होंने पिछली सीट पर अपनी माता को पकड़ कर बैठने का आदेश दिया। गाँव वालों ने हर्ष ध्वनि के साथ उन्हें बिदा की। धीरे-धीरे मोटर आगे बढ़ी।

गांव की परिधि को पार करते हुए उन्होंने स्वगत कहा—"सभी जगह मानवता का एक ही रूप है। रंगो का भेद केवल चमड़े तक सीमित है। इन रंग-विरंगे चमड़ों के भीतर बसने वाली भावनाएँ तो सर्वत्र एक हैं। रञ्चमात्र भी भेद नहीं है। भेद की सृष्टि केवल स्वार्थ करता है।"

ऐसे ही विचारों में निमग्न वे नैरोबी की ओर जा रहे थे।

— १६ —

नैरोबी आकर कोलियाटा की माँ के स्वास्थ्य में आशातीत सुधार हुआ। पौष्ठिक भोजन और उपचार ने पुनः उसको थोड़े दिनों में स्वस्थ कर दिया। सुहासिनी तथा कान्ति ने भी बहुत स्नेह के साथ निष्कपट हृदय से उसकी सेवा-सुश्रूषा की, जिससे वृद्धा को असीम सन्तोष हुआ। वह उन्हें देखते ही अपने अजस्र आशीर्वादों से विह्वल कर देती, और यद्यपि वे उसे बार-बार मना करती

किन्तु वह इसके अतिरिक्त दे ही क्या सकती थी। कोलियाटा उसके उपकारों के बोझ से दबा जा रहा था, और वह नहीं जानता था कि वह प्रत्युपकार क्या करे।

वृद्धा ने अपना नाम बताया, टिलकूमा। बोडोलो से आने के लगभग दो सप्ताह पश्चात् जब वह पूर्ण निरोग हो गई तो उसने कोलियाटा से कहा कि वह झाड़ने-बुहारने का काम स्वयं किया करेगी। उसने आपत्ति की, किन्तु उसने उसके सारे कारणों को अग्राह्य किया, झाड़ू लेकर कमरों की सफाई करने के लिए चल दी। सुहासिनी और डाक्टर आनन्द ने भी उसे काम करने के लिए मना किया, किन्तु उसने उनकी बात न मानी, और यहाँ तक कहा कि यदि वे लोग उसे अपने घर में रखना चाहते हैं, तो उसे काम करने की अनुमति दें, नहीं तो उसको बोडोलो भेज दें। डाक्टर आनन्द को हार मान कर उसे उसकी इच्छानुकूल काम करने का अनुमति देना पड़ा।

मध्याह्न भोजन के पश्चात् डाक्टर आनन्द आराम कुर्सी पर लेटे हुए झपकियाँ ले रहे थे। सुहासिनी भी कुछ दूर कुर्सी पर बैठी देवराज के लिए पुल-ओवर बिन रही थी, कि अचानक कान्ति आ गई। उसका स्वागत करते हुए सुहाहिनी ने कहा—"आज क्या बात है जो इतनी जल्दी आ गई?"

कान्ति के मुख पर एक अद्भुत प्रसन्नता की छाप थी। उसने मन्द-मुस्कान के साथ कहा—"यहाँ पिताजी सो रहे हैं, हमारी बातचीत से उनकी नींद में बाधा पड़ेगी। आओ किसी दूसरे कमरे में चल कर बैठें। आज एक बड़ी प्रसन्नता की बात बताने आई हूँ।"

सहासिनी उसको अपने कमरे में ले गई, और उसको पलँग पर बैठाते हुए कहा—"आजकल तो तुम आनन्द की सरिता में बह रही हो। नित्य ही हर्ष की हिलोरें लिया करती हो। जब से मैं मोम्बासा से कप्तान सुरेशचन्द्र को बिदा कर नैरोबी आई हूँ, तब से तुममें एक अद्भुत परिवर्तन देख रही हूँ। न-मालूम मेरी अनुपस्थिति में बड़े भैया ने क्या जादू कर दिया कि अब तुम मुझे छुआई नहीं देती।"

कान्ति ने रुआसी मूर्ति बनाते हुए कहा—"अच्छा, यदि तुमको मेरी रुआसी सूरत देखने में आनन्द आता है तो मैं अब वैसी ही रहा करूँगी।"

"अरे पगली, मैं यह कब कहती हूँ कि तुम रोनी सूरत बनाए रहो। मैं तो इस परिवर्तन का कारण पूछती हूँ?"

"इसका कारण तो मैं स्वयं नहीं जानती। शायद मोम्बा की प्रेतात्मा ने यह परिवर्तन घटित किया हो।"

"प्रत्येक बादल में बिजली की छटा भी छिपी रहती है, और बुराई में भलाई। लेकिन कौन सी खुशखबरी सुना रही थी।"

कान्ति ने अपने ब्लाउज की जेब से एक पत्र देते हुए कहा—"इसे पढ़ जाओ, सब मालूम हो जायगा।"

सुहासिनी उत्सुकता से पत्र पढ़ने लगी। उसमें लिखा था :—

समुद्र तरंग
मलाबार हिल्स,
बम्बई-१८-१-१६... ।

प्यारी कन्तो!

प्रसन्न रहो।

तुम्हारा हवाई डाक से भेजा हुआ पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुम स्वस्थ और प्रसन्न हो। सन्तान की प्रसन्नता ही माँ की प्रसन्नता है। यह जानकर निश्चिन्त हुई कि वह व्यक्ति जिसके सम्बन्ध में तुम्हें आशंका थी, वह तुम्हारे सौतेले भाइयों का गुप्तचर नहीं है, वरन वह सत्य ही तुम्हारी भाँति अन्वेषण के लिए केनिया गया हुआ है। मुझे विश्वास है कि तुमने सब प्रकार से निश्चय करके ही ऐसा लिखा है। शायद तुम नहीं समझ सकती कि तुम्हारे पत्र से कितनी चिन्ताओं का निराकरण हुआ है, और सच्ची बात है कि मैं उसी रात को सुख से सोई हूँ, जिस दिन तुम्हारा वह पत्र मिला। इसके पहले मेरे मन की वेदनाओं का तुझे किस प्रकार आभास कराऊँ। उनकी झलक तभी मिल सकती है, जब तुम भी माँ बनोगी। भगवान ने न-मालूम किस वस्तु से माँ के मन का निर्माण किया है।

तुमने विवाह करने की अनुमति माँगी है। माँ के जीवन में इससे अधिक सुख का प्रसंग नहीं आता। मैंने तो स्वयं कई बार तुमसे अनुरोध, प्रार्थना, विनय, कुछ भी कह लो, किया कि तुम पढ़ना-लिखना छोड़कर गृहस्थ जीवन में

प्रवेश करो, किन्तु तुमने कभी उस पर ध्यान नहीं दिया। तुम्हारे मन में न जाने क्यों समस्त पुरुष जाति के प्रति घृणा, और विद्वेष की भावना भर गई थी! मैं स्वीकार करती हूँ कि तुम्हारे सौतेले भाइयों का कटु-व्यवहार और उनके द्वारा हमारे विरुद्ध किए गए षड़यन्त्रों ने ही तुम्हें पुरुष जाति का विरोधी बना दिया था, किन्तु मेरी प्राणाधार तुमको मैंने यह बारम्बार बताया कि सब पुरुष तुम्हारे सौतेले भाइयों की भाँति कुकर्मी नहीं होते। तुम्हारे पिता भी तो एक पुरुष थे, जिनका गुणगान मैं निरन्तर बीस वर्षों से करती हुई नहीं थकती। उन्हीं के नाम की माला रात दिन जपा करती हूँ। मैं अब भी बराबर यही प्रार्थना करती हूँ कि यदि पुनर्जन्म की कथा सत्य है तो मुझे पुनः उनकी ही चरण सेवा करने का अवसर मिले। मुझे विश्वास है कि भगवान मेरी प्रार्थना पूरी करेंगे क्योंकि रात दिन यही लौ लगाए जी रही हूँ, और प्राणान्त काल में भी यही एक मात्र इच्छा रहेगी।

स्त्री और पुरुष दो व्यक्ति नहीं है। उनका पृथक व्यक्तित्व होते हुए भी, उनकी इकाई गृहस्थ जीवन में पनपती है और निखरती है। अन्योन्याश्रित रह कर वे अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को एकता में परिणत कर जीवन का विकास करते हैं। संसार की कोई वस्तु, चेतनया जड़ का बिल्कुल स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। यदि ऐसा होना संभव हो सके तो विकासोन्मुख ब्रह्माण्ड का कभी न कभी अन्त होकर ही रहेगा, अथवा सृष्टि का ही विकास बन्द हो जायगा, जो नैसर्गिक नियमों के प्रतिकूल है। स्त्री और पुरुष का जीवन तभी सुखी होगा जब दोनों अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिहार करें, और वह स्वतंत्र व्यक्तित्व क्या है, वह है स्वार्थ की भावना? वस्तुतः यह स्वार्थ ही सब अनर्थ का मूल होता है। दाम्पत्य जीवन का विकास तभी होता है, जब दोनों अपने-अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को एक दूसरे पर निछावर कर देते हैं। बेटी, मैंने इसी पथ पर चल कर तुम्हारे पिता को अपने निजत्व में समाविष्ठ कर लिया था, क्योंकि मैं भी उसी भाँति अपने निजत्व को त्याग उनमें समा गई थी। तुम्हें आश्चर्य होगा यह जानकर कि उनके मन में जो विचार और भावनाएँ उठती थी, वे एक क्षण भी मुझसे छिपी न रहती थी, वरन तत्सम विचार तथा भावनाएँ मेरे मन में

बिना उनका संकेत पाए हुए उत्पन्न हो जाती थी। उसी प्रकार मेरी भावनाएँ भी उनसे छिपी नहीं रहती थी। ऐसा क्यों था ? यह केवल इस लिए घटित होता था क्योंकि हमारे स्थूल शरीरों के मिलन के साथ हमारे सूक्ष्म शरीर भी घुल मिल कर एक हो गए थे। हमारे बाहर-भीतर का तार-तार एक दूसरे से बटा जाकर रस्सी की ऐंठन की भाँति घुलमिल कर एक हो गया था। दो तारों की एँठन ही उन्हें जिस प्रकार दृढ़ रज्जु में परिणत करती है, उसी प्रकार स्त्री के अन्तरंग तथा वहिरंग से जब पुरुष का अन्तरंग और वहिरंग मिल जाता है, तथा पारस्परिक विश्वास और त्याग उसमें ऐंठन लगाते हैं तब दाम्पत्य जीवन भी सुदृढ़ होता है, और उसे कोई सहज नहीं तोड़ सकता। तपस्या और साधना से ही सब दुर्लभ वस्तुएँ प्राप्त होती है, तथा इसी तपस्या और साधना से दाम्पत्य जीवन भी सुखी होता है। अपने वैवाहिक जीवन को यदि तुम मेरे बताए हुए पथ पर चलकर बिताओगी तो अवश्य तुम्हें ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त होगा, और जिसे ईश्वर की कृपा प्राप्त होती है, उसको चरम शान्ति और सुख मिलता है। ईश्वरत्व का विकास भी इसी में निहित है, इसीलिए हमारे प्राज्ञ पुरुषों ने दाम्पत्य जीवन को परम श्रेष्ठ बताया है, क्योंकि वह निरन्तर त्याग तथा तपस्या की प्रयोग शाला से गुजरता हुआ पल-पल में निखरता रहता है।

तुमने अपने लिए बर चुन लिया है, मेरे लिए इससे अधिक सुखद समाचार नहीं हो सकता। मुझे विश्वास है कि तुमने अपने अनुकूल ही उसे चुना होगा और तुम अपना सर्वस्व उसको समर्पण कर उसे अपना बना सकोगी। अभी तक माता-पिता यह गुरु भार बहन करते आए थे, क्योंकि पुत्रियों का सांसारिक ज्ञान तथा व्यवहारिक पटुता अपरिपक्व होती थी, किन्तु तुममें वह न्यूनता नहीं है। सांसारिक कूटनीति से तुम ठोकरें खाकर पूर्णतया भिज्ञ हो चुकी हो। अतएव निष्कपट मन से अपना सर्वस्व अपने देवता के चरणों में चढ़ा देना। जब तुम्हारा हृदय शुद्ध होगा, तुम्हारी भावनाएँ पवित्र होगी तब तुम्हारा हृदय-दान बरबस तुम्हारे बर से उसका हृदय भी प्रतिदान में प्राप्त करने में समर्थ होगा। दान देकर ही प्रतिदान मिलता है यही प्राकृतिक नियम है, तथा ध्रुव सत्य है।

मैं अवश्य तुम्हारे वर को देखना चाहती हूँ और यहाँ आने तक उस लोभ को संवरण नहीं कर सकती। अभी तक कोई दिन अपनी यात्रा का स्थिर नहीं किया है, किन्तु शीघ्र ही करूँगी।

इधर तुम्हारे सौतेले भाइयों का कुचक्र चल ही रहा है, उनसे अपनी यात्रा का दिन छिपाना है, इसलिए जिस दिन सुयोग मिला चल दूँगी। अब शायद तुमको पत्र भी न लिख सकूँ, इसलिए तुम इसका उत्तर न देना, और मेरे पहुँचने की प्रतीक्षा करो।

मॉँ के समस्त आर्शीवाद के साथ,

मंगल कांक्षिणी

तुम्हारी मां, राजेश्वरी

सुहासिनी ज्यों-ज्यों पत्र पढ़ती जाती थी, त्यों त्यों उसके मुख का उतार-चढ़ाव उसके मन की भावनाओं को व्यक्त कर रहा था। वह कभी मुग्ध होती, कभी चकित होती और कभी प्रसन्न होती थी। पत्र समाप्त कर उसने कहा—"अच्छा अब आपका रहस्य खुला। वह कौन भाग्यवान है यह तो बताने की कृपा करो।'

कान्ति ने अरुण कपोलों के साथ कहा—"मुझे नहीं मालूम।"

"क्यों ऊँट की चोरी निहुरे-निहुरे करना चाहती हो ?

"चोरी भी क्या डंके की चोट पर की जाती है, वह तो छिपकर की जाती है।"

"बड़े भैया के अतिरिक्त और कैसे हो सकता है।"

"क्यों, क्या तुम्हारे बड़े भैया ही एक अनोखे हैं जिनके सुर्खाब के पर लगे हैं।"

"आज-कल तो उन्हीं के गीत गाती थी, क्यों ?"

"जब मैं विवाह की बात करती थी तब कितना चिटकती थी। कहती थी, कि विवाह करना दासता का यह पट्टा लिखाना है। मातृत्व एक बोझ है। विज्ञान की सहायता से बिना विवाह किए ही सन्तान उत्पन्न की जा सकती है।

न-मालूम ऐसी कितनी बातें बनाती थी। मैं क्या जानती थी कि हाथी के दांत दिखाने को और हैं, और खाने को और। तुम भी बड़ी गहरी निकली। वर चुन भी लिया, और कानों-कान किसी को खबर नहीं हुई।" कहते हुए उसने उसे अंक में भर कर उसका कपोल चूम लिया।

कान्ति ने लज्जा कर कहा—"अभी कुछ ठीक नहीं है। मैंने अपने विचार मां पर व्यक्त किए थे, उसका उत्तर आया है।"

"हां, हां, सब जानती हूँ, अब तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं कर सकती।" चलो, पापा को यह समाचार सुनावें, उन्हें हार्दिक प्रसन्नता होगी।"

"नहीं, नहीं, मैं तुम्हारे पांव पड़ती हूँ, कोई बात अभी उनसे न कहो। मेरी मां को आ जाने दो।" वे शीघ्र ही आ जाएँगी, तब तक तुम इस बात को छिपाए रहो।"

"शायद, इसी भाँति तुमने बड़े भैया के पाँव पड़ कर इस भेद को छिपाने के लिए मना कर दिया होगा।"

कान्ति चुप रही।

"तुम्हारा मौन कह रहा है कि तुमने उन्हें कहने से अवश्य मना किया है, नहीं तो कम से कम वे मुझसे अवश्य बताते। तुमने बिना विवाह हुए ही भाई-बहिन के प्रेम में भेद-भाव उत्पन्न कर दिया। विवाह होने से पश्चात्, शायद तुम उनको हम लोगो से बिल्कुल ही छीन लोगी। कान्ति, यह तुम्हारा अत्याचार मैं सहन नहीं कर सकती।" सुहासिनी ने हँसती हुई आँखों के साथ कहा।

"मैं तो अभी उन्हें सम्पूर्ण रूप से तुम्हें सौंपने को तैयार हूँ, बोलो उनसे विवाह करोगी। पिताजी की भी यह एकान्त कामना है।"

"क्या बकती हो, पहले अपनी लगी तो बुझाओ, फिर दूसरे घर की अग्नि बुझाने के लिए दौड़ना।"

"नहीं दीदी, मैं सत्य कहती हूँ कि मैं तुम्हारे लिए उनको त्यागने को तैयार हूँ।"

"चुप, पगली, यदि मेरी यह इच्छा होती तो······।"

"मेरी बारी ही न आने पाती, क्यों ? कान्ति ने वाक्य पूरा करते हुए कहा।

इसी समय उन्हें एक चीख सुनाई दी। कान्ति ने घबड़ा कर कहा—"क्या बात है, यह किसकी चिल्लाहट है।"

"स्वर से तो यह टिलकूमा—कोलियाटा की माँ का कंठ स्वर मालूम होता है। चले देखें क्या बात है ?"

कान्ति, सुहासिनी और डाक्टर आनन्द टिलकूमा को ढूँढ़ते हुए विश्वनाथ के कमरे में पहुँचे जहाँ वह खड़ी हुई विस्फारित नेत्रों से उनके पिता के तैल चित्र को टकटकी बाँधे देख रही थी। द्वार पर उनको देख कर उसने भर्राए हुए कंठ से पूछा—"यह चित्र बताओ, तुमने कहाँ पाया ?"

सुहासिनी ने किञ्चित रुक्षता के साथ कहा—"क्यों, यह तो हमारा है, कई वर्षों से हमारे पास है।"

टिलकूमा उसे बार बार देख कर कह रही थी—"निश्चय ही यह उनका है। देखो, ठीक उसी तरह का मुँह है, नाक है, आंखें हैं, कान है, वैसी ही पगड़ी है, और वैसे ही पहनने के कपड़े हैं। उनकी आंखों से दया, करुणा उसी भाँति बह रही है, जैसे उनकी जीवित अवस्था में बहती थी। यही मूर्त्ति तो मेरी आखों में दिन रात बसी रहती है। अच्छा, अभी अपने चित्र से इसका मिलान करके देखती हूँ।" कहती हुई वह सब को विक्षिप्तों की भाँति ठेलती कमरे के बाहर निकल गई। सुहासिनी ने चकित होकर कहा—"क्या बात है, यह बुढ़िया पागल तो नहीं हो गई है।"

कान्ति ने उसका समर्थन करते हुए कहा—"शायद ऐसा ही है। जब से यह आई तभी से यह पागल-सी दिखाई पड़ती है। कोई नई सनक सवार हुई है। मैं हजार कहती हूँ कि तू अब आराम कर बूढ़ी हो गई है, तुझसे कोई काम काज नहीं होगा, लेकिन मानती ही नहीं। मस्तिष्क किसी कारण से गरम हो गया है।"

डाक्टर आनन्द अभी तक चुप-चाप खड़े सब व्यापार देख रहे थे। उन्होंने

कुछ सोचते हुए कहा—"नहीं सुहास, वह विक्षिप्त नहीं है। यदि इस समय वह विक्षिप्त है तो ज्ञान वह कभी जीवन भर नहीं रही। धैर्य धरो एक बड़े भेद का भन्डा फोड़ होने वाला है, मेरा ऐसा विश्वास है। अभी तक जन्जीर की जो कड़ी खोई हुई थी, वह शायद आज मिल जाय।"

सुहासिनी ने कान्ति से धीमे शब्दों में कहा—"पापा का दार्शनिक ज्ञान सजग हो गया है अब वे न-मालूम एक कड़ी क्यों, कितनी ही कड़ियाँ खोज निकालेगें।"

इसी समय टिलकूमा एक फटा पुराना कागज लिए हुई आई, और विश्वनाथ के पिता के चित्र के सामने खड़ी होकर मिलान करती हुई कहने लगी—"आओ, आओ, देखो, अपनी आँखें फाड़ कर देखो। दोनों चित्र एक ही व्यक्ति के हैं या नहीं। मैं कहती हूँ, कि इस चित्र का पुरुष वही है, जो मेरे इस चित्र में अंकित है, जो मेरे जीवन का सम्बल अभी तक रहा है, जिसको देखकर अपने मन की ज्वाला बुझाने का प्रयत्न करती थी। देखो, देखो, मैं कहती हूँ, देखो, और पहचानो, क्या यह दोनों एक नहीं हैं।" कहते-कहते उसने वह फटा तथा अस्पष्ट चित्र डाक्टर आनन्द को दे दिया।

डाक्टर आनन्द, सुहासिनी और कान्ति उसको देखने लगी। वह स्पष्ट विश्वनाथ के पिता जगन्नाथ के चित्र से मिल रहा था। अन्तर था केवल इतना कि विश्वनाथ के कमरे में लगे हुए चित्र में मूँछे बड़ी थी और इसमें छोटी। आठ-दस वर्षों में जो अन्तर पुरुषों की आकृति में पड़ा करता है, उसके अतिरिक्त वह दोनों एक ही व्यक्ति के चित्र थे।

डाक्टर आनन्द ने धीरता के साथ पूछा—"तुम्हारा यह चित्र तुम्हारे किस व्यक्ति का है, कोलियाटा की माँ।"

"इतना भी नहीं समझ सकते, कि यह कोलियाटा के पिता का है, और किसका है? बताओ, वे क्या अब भी जीवित है! अवश्य होंगे, जब मैं जीवित हूँ, तब वे भी जीवित होंगे। बताओ वे कहाँ मिलेंगे। मैं जाकर कोलियाटा को उनको सौंप दूँ, और कहूँ कि 'यह अपनी धरोहर लो, मैंने बत्तीस वर्ष तक

इसको अपनी छाती से लगाए द्वार-द्वार भीख मांगती फिरती रही, अब तुम इसको लो, जिससे मैं सुख से मर सकूँ ।"

डाक्टर आनन्द के अतिरिक्त कान्ति और सुहासिनी विस्फारित नेत्रों से कभी जगन्नाथ का तैलचित्र, कभी डाक्टर आनन्द के हाथ में दिया हुआ टिलकूमा का चित्र, और कभी वृद्धा को देखती।

डाक्टर आनन्द ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा—"भगवान की कृपा से वह कड़ी मिल गई। कोलियाटा दरअसल विश्वनाथ का सौतेला बड़ा भाई है, और यह वृद्धा उनकी सौतेली माँ। कोलियाटा और विश्वनाथ में इतना सादृश्य कैसे है, इसका कारण समझ में नहीं आता था, आज वह स्पष्ट हो गया।"

फिर टिलकोमा से कहा—"आज मेरे जीवन का सबसे बड़ा दिन है। घर बैठे प्रभु की कृपा से गंगा आ गई है। भाई जगन्नाथ की आत्मा स्वर्ग में मुस्करा रही होगी। आप मेरे लिए देवी भाँति पूज्य हैं। कौन जानता था कि हम सब इतनी जल्दी इस संसार में मिल जायँगे। सत्य है, मनुष्य केवल कठपुतली की भाँति नाचता है, और नचाने वाले वह महाप्रभु हैं, जो अपने रहस्यपूर्ण हाथों से झटके देकर कभी हमें मिला देते हैं, और कभी पृथक करते हैं। भाभी अपनी चरण धूलि देकर मुझको पवित्र होने दो। मेरा जीवन तो स्वयं तीर्थराज प्रयाग बन गया है।" कहते-कहते वे अधीरता के साथ वृद्धा की चरण धूलि लेने के लिए झुके।

टिलकूमा कुछ न समझी और मूक तथा आवाक होकर उनकी ओर देखने लगी

× × ×

जब कोलियाटा और विश्वनाथ ने एक साथ घर में प्रवेश किया तो उनको परिवर्तित वातावरण दिखाई दिया। कोलियाटा को देखते ही टिलकूमा ने कहा—"तेरे बाप का पता लग गया बेटा। उनका चित्र इस घर में है। वे अपने देश चले गये हैं। मुझको वहाँ ले चल।"

कोलियाटा और विश्वनाथ दोनों अवाक होकर देखने लगे। डाक्टर आनन्द ने कहा—"भैया विश्वनाथ, आज भगवान की बड़ी कृपा हुई है। कोलियाटा, जिस भगवान के रहस्यमय हाथ ने यहाँ कई महीने पहले हमारे पास पहुँचा दिया था, वस्तुतः तुम्हारा बड़ा भाई है, और यह जमाने के हाथों से सताई हुई तुम्हारी माँ हैं।"

विश्वनाथ को विश्वास न हुआ, और उन्होंने अनुमान किया कि डाक्टर आनन्द का मस्तिष्क विकृत हो गया है। कोलियाटा स्तंभित खड़ा कभी अपनी माँ की ओर और कभी डाक्टर की ओर देखने लगा।

डाक्टर आनन्द ने कहा—"तुम्हारे पिता जब इस देश में थे, तो उन्होंने इस स्त्री के साथ विवाह किया था, और कोलियाटा का जन्म उनके सामने हुआ। उन्होंने उसका नाम गोपाल रखा था, किन्तु उसके ननिहाल में उसे कोलियाटा कह कर पुकारा जाने लगा, तथा वही प्रचलित भी हुआ। तुम्हारे पिता, जगन्नाथ भाई ने अपने इस विवाह की चर्चा मुझसे नहीं की, क्योंकि यह गुप्त प्रेम के परिणाम स्वरूप हुआ था, और इसकी आवश्यकता इसलिए नहीं पड़ी, क्योंकि कोलियाटा का उसकी माँ के साथ हरण हो गया था, जब वह अपनी नानी के घर गई थी। भाई जगन्नाथ ने उनका पता लगाने की चेष्टा की होगी, किन्तु जब उसमें उन्हें कोई सफलता नहीं मिली, तब हार कर सन्तोष किया। यह भी संभव है कि उन्होंने इन दोनों को मृत समझ लिया हो, इसलिए उसके विषय में किसी से कुछ कहना अनावश्यक समझा हो। जब शर्त्तबन्दी कुली प्रथा टूटी और सबको जाने की छूट मिली तो वे यहाँ से स्वदेश लौट गए तथा वहाँ विवाह कर गृहस्थ जीवन में पुनः प्रवेश किया। यही कारण है कि तुम्हारी मुखाकृति और स्वभाव कोलियाटा से बहुत मिलते हैं। मैं प्रायः सोचा करता था कि वह अद्भुत अनुरूपता तुम दोनों में क्यों पाई जाती है? भाई जगन्नाथ के इस गुप्त प्रेम तथा विवाह की बात मुझे ज्ञान नहीं थी। भगवान का चमत्कार समझ कर चुप हो जाता था। मेरे विचारों की शृङ्खला में इस कड़ी के न होने से इस समानता का रहस्य समझ में नहीं आता था। आज अकस्मात कोलियाटा, जिसे मैं अब गोपाल ही कह कर पुकारूँगा, की माँ

अर्थात् भाभी जी तुम्हारे कमरे में गईं, क्योंकि वहाँ की सफाई का भार गोपाल ने ले रखा था, तब उनकी दृष्टि तुम्हारे पिता के चित्र पर पड़ी, जिसे उन्होंने तुरन्त पहचान लिया। उनके पास ही जगन्नाथ भाई के नव यौवनावस्था का चित्र था जिसे वे उनकी स्मृति के शेष सम्बल रूप में अपने पास बावजूद जीवन में इतने उलट-फेरों के सुरक्षित रूप रखे हुई थी। उसको उन्होंने आज निकाल कर मुझे दिखाया। उसको प्राप्त करते ही मेरे विचारों को खोई कड़ी भी मिल गई, और उसका निष्कर्ष मैंने तुम्हारे सामने रखा है।

विश्वनाथ गोपाल कोलियाटा के चरण स्पर्श करने के लिए ज्यों ही झुके, उसने उन्हें बीच ही में रोक कर कहा—"नहीं, ऐसा न करो, मैं तो तुम्हारा सेवक हूँ, और इसी रूप में रहने दो। भाई की अपेक्षा सेवक अधिक निकट होता है।"

दोनों गदगद होकर एक दूसरे के हृदय से चिपट गए। विश्वनाथ ने आगे बढ़कर टिलकूमा के चरण स्पर्श किए। उसने अश्रुपूरित नयनों की छाया में उन्हें अपनी गोद में बैठा लिया और प्यार करने लगी।

— १७ —

प्रयोग शाला के एक कमरे में कान्ति एक परीक्षण में तल्लीन थी। डाक्टर हाक घूमते हुए उधर आ निकले, और कान्ति से बोले—"कैसी प्रगति हो रही है, मिस कान्ति!"

कान्ति ने मुस्कराते हुए कहा—"यदि मेरा यह परीक्षण ठीक उतर गया, तो फिर विष प्रयोग से किसी की मृत्यु न हो सकेगी, तथा विष द्वारा तुरन्त मरे हुए व्यक्ति पुनः जीवन-लाभ कर सकेंगे।"

"तब तो मानव जाति का बहुत कल्याण होगा!"

"जी, हाँ, "पोटैशियम साई नाइड" जैसे उग्र विष से भी प्राण रक्षा हो सकेगी, जो अभी तक जिह्वा से लगते ही मानव का प्राण हरण कर लेता है,

परन्तु यह तभी सम्भव होगा, जब मृत्यु कुछ घंटे पूर्व हुई है।"

"मेरी बधाई स्वीकार करो, मिस कान्ति। उधर डाक्टर विश्वनाथ यह परीक्षण कर रहे हैं जिससे मनुष्य की त्वचा का रंग परिवर्त्तन हो सकेगा। श्वेत, श्याम, तथा पीत रंगों के कारण जो मानव के पारस्परिक व्यवहार में विघटन हो रहा है, उसका भी नाश सम्भावित हो जायगा।"

"जी हाँ, उनका अन्वेषण संसार से रंग-भेद की समस्या को समूल नष्ट कर देगा, उसके प्रयोग से काले रंग के मनुष्य भी श्वेत वर्ण के हो सकेंगे।"

"आप दोनों भारतीयों को पाकर मैं अपने को धन्य समझ रहा हूँ। वस्तुतः संसार में शान्ति स्थापित कराने में भारत समर्थ होगा।"

"जी हाँ, हमारे देश की वैदेशिक नीति तो यही है, कि संसार में शान्ति स्थापित हो।"

"और आप दोनों उसमें विज्ञान द्वारा सहायक होंगे, यह मेरे लिए भी तो अत्यन्त गौरव की वस्तु है।"

इसी समय विश्वनाथ, जो कान्ति से मिलने के लिए प्रायः आ जाया करते थे, वहाँ आ गए। उनको देखकर डाक्टर हाक ने उल्लास के साथ कहा—"आइए डाक्टर विश्वनाथ, मिस कान्ति को बधाई दीजिए। वे अपने परीक्षण में लगभग सफल हो रही हैं। विष प्रयोग से मृत्यु अब संसार में न होगी।"

कान्ति ने सलज्ज कण्ठ से कहा—"परीक्षण सफल तो होने दीजिए, अभी बधाई देने का अवसर नहीं आया है।"

"वह शीघ्र ही आ जायगा। जब विष-प्रयुक्त चूहों को पुनर्जीवित किया जा सका है, तो मनुष्यों को भी पुनः जीवन प्रदान किया जा सकेगा, इसमें तनिक सन्देह नहीं है। कहिए, आपने कहाँ तक प्रगति की है?"

"मेरा परीक्षण अभी चल रहा है, अभी तक कोई निश्चित परिणाम पर

नहीं पहुँच सका हूँ। यदि मैं सूर्य किरणों से आणविक शक्ति प्राप्त करने में सफल हुआ, तो अवश्य ही उससे मुझको बहुत सहायता मिलेगी। वस्तुतः सूर्य ही ससार के सभी तत्वों का जनक है, और उसकी किरणों से प्राप्त होने वाली परमाणु शक्ति अपने विभिन्न समीकरणों से विभिन्न वस्तुओं को निर्माण करती है। उन समीकरणों को प्राप्त करने के लिए अपने अनुसंधान कर रहा हूँ।"

"मुझे विश्वास है कि वह भी शीघ्र प्राप्त हो जायगा। आप दोनों को पाकर मैं अपने को बहुत गौरवान्वित समझ रहा हूँ आप लोग अपने प्रयत्न में सफल हों, यही मेरी आन्तरिक कामना है।"

यह कह कर वे चले गए। उनके जाने के पश्चात् विश्वनाथ ने कान्ति से कहा—"मैं एक बहुत गंभीर विषय पर तुमसे बात करना चाहता हूँ।"

कान्ति प्रश्न भरी दृष्टि से देखने लगी।

विश्वनाथ कहने लगे—"गोपाल भैया और मेरी विमाता के प्रकट हो जाने से मेरी स्थिति में एक विशाल परिवर्त्तन घटित हो गया है। क्या ऐसी परिस्थिति में आप मेरे साथ विवाह करके सुखी हो सकेंगी, यह एक विचारणीय प्रश्न है?"

"क्यों, इससे हमारे आपसी सम्बन्ध में क्या बाधा पड़ गई?"

"यही कि इस सम्बन्ध से आपकी माता को कष्ट हो सकता है, क्योंकि मेरा परिवार अफ्रीका के आदिम निवासियों से सम्बद्ध हैं।"

"विवाह का प्रश्न तो मेरा निजी प्रश्न है। मुझे तो आपत्ति के स्थान में गौरव बोध होता है। मेरी माता इस विषय में मुझे पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान किए हुए हैं। लीजिए, यह पत्र पढ़िए, आपको सब विदित हो जायगा। वे आ रहीं हैं, और मुझे विश्वास है कि उनको भी आपत्ति के स्थान में हर्ष होगा। जितना मैं अपनी माँ को समझती हूँ, उतना आप नहीं।"

"किन्तु इसका प्रभाव मेरी आर्थिक स्थिति पर भी पड़ेगा।"

"क्षमा कीजिएगा, ऐसा कहते हुए क्या आप लज्जा बोध नहीं करते ?" कान्ति के उत्तेजित स्वर ने उन्हें सत्य ही लज्जित कर दिया। वे चुपचाप कान्ति की माता का पत्र पढ़ने लगे।

पत्र पढ़ने के पश्चात् उसे लौटाते हुए कहा—"वे बड़ी महामना हैं।"

"वे त्याग, तपस्या की मूर्त्ति भी हैं। तुमको उनका स्नेह देखकर आश्चर्य होगा। जब वे बड़े भैया और उमकी माता से भेंट करेगी।"

"बात यह है कि तुम राजपुत्री हो। राजपुत्री का सम्बन्ध मेरे जैसे घराने से करना क्या उन्हें प्रीति कर होगा, केवल यह सन्देह था।"

भीरु स्वभाव होने से आप ऐसा सोच सकते हैं। यह आपके लिए स्वाभाविक है क्योंकि मेरी एक झिड़की से आप अपने को सदैव छिपाते रहे, और कभी मेरे सामने आने का साहस नहीं किया ?"

यह कह कर वह उनका हाथ पकड़ कर हँसने लगी। और कहा—"तुम तो स्त्रियों से भी अधिक लज्जालु हो। हाँ, यदि आपको इस विवाह से कोई आपत्ति हो, तो वैसा स्पष्ट कह दीजिए, क्योंकि मैं एक असामाजिक विवाह से उत्पन्न सन्तान हूँ, और शायद अब सुहासिनी बहिन से विवाह कर लेने का विचार हो गया हो।"

"क्या बकती हो ? सुहास मेरी सगी बहिन से भी अधिक है।"

"यह तो जानती हूँ, किन्तु ...।"

"आखिर सुहास दीदी का क्या होगा ? पिता जी को भी बड़ी निराशा होगी।

"क्यों निराशा होगी, मैंने सुहास का विवाह कप्तान सुरेशचन्द्र से करने का निश्चय कर लिया है। उनको छुट्टी लेकर यहाँ आने के लिए मैंने पत्र लिख दिया है। उनके आने पर किसी उपयुक्त अवसर पर यह प्रस्ताव अपनी ओर से पिता जी के सन्मुख रखूँगा। सुहास को देश भ्रमण से प्रेम है, और वह शायद इसे स्वीकार भी करे।"

"हाँ, ठीक रहेगा, मैं भी सुहास दीदी का मन जानने का प्रयत्न करूँगी।"

"जो कुछ समझो, उसका निष्कर्ष मुझे बताना। उसके पश्चात् ही मैं पिता जी से बात करूँगा। तुम्हें कब तक छुट्टी मिलेगी।"

"आज का काम समाप्त हो गया। कहीं चलना है क्या?"

"नहीं, मैं घर जा रहा था, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो चलो।

"हाँ, हाँ, चल सकती हूँ, क्योंकि सुहास दीदी को मैंने अपने विवाह की बात बता दी है।"

"हमारे पूर्वज ठीक ही कह गये हैं कि स्त्री जाति कभी कोई भेद अधिक दिनों तक छिपा नहीं सकती।" इसके पश्चात् दोनों हँसते हुए चले गए।

— १८ —

नैरोबी के हवाई अड्डे पर मनुष्यों की भीड़ अधिक नहीं, सामान्य थी। यात्रियों की संख्या भी अधिक नहीं थी। विश्वनाथ, सुहासिनी और कान्ति उत्सुकता से आगे बढ़े, किन्तु डाक्टर आनन्द और कोलिवाटा एक स्थान पर ठहर कर प्रतीक्षा करने लगे। तार द्वारा कुछ घंटे पहले राजेश्वरी के आगमन की सूचना कान्ति को मिली थी, और वह तुरन्त ही विश्वनाथ, डाक्टर आनन्द आदि को सूचित करने के लिए उनके यहाँ दौड़ी गई। डाक्टर आनन्द इस समाचार से उत्फुल्ल हो गए और तुरन्त ही सबको लेकर हवाई अड्डे को चल दिए।

पूर्व दिशा से आता हुआ वायुयान सूर्य की किरणों से चमक रहा था। अड्डे पर पहुँच कर उसने एक परिक्रमा की, और चक्कर काटता हुआ नीचे उतरने लगा। कान्ति के हृदय की धड़कन प्रति पल बढ़ने लगी, और जब वायुयान पृथ्वी का चुम्बन करता हुआ स्थिर हुआ, तो विश्वनाथ आदि शीघ्रता से राजेश्वरी का स्वागत करने के लिए आगे बढ़ गए।

प्रायः सभी यात्री पृथ्वी की वन्दना करने के लिए उतावले थे। वे एक के पश्चात् एक उतर रहे थे। वायुयान के सम्मुख द्वार पर प्रत्येक यात्री के आगे

ही कान्ति को आशा होती कि अब उसकी माँ प्रत्यक्ष होने वाली है, किन्तु जब वह कोई दूसरा यात्री निकलता तो वह कुछ निराश होती। इस प्रकार लगभग सब यात्री उतर कर नीचे आ गए। सबके अन्त में राजेश्वरी निकली। वह भी आगत भीड़ में कान्ति को ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न करने लगी। कान्ति ने रुमाल निकाल कर अपनी उपस्थिति प्रकट करने का यत्न किया। दोनों ने एक दूसरे को देखा, और कान्ति भीड़ को चीरती हुई अपनी माँ से मिलने के लिए पागलों की भाँति दौड़ी। राजेश्वरी भी त्वरित पदों से नीचे उतरने लगी, और जैसे ही उसके चरणों ने पृथ्वी तल को छुआ, वैसे ही कान्ति उसकी छाती से लिपट गई। माता और पुत्री मिलकर एक हो गईं।

चारो ओर सम्मिलन हो रहे थे। उत्साह, तथा आनन्द का अपूव वातावरण बन गया था। जब मिलन का प्रथम उच्छ्वास धीमा पड़ा, तब कान्ति को विश्वनाथ और सुहासिनी का ध्यान आया, जो उसके पीछे राजेश्वरी का स्वागत करने के लिए खड़े थे। राजेश्वरी के अंक से निकल कर कान्ति ने सुहासिनी की ओर संकेत करते हुए कहा—"माँ, यही सुहासिनी दीदी हैं, जिनसे मुझे अपार स्नेह प्राप्त हुआ है।"

सुहासिनी चरण स्पर्श करने के लिए झुकने वाली थी कि राजेश्वरी ने उसे अपने बाहु-पास में बांध लिया, और सिर सूँघ कर उसके कपोलों पर अपने स्नेह की छाप लगा दी। विश्वनाथ का परिचय देने के लिए कान्ति का मन उतावला हो रहा था, किन्तु शब्द मुख द्वार से निकल न पाते थे। प्रत्येक पल की असफलता उसके कपोलों को बार-बार लाज की ललाई प्रदान कर रही थी। सुहासिनी ने उसके मनो भावों को लक्ष्य करके कहा—"मां जी, यह हमारे छोटे भैया डाक्टर विश्वनाथ हैं। पिताजी, और बड़े भैया वहां खड़े हुए आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"विश्वनाथ के प्रणाम करने के पूर्व ही राजेश्वरी ने उनका हाथ पकड़ कर कहा—"बेटा, तुमसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। जुग-जुग जिओ, बस यही एक आशीर्वाद मुझ दुखिया के पास देने के लिए है।" कहते-कहते उसके नेत्रों के कोणों से आनन्दाश्रु झाँकने लगे।

राजेश्वरी के दोनों पार्श्वों में सुहासिनी और कान्ति उसकी भुजाओं में अपने बाहु डाले हुए चलने लगीं, और विश्वनाथ उनका पथ प्रदर्शन करने लगे।

चलते चलते राजेश्वरी ने सुहासिनी से कहा—"बेटी, तुम्हारे छोटे भैया एक देव-पुरुष मालूम होते हैं।"

"तो मां जी, वे तुम्हें पसन्द आए? कान्ति बहिन का चुनाव गलत तो नहीं हुआ?"

राजेश्वरी प्रसन्नता और आत्म तुष्टि से तृप्त होती हुई बोली—"मेरी कल्पना से भी वे कहीं ऊँचे हैं कन्तो, तुझे बधाई देती हूँ।"

कान्ति को उसकी माँ कन्तों कह कर पुकारती थी। अपनी मां से बधाई पाकर उसका हृदय उछलने लगा, और वह सिमिट कर उसकी बा। में झूल गई।

राजेश्वरी से गिरते-गिरते बची। उसने अपने को सँभालते हुए कहा... अरे, गिरा मत देना पगली नहीं तो हँसाई होगी।"

सुहासिनी की सतर्कता से ही राजेश्वरी गिरते-गिरते बची थी। उसने हँसते हुए कहा—"अनेक परीक्षाओं के पश्चात्,......उफ!"

कान्ति ने घूमकर पीछे से सुहासिनी के चुटकी काट कर उसे आगे बोलने से मना किया।

सुहासिनी ने तिनक कर कहा—"इस प्रकार मैं डरने वाली नहीं हूँ, मैं सब भंडा-फोड़ करके मानूँगी। अब मैं तुमसे नहीं डरती, हमारी मां, मेरी बात भी सुनेगी। मेरा पक्ष अब निर्बल नहीं सबल है।"

राजेश्वरी ने हँसते हुए पूछा—"क्या बात है? कन्तों का तो स्वभाव लड़कपन से ही झगड़ालू है। इतना पढ़-लिख लेने पर भी वह स्वभाव नहीं गया।"

"बस बिना अच्छी तरह सोचे-विचारे मुझको ही पहले की तरह डांटने लगी।" कान्ति ने मान भरे शब्दों में कहा।

"तेरी आदत छिपकर शैतानी करने की है। तूने जरूर कोई गुपचुप हरकत

की होगी, जिससे सुहासिनी बोलते-बोलते रुक गई। तूने चुटकी काटी होगी, ऐसा मेरा अनुमान है। क्यों बेटी ठीक है न।"

सुहासिनी के बोलने के पूर्व ही कान्ति ने कहा—जब तुम पहले इशारा देकर बता दोगी, तो सुहास दीदी उससे लाभ उठावेंगी ही। तुम्हारी ही बात सकारेगी, देख लेना।"

"मां इसी का कहते हैं, चोरी की चोरी ऊपर से सीना जोरी। चुटकी काट और तोहमत लगाकर बरी भी हो जाना चाहती हो।" सुहासिनी ने हँसते हुए कहा।

"मैं कन्तों को अच्छी तरह जानती हूँ, बेटी। हर एक अपने बछुवे के दांत जानता है। यही तो इसका स्वभाव है, अपने आगे किसी को सुनेगी नहीं। पितृ हीन होने के और लाड-प्यार से इसकी आदतें बिगाड़ी हैं।" राजेश्वरी ने सुहासिनी की पीठ सहलाते हुए कहा।

"तुम्हारा भी तो स्वभाव सबके सामने मुझे लांछित करने का है। मुझको हमेशा बे अदब और बदतमीज साबित करती हो।"

"देखा बेटी, यह अब मुझसे भी लड़ने लगी। अभी-अभी जमीन पर पैर रखे हुए पाँच मिनट भी न बीते होंगे, बस लड़ाई ठान दी।" कहती हुई राजेश्वरी हँसने लगी।

"मां जी, यह हम लोगों से कभी हार नहीं मानेंगी, छोटे भैया ही इसको सीधी राह पर ले आयेंगे।"

"इसी से तो उनको सौंपने के लिए यहां आई हूँ।"

"ठीक है, जब लड़के को घर वाले सुधारने में असफल होते हैं, तब हार कर उसे कठोर शिक्षक को सौंपते,।" सुहासिनी कहकर कान्ति का हर्षावेग से प्लावित मुख देखने लगी।

"बात यह है कि अम्मा के लिए 'घर का जोगी, जोगड़ा, आन गांव का सिद्ध।' उनकी दृष्टि में मेरी कोई महत्ता न कभी रही है, और न रहेगी। क्या करूँ, मेरा भाग्य ही ऐसा है।"

"अरे, तेरे भाग्य की बराबरी तो इन्द्राणी भी नहीं कर सकती—इन्द्र से

भी बढ़कर अपने लिए वर पाया और लक्ष्मी जैसी ननद पाई है।" राजेश्वरी ने उसका चिवुक पकड़ते हुए कहा।

अब तक वे डाक्टर आनन्द के समीप आ गए थे। उनकी ओर संकेत हुए कान्ति ने कहा—"अच्छा, अच्छा, बहुत तारीफ न करो। देखो, सामने हमारे पिताजी डाक्टर आनन्द हैं।"

राजेश्वरी ने उन्हें प्रणाम किया। डाक्टर आनन्द ने उमगते हुए हृदय से कहा—"आओ बहिन, आज मेरा भाग्य जागा है। फिर कोलियाटा की ओर संकेत करते हुए कहा—"यह विश्वनाथ भैया के बड़े भाई हैं, जिनका जन्म इसी देश की स्वर्ण भूवि पर हुआ है।"

गोपाल कोलियाटा ने उन्हें प्रणाम किया, और सब लोग प्रसन्नता की बौछारों से सराबोर मोटरों में बैठ गए। एक में सुहासिनी और कान्ति के साथ राजेश्वरी बैठी, और गोपाल कोलियाटा ने स्टीयरिंग सँभाला तथा दूसरे में डाक्टर आनन्द और विश्वनाथ बैठ गए। दोनों मोटरें तेजी से घर की ओर चल दीं।

—१९—

केनिया पहुँच कर राजेश्वरी को हार्दिक प्रसन्नता हुई, और उसे ऐसा अनुभव होने लगा कि वह जैसे किसी स्वर्गलोक में आ गई हो, जहाँ न द्वेष है, न आशंका है और न अविश्वास है, केवल आनन्द ही आनन्द है। कान्ति के पिता के अवसान के पश्चात् उसका जीवन आसन्न मृत्यु की छाया में बीत रहा था। पग-पग पर उसे सतर्क रहना पड़ता था, और उससे जीवन नीरस, पुरुष, और विषमय हो गया था। प्रत्येक क्षण वह किसी न किसी षड़यन्त्र में फस जाने की आशंका से अभिभूत रहती, और उसे अपनी छाया तक से भय लगता था, यहाँ तक कि उसको भी अपनी होने में सन्देह होने लगता था। वह किसी परिचित या अपरिचित का विश्वास न कर सकती थी, और सदैव कछुए के अंगों की भांति अपने ही घर में बन्दी का जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर

थी। केनिया पहुँच कर उसे पूर्ण स्वतन्त्रता मिली, और मुक्त वायु मण्डल में आ कर सांस लेने का अवसर मिला। उसे डाक्टर आनन्द के संसार में प्रवेश कर असीम शान्ति, अद्भुत आनन्द, और निष्कपट आत्मीयता मिली, जिसमें उसे वह अनोखा अनुभव हुआ जो इधर कई वर्षों में नहीं प्राप्त हुआ था। एक प्रकार से वह उनके परिवार में उसी भाँति धुल मिल गई थी जैसे विश्वनाथ और कान्ति घुल-मिल गए थे। विश्वनाथ के प्रति उसका आकर्षण विशेष रूप से था। जितनी ही वह उन्हें समीप से देखती, सुनती तथा समझती, उतना ही वह कान्ति के भाग्य की सराहना करती, और उसे ऐसा प्रतीत होता कि उसकी तपस्या निष्ठा के फलस्वरूप वे उसकी कान्ति के लिए देवपुत्र की भाँति अवतीर्ण हुए हैं।

एक दिन सहसा कप्तान सुरेशचन्द्र भी विना पूर्व सूचना दिए वायुयान द्वारा नौरोबी पहुँच गए। जिस समय वे डाक्टर आनन्द के घर पहुँचे, उस समय उनके परिवार के सभी सदस्य, कान्ति और राजेश्वरी भोजन करने के लिए बैठे थे। सुरेशचन्द्र को सहसा वहाँ देख कर सभी चकित हुए तथा कई क्षणों तक आवाक होकर उन्हें देखते रहे। सब से पहले विश्वनाथ ने उनके पास पहुँच कर कहा—"वाह तुम आगए। बिना सूचना दिए। क्या बात है? सब कुशल तो है।"

सुरेशचन्द्र ने डाक्टर आनन्द को प्रणाम करके कहा—"हाँ, आप लोगों को चकित करने के अभिप्राय से सूचना देना मुनासिब नहीं समझा। इसमें भी तो एक प्रकार अद्भुत हर्ष तथा सन्तोष मिलता है।"

डाक्टर आनन्द ने मुस्कराते हुए कहा—"वह तो मिलता ही है। हम लोगों को तुम्हारी अनुपस्थिति बहुत खटकती थी। और सब कुशल तो है।"

"जी हाँ, सब कुशल है। दो महीने की छुट्टी मिल गई है, अब समझ लीजिए कि दो महीने आप लोगों को परेशान करने के लिए आया हूँ।

"मेरी तो यही कामना है कि ऐसी परेशानी तुम सब मुझे जीवन पर्यन्त दो। देखो यह कान्ति की माँ हैं, इन्हें प्रणाम करो।"

सुरेशचन्द्र ने राजेश्वरी के सौम्य शान्त सौन्दर्य को देखा। उनके हृदय में एक अद्भुत आकर्षण उत्पन्न हुआ, और वे मुग्ध दृष्टि से उसे देखने लगे। राजेश्वरी के हृदय में एक कम्पन उत्पन्न हुआ जिससे उसकी तन्तु-तन्तु थिरकने लगी।

सुरेशचन्द्र आगे बढ़ कर ज्योंही राजेश्वरी के चरण-स्पर्श करने के लिए झुके त्यों ही उसकी दृष्टि उनके कान के नीचे लहसुन के एक बड़े काले चिह्न पर जाकर स्थिर हो गई। चरण स्पर्श तक उसे अनुभव नहीं हुआ, और वह उसके उत्तर में आशीर्वाद देना भी भूल गई। उनके उठ खड़े होने पर भी उसकी दृष्टि उसी चिह्न पर स्थिर थी।

कान्ति ने आशंकित स्वर में पूछा—"क्या बात है माँ? आप क्या कुछ अस्वस्थ हैं?"

राजेश्वरी ने अपने को सँभालते हुए कहा—"नहीं, नहीं, कोई बात नहीं है। क्यों बेटा, यह लहसुन का चिह्न क्या पैदायशी है।"

"जी हाँ, लहसुन तो पैदायशी ही होता है।" सुरेशचन्द्र ने नम्रता के साथ उत्तर दिया। राजेश्वरी ने एक दीर्घ निश्वास ली, और कुछ सोचती हुई बैठ गई।

राजेश्वरी को विचार मग्न देखकर विश्वनाथ ने कहा—"माँ जी, सुरेश भाई के एक नहीं, दो नहीं, तीन-तीन बड़े-बड़े काले लहसुन के और दाग हैं।"

राजेश्वरी विस्फारित दृष्टि से एक बार विश्वनाथ को देखकर फिर सुरेशचन्द्र को देखने लगी।

विश्वनाथ ने एक मन्द मुस्कान के साथ सुरेशचन्द्र की ओर देख उसके कान में कहा—"कहो तो, अब तुम्हारी सुन्दरता का बखान कर दूँ?"

सुहासिनी और कान्ति ने विश्वनाथ के कथन का अनुमान कर लिया। दोनों ने एक दूसरे को देखा, और कान्ति ने सुहासिनी को संकेत किया कि वह विश्वनाथ को उस विषय पर कुछ को मना करे।

सुहासिनी ने उसका आशय समझ कर कहा—"बड़े भैया अब सुरेश जी सुन्दरता का बखान मत करो। अभी, अभी तो हजारों मील की यात्रा करके आ रहे हैं, इन्हें खा-पीकर आराम करने दीजिए, अब इन्हें छेड़िए नहीं।"

सुरेशचन्द्र ने सुहासिनी को धन्यवाद देते हुए कहा—"आपकी सिफारिश के लिए मैं बहुत आभारी हूँ, किन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं अपनी इस कुरूपता से तनिक भी लज्जित नहीं हूँ, क्योंकि यह प्राकृतिक है। इसके अतिरिक्त लहसुन के दाग भगवान की कृपा के सूचक माने जाते हैं, इनको कुरूप वही कहते हैं, जिनके शरीर पर ये चिन्ह नहीं होते।"

सुहासिनी और कान्ति हँसने लगी। विश्वनाथ ने उत्तर में कहा—"सुरेश भाई की यह बात मैं मानता हूँ। भगवान स्वयं काले हैं, अतएव जिन पर उनकी कृपा होती है उन पर वे अपनी उँगलियों का काला चिन्ह छोड़ देते हैं।"

"अच्छा, बड़े भैया ने अपनी प्रयोगशाला में इस तथ्य की खोज की है?" कहती हुई सुहासिनी हँसने लगी।

"इनके खोजों को न पूछो, यदि मैं उनका वर्णन करने लगूँ तो आप लोग खाना-पीना भूल जायँ।" सुरेशचन्द्र ने विश्वनाथ की ओर अर्थ पूर्ण दृष्टि से देखा।

"तब तो मुझे भी माँ जी को बता देना उचित है कि सुरेश भाई को भगवान ने अपने चारो हाथों से आशीर्वाद दिया है, जिनके चार चिन्ह अभी तक देखे जा सकते हैं। एक तो उनके कान के नीचे वाला सबके देखने के लिए है, और उतने ही बड़े तथा उँगलियों के आकार के तीन चिन्ह उनकी पीठ पर हैं, जो केवल उनके अन्तरंग मित्र या घर वाले ही देख सकते हैं।

"क्या कहा, तीन लहसुन के दाग इनकी पीठ पर भी हैं?" राजेश्वरी ने व्यग्रता के साथ पूछा।

"हाँ, माँ जी, और वे तीनों इस प्रकार हैं जैसा गणित में "चूँकि" के लिए चिन्ह माना गया है, अर्थात् दो बराबर बिन्दुओं के नीचे एक बिन्दु है, जिसका

अर्थ यह है कि ब्रह्मा जी इनकी पीठ को स्लेट समझ कर कोई गणित का प्रश्न हल करने की चेष्टा कर रहे थे।

विश्वनाथ के साथ राजेश्वरी के अतिरिक्त अन्य सभी हँसने लगे।

राजेश्वरी ने घबराए हुए स्वर में पूछा—"अरे वे तीनों चिन्ह क्या पीठ के बिल्कुल बीचो-बीच में हैं?"

"जी हाँ, बिल्कुल बीचो-बीच में! यदि बीच वाले बिन्दु को केन्द्र मान कर वृत्त खींचा जाय तो मेरा अनुमान है कि वह पीठ के दोनों सिरों को छूता हुआ भगवान का सुदर्शन चक्र बन जायगा।"

राजेश्वरी बड़ी विकलता से उठ खड़ी हुई, और सब कुछ भूलकर सुरेशचन्द्र के समीप पहुँच कर कहा—"दिखाओ बेटा, दिखाओ, अपने चिन्ह! क्या भगवान इतना सदय होगा?"

सबकी दृष्टियाँ राजेश्वरी पर स्थिर हो गईं। सुरेशचन्द्र अवाक होकर उसकी ओर देखने लगे।

राजेश्वरी ने सुरेशचन्द्र के कान के समीप वाले लहसुन के दाग को छूते हुए कहा—"ठीक यहीं पर तो इसके भी काला लहसुन था, और पीठ में भी इसी भाँति के निशान थे। दिखाओ बेटा।"

सुरेशचन्द्र की व्याकुलता उनकी दृष्टि से झाकने लगी। उन्होंने विश्वनाथ से कहा—"अच्छा, बदला चुकाया है।"

विश्वनाथ ने प्रसन्न होते हुए कहा—"माँ जी, अभी सुरेश भाई के कपड़े न उतरवाइए, फिर कभी दिखा दूँगा। जाने दीजिए।"

राजेश्वरी ने उनकी बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया, और कहा—"कपड़े न उतारो, कपड़े ऊपर उठा कर दिखा दो बेटा।"

राजेश्वरी के मुख का भाव डाक्टर आनन्द ने लक्ष्य करके कहा—"बेटा, सुरेशचन्द्र कमीज ऊपर खींच कर अपनी पीठ दिखा दो। मेरा अनुमान है कि वर्षों का छिपा हुआ कोई रहस्य प्रकट होने वाला है।"

"वह क्या?' सुरेशचन्द्र ने उत्कंठित स्वर से पूछा।

"यह तो राजेश्वरी बहिन ही बता सकेगी। संभव है उन्हें भ्रम हो रहा हो।

उस भ्रम को भी निवारण करना तो उचित है।" कहते हुए वे सुरेशचन्द्र के समीप चले आये।

सुरेशचन्द्र ने उनकी ओर विकलता से देखते हुए कहा—"यह सब विश्वनाथ की शैतानी है।" कहते हुए वे सकोप विश्वनाथ को घूरने लगे।

डाक्टर आनन्द ने सुरेशचन्द्र के कपड़े उठाते हुए कहा—"लो बहिन जी, देखो, ये तीनों लहसुन के दाग हैं।"

राजेश्वरी विस्फारित नेत्रों से उन्हें देखने लगी, और देखती हुई, एक दीर्घ निश्वास के साथ अचेत होकर डाक्टर आनन्द के बाहुओं के सहारे लुढ़क गई।

जब थोड़ी परिचर्या के बाद राजेश्वरी का होश आया तो वह सारी परिस्थिति को स्मरण करती हुई स्वगत बोली—"ठीक है, यह वही है, निश्चित रूप से वही है। भगवान क्या ऐसा खेल खेलेंगे? विश्वास तो नहीं होता। मैं क्या इतनी भाग्यशालिनी हो सकती हूँ? तीस वर्ष पूर्व की घटना आज प्रत्यक्ष हो रही है। जिससे मिलने की आशा त्याग चुकी थी वह क्या इतनी सरलता से मिल सकता है? विश्वास नहीं होता! किन्तु वह फिर भी प्रत्यक्ष है—वैसा ही लहसुन का दाग कान के पास है, वैसे ही तीन लहसुनों के चिह्न पीठ पर है, इतना सादृश्य होना असंभव है—प्राकृति में तो नहीं होता। जब एक ही पेड़ की दो पत्तियाँ एक सी नहीं मिलती, तब एक ही प्रकार के चिह्न क्या दो विभिन्न व्यक्तियों में हो सकते हैं? समझ में नहीं आता। तब क्या यह वही है?"

डाक्टर आनन्द ने उसकी नाड़ी की परीक्षा करते हुए पूछा—"बहिन, अब कैसी तबियत है?"

राजेश्वरी धीमे स्वर में पूछा—"इनके पिता का नाम तो पूछिए।"

डाक्टर आनन्द के पूछने पर सुरेशचन्द्र ने, जो इस समय बिल्कुल हतचित्त हो रहे थे, उत्तर दिया—मेरे पिता का नाम था अलापी शंकर, जिनका देहान्त मेरे जन्म होने के दो महीने पहले हो गया था, और माता का देहान्त मेरे जन्म के एक वर्ष बाद, कुंभ के पर्व पर प्रयाग में।"

राजेश्वरी उत्तर सुनते ही उठ कर बैठ गई, और दोनों हाथों से बुलाती हुई

बोली—"आओ बेटा, पिता तुम्हारे अवश्य मर गए है, लेकिन माँ अभागिनी अभी तक जीवित है। मैं वह अभागिनी हूँ जो कुम्भ स्नान के लिए प्रयाग गई थी, और बदमाशों के चक्रव्यूह में फस गई, और समाज में अपना स्थान खो देने से जीविका उपार्जन के लिए नीच से नीच पेशा पकड़ने को मजबूर हुई। तुम्हें छूने तक का अधिकार यद्यपि मुझको नहीं है, तथापि देखने का अधिकार तो है ही।"

डाक्टर आनन्द के अतिरिक्त सभी चकित होकर कभी सुरेशचन्द्र को देखते और कभी राजेश्वरी को। सुरेशचन्द्र ने धीर पदों से आगे बढ़ते हुए कहा—"माँ, यदि वास्तव में तुम मेरी माँ हो, तो तुम मेरे लिए गंगा की तरह पवित्र हो। तुम्हारा पुत्र कहलाने में मुझे लज्जा नहीं मालूम होगी। पुत्र को उसके जन्म जात अधिकार से वञ्चित न करो।" यह कहते हुए उन्होंने उसके चरण-स्पर्श कर पद रज को मस्तक पर धारण किया। राजेश्वरी ने व्याकुलता के साथ उनको अपने बाहु-पाशमें बाँध लिया। उसके नेत्रों से अजस्त्र अश्रु-धारा बह चली।

—२०—

दो दिन पश्चात् जब राजेश्वरी पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गई, तब उसके अनुरोध से वह अपने पूर्व जीवन का इतिहास सुनाने लगी—"मेरा जन्म जिला कानपुर के एक गाँव में हुआ था। जन्म से मैं ब्राह्मण सन्तान हूँ। चार भाइयों के बीच में मैं अकेली लड़की थी इसीलिए अपेक्षाकृत मेरा दुलार-प्यार घर में बहुत हुआ करता था। भाइयों को भी मैं बहुत प्यारी थी, और सबसे छोटे भाई को तो मैं बड़ी ही दुलारी थी। वही दिन भर मुझे अपनी गोद में उठाये घूमा करता था, और रात भी प्राय: उसके समीप ही कटती थी। आठ वर्ष तक मैं उसी अपने छोटे भाई के साथ खेलती पढ़ती रही। एक दिन पिता जी मेरे उस छोटे भाई पर बहुत नाराज हुए, और बुरा-भला कहा, क्योंकि

पढ़ने-लिखने या घर का काम-काज करने में उसका मन बिल्कुल नहीं लगता था। भाई रुष्ट होकर घर से चले गये, और इसका प्रभाव मेरे ऊपर बहुत पड़ा। उनके वियोग में मैं लगभग पागल हो गई, और रात दिन रो-रो कर काटने लगी। पिता-माता बहुत समझाते, दम-दिलासा देते, किन्तु सब प्रयत्न व्यर्थ गया और मैं बहुत बीमार हो गई। मेरे उस छोटे भाई को खोजने के लिए अनेक प्रयत्न किए गए किन्तु कोई फल न निकला। कई महीनों की भयानक बीमारी के बाद मैं शरीर से अच्छी अवश्य हुई किन्तु मानसिक पीड़ा से तो आज तक मुक्त नहीं हो सकी। अब भी कभी-कभी उसकी याद आते ही मन व्याकुल होकर रोने लगता है।" इतना कह कर उसने एक दीर्घ निश्वास ली, और थोड़ी देर तक चुप रही। डाक्टर आनन्द सुनते-सुनते कुछ गंभीर हो गए, और वे दृष्टि गड़ाकर उसका मुख देखने लगे।

राजेश्वरी फिर कहने लगी—"भाई के वियोग का प्रभाव मेरे ऊपर इतना पड़ा कि मैं सदैव गुम-सुम बनी रहती। मेरी सहज चपलता न मालूम कहाँ खो गई। मेरा भाई फिर लौट कर घर नहीं आया, और उसके शोक से माता-पिता भी बहुत दुखी हुए। जब उनकी मृत्यु उसके वियोग में हुई तब उस समय मैं दस वर्ष के लगभग थी। मेरे अन्य बड़े भाई भी अनुभव शून्य कच्ची उम्र के थे। घर की सम्पत्ति को दूसरे कुटुम्बी भाइयों ने हथिया लिया, और हमारे दिन बड़ी मुसीबत से कटने लगे। खेतों को बटाई पर उठा देने से जो कुछ मिलता उससे ही हम चारो भाई-बहिन अपना गुजर बसर करने लगे। जब खर्च पूरा न हुआ तब मेरे दो बड़े भाई कानपुर किसी काम-काज की खोज में जाने के लिए मजबूर हुए, और मै अपने तीसरे भाई के साथ गांव में ही काल यापन करने लगी। मेरे विवाह के लिए तीनों भाई चिंतित थे, किन्तु दहेज में देने के लिए घर में कोई सम्पत्ति नहीं थी। धीरे-धीरे मैं बीस वर्ष की हो गई, और इसी बीच मेरे दूसरे दो भाई भी मेरी ही चिन्ता से व्याकुल काल कवलित हो गए।"

इतना कह कर राजेश्वरी पुनः ठहर गई, और पुरानी घटनाओं को स्मरण कर रोने लगी। वहाँ उपस्थित व्यक्तियों ने देखा कि डाक्टर आनन्द के नेत्र

में भी अश्रु-करण भरे हुए है, जिनका कारण उनकी सहज करुणा ही समझा गया।

राजेश्वरी एक दीर्घ निश्वास के पश्चात् पुनः कहने लगी—"मेरे दो भाइयों के मरने के बाद तीसरे भाई पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। हम एक दूसरे को सान्त्वना देने का प्रयत्न करते किन्तु वह सब मौखिक था। सच्ची बात यह थी कि हमको इस संसार का ओर-छोर न दिखाई पड़ता था, और न कोई मार्ग ही मिलता था। हम जानते थे कि हमारी सान्त्वना के शब्द कितने खोखले थे, लेकिन मन की व्यथा को शान्त करने के लिए इसके अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता न था। मेरा भाई मेरे विवाह के लिए चिन्तित था, किन्तु विवाह कैसे किया जाय प्रश्न यह था, जिसका कोई हल नहीं निकलता था। यद्यपि यह सत्य था कि मैं गांव की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी मानी जाती थी, किन्तु उस सौन्दर्य को कोई बिना दहेज लेने के लिए तैयार नहीं होता था। अन्त में वही हुआ जो प्रायः दरिद्री घरों की कन्याओं के भाग्य में होता है। एक पड़ोस के गाँव के जिमीदार महाशय अपना पाँचवा विवाह करना चाहते थे। यद्यपि उनकी चारों पत्नियों से सात सन्तानें थी, जिनमें चार के विवाह हो चुके थे, तथापि उनकी लिप्सा अभी शान्त नहीं हुई थी। वे दहेज में एक पैसा न लेना चाहते थे क्योंकि कोई भी सम्पन्न घर की व्यक्ति अपनी कन्या को पैसठ वर्ष के वृद्ध को देने के लिए सोच नहीं सकता था। किन्तु मेरे भाई के लिए उनके साथ मेरे विवाह का प्रस्ताव मुँह माँगी मुराद के समान थो। मैं भी अब वयस्क हो गई थी। एक्कीस वर्ष की अवस्था और दरिद्रता से लड़ते-लड़ते मुझे संसार का पर्याप्त ज्ञान और अनुभव हो गया था। भाई ने इस विवाह के विषय में मेरा विचार जानना चाहा, किन्तु मेरे लिए कुछ सोचने-विचारने को नहीं था। एक आह के साथ मैंने अपनी स्वीकृति दे दी, और मेरा विवाह उस वृद्ध के साथ हो गया।"

राजेश्वरी के सामने पुराने दृश्य पुनः नाचने लगे। जिस पीड़ा को वह लगभग भूल गई थी, वह हरी हो कर उसे सन्तप्त करने लगी। उसने आँसुओं को पोछकर फिर कहना आरंभ किया—"सधवा रहने के योग मेरे भाग्य में

केवल एक वर्ष का था। उसी समय मैं गर्भवती हुई और पति वियोग के दो महीने पश्चात् सुरेश का जन्म हुआ। उसके कान के पास एक और पीठ में तीन लहसुनों के चिन्ह थे। दुनियाँ और मेरे सौतेले पुत्र उसे अशुभ बता कर हमारे जीवन को दुखी बनाने लगे, किन्तु उस यातना पुरी में त्रिजटा की भाँति मेरे साथ सहानुभूति रखने वाली मेरी सबसे छोटी विधवा ननँद थी, जो सुरेश को बहुत प्यार करती। एक प्रकार से वही उसका पालन-पोषण करने लगी। सुरेश के सौतेले भाइयों की इच्छा थी कि वे हमें विष खिला कर मार डालें, किन्तु मेरी ननँद को उनकी दुरभि सन्धियों का न-मालूम किस प्रकार पता चल जाता था, और उनके प्रयत्न निष्फल होते रहे। इसी बीच कुम्भ-स्नान के लिए प्रयाग जाने की योजना बनी। घर के सभी व्यक्ति जाने के लिए तैयार हुए, यद्यपि मेरी इच्छा बिल्कुल नहीं थी, तथापि तैयार होना पड़ा, क्योंकि उन सब का विशेष आग्रह था। मुझे तथा मेरी ननँद को यह न-मालूम हुआ कि उन्होंने मुझसे छुटकारा पाने की एक भीषण योजना बना ली है। इसका ज्ञान तो तब हुआ जब मैं उनकी दुरभि सन्धि के अनुसार उसमें फँस गई।"

राजेश्वरी ने एक बार सुरेशचन्द्र को बड़े ममत्व के साथ देखा, और कहा – "बेटा यह प्रयाग स्नान ही हमारे-तुम्हारे वियोग का कारण बन गया। प्रयाग का कुम्भ मेला विश्व विख्यात है, उसमें जितनी भीड़ होती है, वैसी किसी अन्य मेले में नहीं होती। हमारे लिए पंडों ने एक बड़ी कुटिया का प्रबन्ध कर दिया था, उसी में हम लोग ठहरे थे। स्नान करने के लिए यह निश्चय किया गया कि सूर्य निकलने के पूर्व ही किया जाय। हम लोग रात्रि रहते अपनी कुटिया से रवाना हुए। उस समय भी मनुष्यों की भीड़ थी। ज्यों-ज्यों हम घाट के समीप पहुँचते थे, त्यों-त्यों मनुष्यों का रेला बढ़ता जाता था। सुरेश को नँनद जी लिए हुए थी, और मैं अपनी रक्षा करती हुई बढ़ रही थी। इसी बीच कुछ पुरुष और स्त्रियाँ हमारे घेरे के भीतर धुस आए, और वे बड़ी उग्रता से एक दूसरे को ठेलने लगे। चार स्त्रियों के बीच मैं सतर्क रहते हुए फँस गई, और वे सब धक्के देते, ठेलते हुए मुझे एक ओर ले जाने लगे। मेरे घर वालों से मेरा साथ बहुत पहले ही छुट गया था। मैं अपने को अकेले

देखकर रोने-चिल्लाने लगी, किन्तु जितना मैं चिल्लाती थी, उससे अधिक जोर से वे चारों औरतें और उनके साथी पुरुष भी चिल्लाते थे, जिसमें मेरी आवाज डूब जाती थी। इसी बीच एक स्त्री ने मेरी नाक में कपड़ा ठूँस दिया, और दो स्त्रियों ने मेरे हाथ पकड़ लिए। मैं तड़पने लगी, और थोड़ी देर हाथ-पैर फटफटा कर बेहोश हो गई।"

राजेश्वरी ने कुछ देर ठहर फिर एक दीर्घ निश्वास के साथ कहा—"अब यहाँ से मेरे जीवन का दूसरा अध्याय शुरू होता है। जब मुझे होश आया तब मैंने अपने को एक बहुत ही पुराने टूटे-फूटे घर की कोठड़ी में पाया। उस समय लगभग दोपहर थी, और वे चारों औरतें मेरी चारपाई को घेरे हुए बैठी थी। मेरी जीभ तालू से चिपकी हुई थी, और बोल नहीं फूटता था। उनमें से एकने एक गिलास में गर्म दूध पीने को दिया, और उठाकर पिलाया भी। मेरे मुँह में कड़ुएपन के साथ एक विचित्र प्रकार की मिठास भरी हुई थी। दूध पीने से मुझे कुछ शांति मिली, और मैं अपनी स्थिति को समझने का प्रयत्न करने लगी। थोड़ी देर बाद जब बोल फूटने लगा तो मैंने पूछा कि मुझे यहाँ कौन लाया है? उनमें से एक स्त्री ने जो बहुत बातूनी और चालाक दिखाई पड़ती थी—कहा, "लाने वाले तो हम लोग हैं, क्योंकि तुम्हारे सौतेले लड़कों ने तुमको एक हजार रुपयों में बेच दिया है। मेरे घर के मालिक ने तुम्हें मोल लिया है। लेकिन तुम घबड़ाओ नहीं, हम लोग तुम्हारे साथ बहुत अच्छा व्यवहार करेंगे। खाने-पीने को अच्छा से अच्छा खाना, और रहने को बहुत बढ़िया घर मिलेगा। कपड़े गहने भी मिलेंगे।"

"मेरा हृदय हिल गया। मैं कभी यह सोच ही न सकी थी कि वे लोग मुझसे छुटकारा पाने के लिए ऐसी नीचता पर उतर आयेंगे। मुझको मौन देखकर उसी स्त्री ने फिर कहा—"देखो हमारी ओर से बुरा-भला व्यवहार तुम्हारे व्यवहार पर निर्भर है। अगर तुम चुपचाप रहोगी, और बीती बिसार कर नई जिन्दगी नए रूप में बसर करने के लिए आमादा होती हो, तब तुम्हारे साथ बहुत उत्तम व्यवहार किया जायगा, और कोई तकलीफ नहीं दी जायगी, लेकिन अगर नटखटपन करोगी तब दूसरा उपाय किया जायगा।

हम लोग "डीपो" का काम करते हैं। जानती हो "डीपो" क्या है। तुम सुन चुकी होगी कि इस देश से आदमी-औरतें काले पानी भेजे जाते हैं। वह काम हमारे "डीपो" द्वारा होता है। तुम्हारे लड़कों ने तुम्हें काला-पानी भेजने के लिए हमारे हाथ बेचा है अभी हमारा इरादा तुम्हें वहाँ भेजने का नहीं है, लेकिन अगर अपनी हरकतों से हमें परेशान करोगी, या हमे धोखा देकर भागने की कोशिश करोगी तो हमें मजबूरन तुम्हें काला पानी भेजना पड़ेगा। काले-पानी भेजने में सरकार हमारी मदद करती है, और तुम हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकोगी। तुम्हारे घर में तुम्हारे लिए अब जगह नहीं है। तुम संगम में डूब गई हो, यह उन लोगों ने मशहूर कर दिया है। तुम्हारे लड़के की देख-भाल तुम्हारी ननँद कर लेगी, इसलिए उसकी भी चिन्ता छोड़ो। अभी तुम्हारे खाने-पीने के दिन हैं। औरत की पूछ तभी तक रहती है जब तक उसकी जवानी रहती है। जवानी जाने के बाद औरत की जिन्दगी फटे-पुराने चीथड़े से भी बदतर होती है। जवानी भगवान की देन है, और फिर तुम्हें भगवान ने सुन्दर बनाया है। सोने में सुगन्ध है। इसका उपयोग करो, और जैसा हम कहें वैसा करो, इसमें तुम चैन की जिंदगी बसर करोगी, और पुरुष जाति से अपना बदला भी चुका लोगी। ये पुरुष हमारी जवानी और रूप चाहते हैं। हमको भी इसका मूल्य उनसे वसूल करना चाहिये। बेटी अगर तुम मेरे कहने के अनुसार चलोगी, तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि तुम्हारे पैरों में साक्षात लक्ष्मी बैठा दूँगी, सोने-चाँदी, जवाहिरात के ढेर लगवा दूँगी। बेटी, दुनिया में पैसा ही सब कुछ है, और वही सच्ची ताकत है। इसके बल पर आकाश के तारे भी तोड़ कर लाए जा सकते हैं। सोचो और विचारो। हमको अपना उत्तर शाम को देना। अभी हम लोग जाती हैं।"

इतना उपदेश देकर वे लोग चली गईं। मैं भी अपना भविष्य विचारने लगी। उनके कहे अनुसार काम करने में ही मेरी भलाई देख पड़ती थी—इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग भी नहीं था। सौतेले पुत्रों के व्यवहार से मेरी इच्छा उस घर में जाने की न होती थी। मेरे तीसरे भाई का भी कहीं पता न था। मेरा विवाह कर देने के पश्चात् वह न-मालूम कहाँ चला गया था।

मेरे अनुरोध से सुरेश के पिता ने उसका बहुत पता लगवाया, किन्तु कोई फल नहीं हुआ। सुरेश के लिए अवश्य मेरे मन में तड़पन थी, किन्तु उसको प्राप्त करना असंभव ही मालूम पड़ता था। संतोष केवल इतना था कि मेरी ननँद उसे पुत्र के समान मानती थी, और उसके जीवित रहने में कोई बाधा उनके जीवन तक नहीं दिखाई पड़ती थी। मैंने अपने को अपने भाग्य को समर्पित कर दिया और उन्हीं के कथनानुसार जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया।"

"संध्या समय जब उन्हें मेरा अभिमत मालूम हुआ तो वे बड़ी प्रसन्न हुई। इलाहाबाद की एक मशहूर वेश्या ने जो इस समय वृद्ध हो चली थी, मुझे खरीद लिया। मेरे बेचने का सौदा कितने रुपयों में हुआ यह उस समय नहीं मालूम हो सका, किन्तु पीछे से मालूम हुआ कि उनको मेरे लिये पाँच हजार रुपए दिए गए थे। फिर धीरे-धीरे यह भी प्रकट हुआ कि मेरे सौतेले लड़कों ने मुझसे छुटकारा प्राप्त करने के लिए उन 'डीपो' वालों को पांच सौ रुपये दिये थे। उनकी इच्छा तो काले पानी भेजने की थी, लेकिन मुझे यहाँ बेचकर उन्हें अधिक लाभ होने की संभावना थी, इसलिये मैं केनिया, या फिजी नहीं बेची गई।"

उस वेश्या का नाम था कमलाबाई। उसका रहन-सहन हिंदुआना था। इधर पूजा-पाठ भी वह करने लगी थी। भगवान की कृपा से उसका स्नेह भी मुझपर अत्यधिक हो गया था, और मुझे अपनी सतान की भांति ही प्यार करती थी। उसने मुझे संगीन, तथा नृत्य सिखाना आरम्भ किया, और मैं भी दत्त चित्त होकर सीखने लगी। मेरा कंठ पहले ही से सुरीला था और जब संगीन शास्त्र की ज्ञाता हो गई तो मेरा नाम बहुत शीघ्र फैल गया। बड़े-बड़े राजे-महराजों, जिमींदार, ताल्लुकेदारों के यहाँ से मुजरे के निमंत्रण आने लगे। कमला बाई दोनों हाथों धन बटोरने और मेरे दिल में पुरुषों के प्रति घृणा के भाव भरने लगी, जिसमें मेरा लगाव किसी पुरुष से न हो जाय। मैं

भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती हुई नृत्य और गान से पैसा पैदा करने लगी।"

कहते कहते राजेश्वरी के नेत्र स्वतः नत हो गए। उसने दोनों हाथों से अपना मुँह ढँक लिया, और फफक कर रोने लगी। उस समय प्रायः सभी के नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गये। डाक्टर आनन्द वहाँ से उठकर अपनी नाक और गले के श्लेषमा साफ करने के लिए चले गए।

राजेश्वरी ने कुछ देर तक अपने विचारों को संयत किया, और फिर कहने लगी :—"शायद मेरे भाग्य में यही बदा था कि जो मुझे आश्रय दे वह मर जाय। इस बात को मैं बार-बार लक्ष्य करती आ रही हूँ। निदान वही यहां भी घटित हुआ। मेरी आश्रयदाता, मां के समान प्यार करने वाली कमलाबाई का भी देहान्त हो गया। मेरे पास यद्यपि इस समय इतना द्रव्य था कि मैं यदि इस घृण्य पेशे को छोड़ देती तो मैं आनन्द से अपना जीवन काट सकती थी, किन्तु इससे मुक्ति पाना उतना सरल नहीं था, जितना पहले प्रतीत होता था। मैं मुजरे के निमंत्रण अस्वीकार करने लगी, किन्तु घर पर गाना-बजाना जारी था। प्रायः नित्य ही संध्या समय श्रोताओं की भीड़ लग जाती, फिर उनसे पिंड छुड़ाना दूभर हो जाता था?"

मेरे यहाँ नियमित रूप से आने वालों में कन्तों के पिता भी थे। उनकी कोठियाँ लखनऊ और इलाहाबाद दोनों जगहें थी, और वे अवध के विख्यात ताल्लुकेदार थे। वे सबसे पहले आते थे और सबसे अन्त में जाते थे। वे अधिकतर मौन ही रहते, और बोलते थे केवल उपहार भेंट करने के समय। उनके कोई न कोई उपहार नित्य मिलते थे, और वे अपनी कोई इच्छा प्रकट न करते थे। मैं उनके उपहारों के बोझ से दबी जा रही थी, और जब मैं उन्हें अस्वीकार करने लगी तो उन्होंने आना बन्द कर दिया, और मेरे छज्जे के सामने पान की दूकान पर बैठने लगे। जब गायन समाप्त हो जाता, और सब लोग जले जाते, तो चोरों की तरह सीढ़ियों पर चढ़ते, और कोई न कोई

आभूषण फेंककर चले जाते। मैं उनके इस प्रकार के व्यवहार से बहुत परेशान हुई, और खीझकर एक दिन जब वे एक पन्ना जड़ी अँगूठी फेंक रहे थे, तो उनका हाथ पकड़कर कहा—कि यह हरकत आप रोज-रोज क्यों करते हैं? उन्होंने हँसकर कहा – "देखो तुमने मेरा हाथ पकड़ा है, जानती हो इसके क्या अर्थ हैं? अगर नहीं जानती तो बताता हूँ कि इसके अर्थ है जिन्दगी इसीभाँति पार करना। मर्द और औरत एक दूसरे का हाथ पकड़ कर ही विवाहित जीवन व्यतीत करते हैं। तुम मेरे आने से नाराज होती थी, मैंने आना बन्द कर दिया, लेकिन कोई अपनी इष्ट देवी को पुष्पाञ्जलि चढ़ाने से तो मना नहीं कर सकता। मैं बिना तुम्हें दिखाई दिए अपनी भेट चढ़ाता रहा। आज तुमने हाथ पकड़ लिया, अब इसका दायित्व जीवन पर्यन्ता निर्वाह करो।" मैं क्या उत्तर देती। उनका प्रस्ताव स्वीकार किया, और दूसरे दिन हमारा विवाह नागरिक विवाह कानून के अनुसार हो गया। वे मुझे लखनऊ ले आए और मुझे उस घृणित व्यवसाय से मुक्ति मिली।

राजेश्वरी ठहर कर कान्ति की ओर देखने लगी। फिर उससे कहा—"कन्तो अपनी मां के पूर्व जीवन का इतिहास सुना। सुरेश और तुम्हारे सामने अपने पाप को स्वीकार करते यद्यपि मुझे भयानक लज्जा आती है, किंतु अपनी असलियत भीं छिपा कर रखना नहीं चाहती। तुमको पूर्ण अधिकार है अपनी मां से घृणा करो, परंतु इतना तुम दोनों को विश्वास दिलाती हूँ कि मैं कीचड़ में रही हूँ अवश्य किंतु उसमें डूबी नहीं। सुरेश के पिता की मृत्यु के पश्चात् मैं पूर्ण ब्रह्मचारिणी रही, जब तक कन्तों के पिता से विवाह नहीं किया। किंतु वैवाहिक जीवन का सुख कतिपय वर्षों के लिए ही था। एक ही वर्ष के भीतर कंतो का जन्म हुआ और उसके दो साल पश्चात् वे भी मेरा साथ छोड़ गए। वे मुझे बहुत बड़ी सम्पत्ति मेरे पास वह सब सुरक्षित था जो मैंने अपने परिश्रम से पैदा किया था। यही सम्पत्ति मेरे और कंतों के जीवन की ग्राहक हो गई। मेरे सौतेले पुत्रों से पुनः संघर्ष करना पड़ा, और मैं अपनी रक्षा उनके प्रहारों से करने लगी। यद्यपि मैं विवाहित पत्नी के रूप में ही कंतो के पिता के साथ

आई थी, किंतु समाज उसे स्वीकार नहीं करता था। सब मुझे रखैल ही कहते थे, और उनके घर में कभी सम्मान न मिला। मैंने सदैव इस प्रश्न को उपेक्षा की दृष्टि से देखा, क्योंकि मैं जानती थी कि मैं चाहे जितने प्रमाण दूँ, किंतु वेश्या वृत्ति के कलंक को तो मिटा नहीं सकूँगी। कन्तो के पिता लगभग दस लाख की सम्पत्ति दे गए थे, और लखनऊ की कोठी मेरे नाम करवा दी थी। कंतो के लिए मैंने उत्तमोत्तम शिक्षा का प्रबंध किया, और ईश्वर की कृपा से वह इस रूप में आज आपके सामने है। मुझे अपने सौतेले पुत्रों से कभी द्वेष नहीं रहा, किन्तु मुझको कभी उन्होंने सुख से सोने नहीं दिया।

सुरेशचन्द्र और कान्ति दोनों उसके दोनों ओर बैठे हुए उसके दाहिने और बाएँ हाथ को पकड़े हुए थे।

सुरेशचन्द्र ने उसके आसुओं को पोंछते हुए कहा—"माँ, अब तुम्हारे दुर्दिन कट गए। कान्ति और मैं दोनों हिलमिल कर तुम्हारी सेवा करेंगे।"

डाक्टर आनन्द ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा—"और मैं क्या करूँगा ?

सब के नेत्र उनकी ओर उठ गए। राजेश्वरी ने म्लान हँसी से कहा—"और भैया मैं तुम्हारी सेवा करूँगी !"

"राधे तू मेरी सेवा करेगी या मेरी पीठ पर चढ़ी चढ़ी घूमेगी।" डाक्टर आनन्द ने मन्द मन्द मुस्कराते हुए पूछा।

राजेश्वरी चिहुँक कर डाक्टर आनन्द की ओर देखने लगी। क्षण भर उनको देखा और एकदम से खड़ी होकर डाक्टर आनन्द के नयनों में नयन मिला कर देखती हुई चिल्लाई और उनके गले से चिपट कर बोली—"भैया, तुम तो मेरे वही खोए हुए भैया हो जो अपने प्राणों से अधिक प्यारी राधा को छोड़ कर बापू के डांटने पर रूठ कर न जाने कहाँ अंतर्धान हो गए थे। क्यों वह तुम्हीं मधुसूदन या हो न। तुम्हीं तो मुझे राधा कह कर पुकारते थे।"

डाक्टर आनद ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"क्या अब भी

तुझे संदेह है राधू। अब क्यों नहीं चिढ़ती, पहले तो 'राधू' कहने से बहुत चिल्ल-पों मचाती थी।"

हाँ, राधू, मैं ही तेरा वह हृदय हीन भाई हूँ जो तुझे छोड़ कर भाग गया था। कानपुर आते ही मैं 'डीपो' वालों के चक्कर में फंस गया, जिहोंने मुझे यहाँ भेज दिया। इसी से तेरे पास पुनः नहीं जा सका।"

राजेश्वरी डाक्टर आनन्द के गले से चिपटी हुई फफक-फफक कर रोने लगी। विश्वनाथ सुरेशचंद्र, सुहासिनी कान्ति और गोपाल मुग्ध होकर भाई-बहिन के पुनर्मिलन को देखने लगे।

——